# लाल चीन

# लाल चीन

श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी

बाँकीपुर
ग्रन्थमाला - कार्यालय

राष्ट्र-जीवन-ग्रन्थमाला

प्रथम संस्करण, १९३९
मूल्य २)

पटना
हिन्दुस्तानी प्रेस
श्र० प्र० झा

## पाठकों से

राष्ट्र-जीवन-ग्रन्थमाला के तृतीय पुष्प, 'लाल चीन', को पाठकों के हाथ में देते हुए हमें इसलिये विशेष हर्ष है कि यह पुस्तक अपने विषय की अनूठी और एकदम बेजोड़ है। केवल हिंदी ही में नहीं, वरन् भारत की अन्य भाषाओं में भी इस विषय की कोई मौलिक पुस्तक अभी तक प्रायः प्रकाशित नहीं है। इस पुस्तक के लेखक श्री बेनीपुरीजी ने साम्यवाद का काफी अध्ययन किया है और उसके विभिन्न पहलुओं की उन्हें खासी जानकारी है। हमें आशा है कि पाठकों को यह पुस्तक रोचक ही नहीं, वरन् बड़े काम की भी मालूम होगी।

प्रकाशक

## विषय-सूची

## ४. संयुक्त मोर्चा



## चित्र-सूची

# भूमिका

लाल चीन ! बूढ़ा जर्जर चीन, मदक-अफीम का ख्यातिलब्ध चीन, हत्याकारी डकैतों का चीन, चोटीवाले मर्दों का चीन, पैर-बँधी गुलाम स्त्रियों का चीन। क्या उसी विशाल मृतप्राय विगलित देश के एक कोने में नये खून का, सुर्ख, गर्म, फड़कते हुए खून का, नई जान का, नई जागृति और सभ्यता का संचार हो चुका है ? क्या उसी पिछड़े हुए देश के एक हिस्से में, संसार के अधिकतम जाग्रत और उन्नत विचार, ऐसे दिमागों को जिनपर शताब्दियों की दकियानूसी ने ताला लगा रक्खा था, झकझोर और सुलझा रहे हैं ? क्या वहाँ के क्षुद्रतम व्यक्ति को भी सर्वोच्च मानसिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त हो चुकी है ?— वैसी सुनहरी स्वतंत्रता जिसके सपने हम अपने देश के कुचले हुए किसानों, मजदूरों को दिखाया करते हैं ; जो अमरीका, इंगलैंड-जैसे उन्नत देशों की जनता के लिए भी अभी तक सपना मात्र ही है।

हाँ, बात ऐसी ही है। यह चमत्कार सही है। यह चमत्कार कैसे प्रकट हुआ और यह अद्भुत और युग-महत्व रखनेवाला सत्य संसार की आँखों से किस प्रकार छुपाकर रखा गया, यह तो आप भाई बेनीपुरी जी के ग्रन्थ में पढ़ें। वहाँ आप वर्तमान युग के इन चमत्कारिक चित्रों के जीवित वर्णन के साथ भाषा-चमत्कार भी पायेंगे जो कम से कम मुझे तो अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। जैसी जानदार चीजों और हस्तियों को लेखक ने आपके सामने रखा है—उसकी रूपरेखा ही जान उनकी शैली में भी [illegible] है। लाल चीन और उसके निर्माता हमारे सामने इतिहास के सूखे अस्थि-पंजरों की तरह नहीं रखे गये हैं, बल्कि प्राणों से फड़कती हुई वास्त-

विक जीवन की चलती-फिरती जानदार चीजों की तरह हमारे सामने आये हैं। इस तरह एमिल लुडविक की भाँति जिन्दा इतिहास लिखने में बेनीपुरीजी को कितनी कामयाबी हुई है, पाठक स्वयं देख लें।

सोवियत या लाल चीन अपना संदेश दुनिया के दूसरे अभागे गरीबों तक न पहुँचा सके, चीन के ही दूसरे हिस्से में उसकी विप्लवकारी गाथाएँ न फैलें, इसलिए चुपचुप की एक ऊँची दीवार उसकी सरहदों पर खींच दी गई थी। जिस प्रकार अफ्रीका के अन्धकारमय जंगलों के हबशियों की खबरें अखबारों के परदों से छन-छनकर कभी-कभी हमारे पास पहुँचती थीं उसी प्रकार सोवियत चीन की खबरें भी उल्टे-सीधे रूप में हम तक गाहे-बगाहे आ जाती थीं। लेकिन, सोवियत चीन का असली महत्त्व और हिन्दुस्तान-जैसे देशों के लिए उसका सबक तो जनसाधारण से छिपे ही हुए थे। जो विशेष रूप से उस विषय से दिलचस्पी रखते थे और विदेशों से परिश्रम करके उसपर मसाला इकट्ठा करते थे, उन्हें ये बातें मालूम थीं; लेकिन साधारणतः हम सब इनसे सर्वथा अनभिज्ञ ही थे। बेनीपुरी जी ने कई ग्रंथों का मंथन कर सोवियत चीन के जन्म और विकास का जीवित इतिहास हमारे सामने रखा है। हम इसके लिए उनके उपकृत हैं; क्योंकि चीनी सोवियत से हम भारतीय बहुत-सी बातें सीख सकते हैं और उसके अनुभवों से अपनी राजनीति में बहुत बड़ी मदद ले सकते हैं। यह पुस्तक सिर्फ हमारी जिज्ञासा को ही पूरी नहीं करेगी, बल्कि हमारा पथ-प्रदर्शन भी करेगी। इस दृष्टि से इस पुस्तक का विशेष महत्त्व है। हिन्दुस्तानी भाषाओं में तो ऐसी कोई पुस्तक नहीं है—जहाँ तक मैं जानता हूँ। अंगरेजी में भी किसी एक पुस्तक में सब बातें नहीं मिल सकती हैं।

चीन भी भारत-जैसा कृषि-प्रधान देश है और बहुत अंशों में इसी की तरह साम्राज्यशाही के पंजों में फँसा है। एक कृषि-प्रधान देश में साम्यवाद की बुनियाद डालने में क्या दिक्कतें होती हैं, उद्योगधंधों की

कमी के कारण साम्यवादी इमारत कितनी कमजोर होती है, इसका सबक हमें सोवियत चीन से मिलता है। कृषकों पर ही आधार-भूत सोवियत हुकूमत किस प्रकार की होती है, इसका भी ज्ञान हमें होता है। लेकिन, जो सबसे बड़ा सबक लाल चीन से हमें मिलता है वह है समाजवाद और राष्ट्रवाद के पारस्परिक संबंध के विषय में।

चीन भारत-जैसा गुलाम देश तो नहीं है, फिर भी मंचुओं और सामंतशाही की पराधीनता से छूटने पर, और वहाँ प्रजातन्त्र कायम हो जाने के बाद भी, दुनिया के साम्राज्यशाही देशों के साथ, विशेष कर जापानी साम्राज्य के साथ, तो उसको बराबर मुकाबिला करना पड़ा है और उसको जंजीरों को तोड़ने और उसकी बढ़ती हुई लोलुपता से बचने की कोशिश उसे बराबर करनी पड़ी है। इस प्रकार चीन की मुख्य राजनीतिक धारा १९११ ई० से राष्ट्रीयता की रही है। इसी राष्ट्रीयता की गोद में वहाँ समाजवाद का जन्म हुआ और आगे चलकर दोनों के बीच सर्वनाशी कलह हुआ। यह कलह कैसे बढ़ा और कैसे शान्त हुआ यह हमारे लिए एक बहुत महत्व का ऐतिहासिक प्रकरण है।

मार्शल च्यांग-काई-शेक की कुओ-मिन्-तांग सरकार ने सोवियत को कुचलने की भरपूर कोशिश की। सोवियत भी उसके खिलाफ लड़ी, लेकिन वह बराबर इस बात पर जोर देती गई कि च्यांग-काई-शेक यदि जापान का मुकाबिला करे तो सोवियत अपनी सारी शक्ति के साथ उसका साथ देगी और इस राष्ट्रीय मोर्चे को दृढ़ करने के लिए जितनी शर्तें जरूरी होंगी उन्हें वह कबूल करेगी। लेकिन, दुर्भाग्यवश च्यांग-काई-शेक की नीति जापान के साथ कमजोरी दिखाने की रही और सोवियत के साथ सख्ती। लेकिन, अन्त में जनता और सोवियत के दबाव से मार्शल च्यांग जापान से लोहा लेने को तैयार हुआ! इस प्रसंग का रोचक वर्णन इस पुस्तक में आप पायेंगे। जब समाजवादियों और राष्ट्रवादियों का एक मोर्चा हुआ तब उस मोर्चे के लिए समाजवादियों ने कैसी-कैसी

कुर्बानियाँ कीं, ये बातें भारत के समाजवादियों के लिए विशेष महत्व की हैं। चीनी सोवियत ने उसी मार्शल च्यांग को, जिसके साथ पहले भीषण लड़ाई थी, अपने संयुक्त मोर्चे का जेनरलिस्समो—प्रधान सेनापति—बनाया और उसी की मातहत में काम करते हुए आज जापानी साम्राज्यशाही के छक्के छुड़ा रही है।

अन्त में इस अत्यन्त उपयोगी पुस्तक के लिखने के लिए भाई बेनीपुरीजी को धन्यवाद देते हुए, मैं हिन्दी-भाषी जनता, खासकर जन-आन्दोलन में काम करनेवाले राष्ट्रसेवकों से इस पुस्तक के अध्ययन और मनन करने की सिफारिश करता हूँ।

जयप्रकाश नारायण

# लेखक के दो शब्द

इस पुस्तक का एक छोटा-सा इतिहास है।

भाई जयप्रकाश जी स्वास्थ्य-सुधार के लिए पिछली गर्मियों में मालाबार जाने की तैयारी में थे। एक दिन हम दोनों साथ जा रहे थे। उनके हाथ में एडगर स्नो की 'रेड स्टार ओवर चाइना' नाम की पुस्तक थी। प्रसंग-वश आपने उसकी तारीफ शुरू की और कहा, इसे मालाबार लिये जा रहा हूँ और इसे हिन्दी-रूप देने की कोशिश करूँगा। मैंने कहा—यह काम मैं अच्छी तरह करूँगा; आप वहाँ से 'साम्यवाद' नामक अपनी अधूरी हिन्दी मौलिक पुस्तक को ही पूरा कर लावें।

जयप्रकाश जी का 'साम्यवाद' अभी तक पूरा नहीं हुआ, मेरा 'लाल चीन' आपके हाथों में है।

इसकी नींव जरूर ही एडगर स्नो की पुस्तक है, किन्तु, पुस्तक का सिलसिला, विषय विभाजन, शैली, भाषा सब मेरे हैं। पुरानी नींव पर एक नई इमारत समझिये। एडगर स्नो ने जहाँ से अपनी कहानी शुरू की है उसके पहले की कथा भी मैंने कई पुस्तकों के आधार पर दे दी है। फिर वह पुस्तक जिस समय तक की खबर रखती थी, उसके बाद की घटनायें काफी महत्वपूर्ण हुईं, जिनका समावेश भी जरूरी था। इसमें श्रीमती ऐग्नेस स्मेडले की 'चाइना फाइट्स बैक' पुस्तक से ही नहीं, पत्र-पत्रिकाओं की कतरनों से भी मदद ली है, और मैं दावा कर सकता हूँ मेरी यह पुस्तक बिलकुल अप-टु-डेट है!

'नेशनल फ्रंट' के सम्पादक भाई पूरनचन्दजी जोशी ने पत्र-पत्रिकाओं की कतरनों से मदद की और भाई मुल्कराज आनन्द ने कुछ आवश्यक सलाहें दीं। इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

भाई जयप्रकाश जी ने भूमिका में लाल चीन के महत्व को बताया

ही है। अखिल भारतीय काँग्रेस साम्यवादी पार्टी के प्रधान मंत्री की कलम से जो बातें लिखी जा चुकीं, उनमें मैं कोई इजाफा नहीं करना चाहता। मैं अपने पाठकों—खास कर राष्ट्रसेवकों—का ध्यान इसके 'नेतृत्व'वाले अध्याय की ओर खींचता हूँ। किसी भी क्रान्ति के लिए योग्य नेतृत्व एक आवश्यक शर्त है। 'लाल चीन' इसीलिए कायम हो सका और जिन्दा रह सका कि उसे माव-से-तुंग, चू-तेह, पेंग-तेह-हाई, चू-हाई-तुंग, हो-लुंग, चाउ-एन-लाई, लिन-पियाव ऐसे नेता मिले। जरा इस कसौटी पर हम अपने को तोलें, तो। 'क्रान्ति-क्रान्ति' चिल्लाने से क्या होता है? —हम अपने दिल में तो क्रान्ति बिठायें और जिन्दगी में तो उसे उतारें!

हमारे राष्ट्रीय युद्ध का एक प्रकरण है—डांडी-यात्रा! काफी आकर्षक, काफी प्रोत्साहक। किन्तु, 'लाल चीन' के ६००० मील वाले उस महा-अभियान के निकट उसकी क्या हस्ती? हमारे कितने ऐसे नेता हैं, जो उस महा अभियान में डटे रह सकते? जरा, हम अपने नेतृत्व को भी टटोलें।

मैंने इस पुस्तक को किसी पेशेवर लेखक की तरह नहीं लिखा। मैं कभी-कभी वैसा भी लिखता हूँ—मैं मानता हूँ। किन्तु, इस पुस्तक के लिखने में तो मुझे अपार रस मिला है। दिन में लिखते समय, मालूम होता था मैं 'लाल चीन' की उस 'लाल सेना' के साथ मार्च कर रहा हूँ और रात में तो प्रायः ही उनके साथ होता था। आँखें खुलने पर सोचता था, क्या मेरे चर्म-चक्षु भी ये दृश्य कभी देख सकेंगे?

जो सपने मुझे जिला रहे हैं, वे कहते हैं—देखोगे; हाँ देश-काल के अनुसार उसमें थोड़ा अन्तर तो होगा ही।

एवमस्तु।

पटना
२०-३-२९ } श्री रामवृक्ष बेनीपुरी

# संघर्ष

लाल चीन

लाल चीन के संस्थापक
माओ-से-तुङ्ग

## कुछ प्रश्न

क्या सचमुच चीन का कुछ हिस्सा लाल है? वहाँ सोवियत सरकार है? वहाँ लाल सेना है? वहाँ के आकाश में लाल झण्डा फहराता है?

यदि हाँ, तो चीन के कितने बड़े हिस्से पर और किन लोगों के द्वारा? क्या उन्हें साम्यवादी कहा जाय, या लाल डकैत, जैसा कि उनके बारे में आज दस वर्षों से प्रचारित किया जा रहा है? यह हो नहीं सकता कि चीन ऐसे अविकसित देश में साम्यवादी शासन कायम हो जाय और वहाँ एक लाल सेना का संगठन हो सके। जो लोग ऐसा कहते हैं क्या वे संसार को धोखा नहीं देते? साम्यवादियों के पास आत्मा कहाँ? उनको झूठ बोलने से कौन रोक सकता है?

यदि चीन में लाल सेना है, तो उसका निर्माण कैसे हुआ? उसमें कौन लोग शामिल हैं? वे वर्ग-जागृत, मार्क्सवादी क्रान्तिकारी हैं? एक केन्द्रीय कार्यक्रम और अनुशासन पर चलते हैं? और, क्या कोई साम्यवादी पार्टी है जो उनका संचालन करती है? यदि है, तो उसका कार्यक्रम क्या है?

ये चीनी साम्यवादी कैसे लोग हैं ? दूसरे देशों के साम्य-वादियों से ये कितने मिलते-जुलते हैं ? सैर-सपाटे के शौकीन पूछ देते हैं, क्या ये दाढ़ी रखते हैं ? शोरबे के लिए हल्ला-गुल्ला मचाते हैं ? और, अपने सूटकेस में खुद का बनाया बम लिये फिरते हैं ? जो विचारवान हैं वे जानना चाहते हैं—क्या ये सच्चे मार्क्सवादी हैं ? क्या ये पूरे-पूरे साम्यवादी आर्थिक कार्यक्रम पर चलते हैं ? ये स्तालिन के हिमायती हैं या त्रात्सकी के—या दोनों के नहीं ? क्या इनका आन्दोलन विश्वक्रान्ति का एक जानदार हिस्सा है ? क्या ये अन्त-र्राष्ट्रीयतावादी हैं ? ये मास्को के हाथ के महज खिलौने हैं या, प्रधानतः राष्ट्रवादी हैं जो स्वाधीन चीन के लिए लड़ रहे हैं ?

इनके दुश्मन भी स्वीकार करते हैं कि ये बड़े लड़ाके—भयंकर लड़ाके और असीम साहसी हैं। वह कौन चीज है जिसने इन्हें ऐसा लड़ाका बना रखा है ? इन्हें संगठित रखने-वाला सूत्र कौन-सा है ? उनके इस आन्दोलन का आधार क्या है ? उनकी आशायें, उद्देश्य और स्वप्न क्या हैं, जिनके लिये मस्ताना बने इन्होंने सैकड़ों लड़ाइयाँ लड़ी हैं, घेरों को तोड़ा है, अकाल का सामना किया है, बीमारी और महामारी के शिकार हुए हैं, और अन्त में छः हजार मीलों का वह महा-अभियान किया है जिसमें उन्हें १२ प्रान्तों को पार करना पड़ा और च्यांग-काई-शेक की सेना को तहस-नहस कर आखिर उत्तर-पश्चिम के प्रदेश में पहुँच कर ही इन्होंने दम लिया।

इनके नेता कौन हैं ? क्या ये पढ़े-लिखे लोग हैं जिनका

कोई आदर्श होता है, सिद्धान्त होता है, विचार-धारा होती है? ये सामाजिक देवदूत हैं या महज मूर्ख किसान जो अपनी स्थिति के लिये अन्धाधुंध लड़ रहे हैं? उदाहरण के लिए यह माव-से-तुंग लाल डाकू नं० १ कौन है, जिसके सिर पर नानकिंग की सरकार ने दो लाख चाँदी के डालर इनाम बोल रखा था? इस कीमती पूर्वीय सिर में क्या भरा हुआ है? या माव मर गया जैसा कि च्यांग-काई-शेक के जी-हुजूरों ने कई बार घोषणा की है? और यह चू-तेह कौन है जिसे लाल सेना का कमांडर-इन-चीफ कहा जाता है और जिसके सिर की कीमत भी इतनी ही कूती गई है? यह लिन-पिआव अट्ठाईस वर्ष का छोकरा कौन है जिसकी पहली लाल सेना ने आज तक कभी भी हार न खाई? उसका घर कहाँ है? फिर वे अन्य लाल नेता कौन हैं जिनकी मृत्यु की खबर बार-बार छपती है, किन्तु कुछ ही दिनों के बाद वे फिर युद्ध-क्षेत्र में विजय प्राप्त करते हुए देखे जाते हैं?

दस वर्षों तक अपने से तायदाद, संगठन और सामान में बड़ी-बड़ी च्यांग-काई-शेक की सेना से लड़ते-झगड़ते हुए भी जिसने अपना अस्तित्व बचा रखा उस लाल सेना के इस कर्तृत्व का क्या रहस्य है? उसके पास न कोई बड़ा कल-कारखाना था, न उसके पास तोपें, गैस, हवाई जहाज और रुपये थे, तो भी किस तरह उसने अपने को जिन्दा ही नहीं रखा, अपनी शक्ति भी बढ़ाई? उसने कौन-सी युद्ध-कला का प्रयोग किया? उसकी शिक्षा-पद्धति क्या थी? उसके सलाहकार कौन थे? क्या कुछ रूसी सैनिक उसका संचालन और पथ-प्रदर्शन कर रहे थे? वह कौन सी सैनिक प्रतिभा थी जिसने च्यांग काई-शेक के सब बड़े और कीमती विदेशी सलाहकारों के स्टाफ को

झुकाया, जिसका प्रधान था हिटलर का दाहिना हाथ, जर्मन जेनरल वोन-सिकेट ?

चीन की सोवियत किस किस्म की है ?

क्या किसान उसका समर्थन करते हैं ? नहीं तो वह किस तरह टिकी है ? चीनी साम्यवादी दिहातों में साम्यवाद की किस हद तक स्थापना करते हैं, जहाँ पर कि उनका प्रभाव अदम्य है ? लाल सेना ने बड़े शहरों को क्यों नहीं लिया ? क्या इससे यह नहीं साबित होता कि यह मजदूरों के नेतृत्व में चलनेवाला साम्यवादी आन्दोलन नहीं, वरन् किसानों का विद्रोह मात्र है ? फिर चीन में साम्यवाद का नाम ही कैसे लिया जा सकता है, जहाँ की अस्सी सैकड़े जन-संख्या कृषि-जीवी है और जहाँ उद्योग-धन्धा अभी घुटनों ही के बल चल रहा है ?

वहाँ के साम्यवादियों की पोशाक क्या है ? वे क्या खाते हैं, क्या खेलते हैं, किस तरह प्यार करते हैं और कौन काम करते हैं ? उनके विवाह का विधान क्या है ? क्या सचमुच औरतें सार्वजनिक चीज बना दी गई हैं जैसा कि उनके दुश्मन ढिंढोरा पीटते हैं ? उनके लाल कारखाने कैसे हैं ? उनकी नाटक-मंडलियाँ कैसी हैं ? अपने देश की अर्थ-नीति का संगठन वे किस तरह करते हैं ? स्वास्थ्य, मनोरंजन, शिक्षा का क्या प्रबन्ध है और 'लाल-संस्कृति' की क्या विशेषतायें हैं ?

लाल-सेना की तायदाद कितनी है ? क्या पाँच लाख, जैसा कि बाहर के साम्यवादी पर्चे बतलाया करते हैं ? यदि ऐसी बात है तो उन्होंने चीन पर पूरा कब्जा क्यों नहीं कर लिया ? उन्हें हथियार और युद्ध सामग्रियाँ कहाँ से मिलती हैं ?

उनका अनुशासन कैसा है? उनमें नैतिकता कितनी है? क्या यह सच है कि सैनिक और उनके सेनापति एक ही तरह से रहते, एक ही खाना खाते और आपस में भाई-चारे का बर्ताव रखते हैं?

चीन के साम्यवादी आन्दोलन का भविष्य क्या है? इसका ऐतिहासिक विकास कैसे हुआ? क्या यह सफल होगा? और सफल हुआ तो संसार पर उसका क्या प्रभाव पड़ेगा— संसार की राजनीति पर, संसार के इतिहास पर? जापान पर और अँग्रेजी और अमेरिकन पूँजीवाद पर, जिसका बहुत बड़ा हिस्सा चीन में लगा हुआ है? क्या साम्यवादियों की कोई वैदेशिक नीति भी है?

अन्त में, चीन के साम्यवादियों द्वारा एक राष्ट्रीय संयुक्त मोर्चे की जो बात कही जाती है, उसका क्या अर्थ है? क्या यह सच है कि उन्होंने च्यांग-काई-शेक को कैद करवाया और आखिर उसे इस कार्यक्रम को मानने के लिए मजबूर ही किया? इस मेलमिलाप के बाद लाल सेना और सोवियत सरकार की स्थिति क्या है? यह आठवीं रूट आर्मी क्या बला है, जिसकी मार से जापानी सेना तबाह-तबाह है?

ये या ऐसे अनेक प्रश्न हैं, जो संसार की प्रगति के निरीक्षकों और अखबारों के सजग पाठकों के दिल में आज दस वर्षों से लगातार उठते आये हैं। किन्तु इनका जवाब मिलना मुश्किल था। चीन की 'बड़ी दीवाल' संसार-प्रसिद्ध है— किन्तु, च्यांग-काई-शेक ने वहाँ के साम्यवादियों और सोवियत सरकार के खिलाफ जो सेना की दीवार खड़ी कर रखी थी, वह असल में अभेद्य थी। जिसके कन्धे से कन्धा मिलाकर, जिनकी सहायता और सहयोग से उसने राष्ट्रीय सरकार

की वृद्धि और विस्तार किया, उन्हें ही वह 'लाल डाकू' का नाम देकर उनका कत्लेआम कराता रहा। वह कत्लेआम—जिसके नजदीक चंगेज का कत्लेआम भी शरमिन्दा हो! किन्तु, इस महान् संकट में वहाँ के साम्यवादियों ने जो धैर्य, हिम्मत, बहादुरी और अध्यवसाय दिखलाया, वह भी इतिहास में अपनी मिशाल नहीं रखता। एक-दो वर्ष नहीं, दस वर्ष तक यह खूँरेजी कायम रही। किन्तु.........

किन्तु, आज वह जमाना भी आया है, कि च्यांग-काई-शेक को झुकना पड़ा और सत्य अपने असल रूप में दुनिया पर प्रकट हुआ है। मनुष्य-निर्मित कोई बड़ी-से-बड़ी दीवाल या बाँध क्या सत्य के प्रवाह को रोक सकता है?

# अभागा चीन

किन्तु, चीन में किस तरह सोवियत कायम हुई, इसके लिए हमें उसके पहले का इतिहास संक्षेप में जान लेना जरूरी है।

चीन संसार का सबसे पुराना राष्ट्र है। प्राकृतिक साधन और ऐश्वर्य में ही नहीं, कला-कौशल के विकास में भी संसार में उसका प्रमुख स्थान रहा है। कागज और छापाखाना—मनुष्य की सबसे बड़ी उपयोगी इन दोनों चीजों का आविष्कारक चीन ही समझा जाता है। बारूद वगैरह अन्य कई चीजों के आविष्कार का दावा भी चीन को है।

अपने देश के विस्तार और जनसंख्या के कारण भी चीन को संसार में सर्वप्रमुख स्थान प्राप्त है। विस्तार में रूस का राज्य बड़ा हो, किन्तु जनसंख्या में तो कोई उसकी छाया भी नहीं छू सकता।

पैंतालीस करोड़ की जनसंख्या वाला यह देश, अपने पड़ोसी हिन्दुस्तान की तरह, यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति के बाद, धीरे-धीरे उसके चंगुल में फँसने लगा और यद्यपि हिन्दुस्तान की तरह यूरोपियनों का एकछत्र राज्य तो वहाँ कायम नहीं हुआ, किन्तु संसार में उसका स्वतन्त्र अस्तित्व भी नहीं छोड़ा गया। उन्नीसवीं सदी के अन्त तक, ऐसा मालूम होता, यूरोपियन राष्ट्रों ने टुकड़े-टुकड़े करके उसे बाँट लिया है।

१८४२ ई० में हौंगकौंग पर इँगलैण्ड का अधिकार हुआ। १८५७ और १८६० में तीनसिन और पेकिंग की जो सुलह हुई, उसमें इँगलैण्ड के साथ फ्रांस को भी बहुत-सी सुविधायें दी गईं। १८९५ में जापान ने तैवान पर कब्जा किया और उसी साल कोरिया को स्वतंत्र मानने के लिए उसे बाध्य करके १९१० में उसे अपने आधिपत्य में ले लिया। १८९८ में कियाचाऊ पर जर्मनी का कब्जा हुआ और उसी साल वीहाइवी पर इँगलैण्ड और पोर्ट आर्थर पर रूस ने दखल जमाया। किन्तु, इन स्थानों के छिन जाने की कथा से ही चीन पर किये गये विदेशी प्रहारों की करुण कहानी पूरी नहीं होती। चीन से हरजाने के रूप में बड़ी-बड़ी रकमें वसूल की गईं, उससे तिजारत की खास-खास सुविधायें प्राप्त की गईं, यहाँ तक कि आयात-कर पर भी उसका अधिकार नहीं छोड़ा गया। इनके चलते चीन का आर्थिक स्वामित्व बिलकुल विदेशियों के हाथ में चला गया। किन्तु, विदेशियों में इस 'लूट के माल' के बँटवारे को लेकर खटपट भी शुरू हुई और रूस और जापान का वह १९०४ वाला जो महायुद्ध हुआ, उसका रहस्य यही है। इस युद्ध ने इन लुटेरे राष्ट्रों के सामने एक प्रश्न खड़ा किया—क्या लूट का माल मुँह में पहुँचने के पहले ही हम लड़-कट मरेंगे? १८९९ में, अमेरिका अपना "खुला दरवाजा" का पैगाम लेकर पहुँच चुका था। सब के सब लुटेरे इकट्ठे हुए और उन्होंने चीन का आर्थिक बँटवारा शुरू किया। यांग्ज़े नदी की तराई पर इँगलैण्ड का, दक्खिनी चीन पर फ्रांस का और उत्तरी चीन पर रूस का 'प्रभाव-क्षेत्र' कायम किया गया। यह बाँट-बखरा ऐसा हुआ कि यूरोपियनों की राजनीतिक शब्दावली में चीन 'एक भौगोलिक नाम मात्र' रह गया!

जिस समय चीन का यह निर्मम, निष्ठुर बँटवारा चल रहा था, चीन पर मांचू-वंश का राज्य था। यह राज्य बिलकुल निकम्मा और हिजड़ा था। विदेशियों से हुई हर लड़ाई में हारता और एक राष्ट्र से हारने के बाद फिर किसी दूसरे राष्ट्र से लड़ाई छेड़ता, जिसमें फिर पराजित और अपमानित होता। चीन का जो रोब और दबदबा संसार पर था, वह धीरे-धीरे खतम होता गया। अब वह अपमान और व्यंग्य का निशाना बन गया था। विदेशी राष्ट्र उसे 'पूरब का बीमार आदमी' कहते, जिसकी मौत की घड़ियाँ भी वे खुशी-खुशी गिन रहे थे!

चीन की इस दुर्गति ने उसके कुछ नौजवानों के दिल पर ठेस दी। इस बार-बार के अपमान और लांछन ने उनके कलेजे को चूर-चूर कर दिया। उन नौजवानों में ही डा० सन-यात-सेन थे, जिन्हें हम चीन का त्राता कहकर पुकार सकते हैं। १८८५ में जब चीन को फ्रांस ने बुरी तरह पराजित किया, डा० सेन ने पहली बार संकल्प किया कि क्रान्ति द्वारा इस राज्य को उलटे बगैर कल्याण की कोई दूसरी सूरत नहीं। किन्तु, अपनी इस कल्पना को संगठन का रूप उन्होंने दिया १८९४ में, जब चीन और जापान में युद्ध शुरू हुआ। चीन में रहकर ऐसा संगठन करना असम्भव जान डाक्टर सन होनोलूलू गये और वहीं 'चीन-पुनर्जीवन-संघ' की नींव डाली—जो पीछे चलकर कुओ-मिन्-तांग के रूप में परिणत हुआ। इस संघ के सदस्य प्रथमतः अपने परिवार के लोग और उनके भाई बने और उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति इस काम में अर्पण कर देने का प्रण किया। विदेशों के चीनी व्यापारी और विद्यार्थी खासकर

इस ओर आकृष्ट हुए। सशस्त्र विप्लव की तैयारियाँ की जाने लगीं और १८९५ और १९०० में दो बार इसकी चेष्टायें की गईं, किन्तु, असफल। १९०५ में पार्टी का पुनर्संगठन किया गया और तब से १९११ तक हर साल एक-न-एक सशस्त्र विद्रोह होता रहा। आखिर १० अक्तूबर १९११ को डा० सन-यात-सेन के मनोरथ पूरे हुए। मांचू शासन को खतम कर एक प्रजातंत्र की स्थापना की गई, जिसके प्रथम राष्ट्रपति डा० सन-यात-सेन चुने गये।

डाक्टर सन-यात-सेन एक चतुर संगठन-कर्ता और क्रान्ति-नेता ही नहीं थे, वह एक महान विद्वान और विचारक भी थे। यूरोप और अमेरिका की कई बार उन्होंने यात्रायें की थीं, वहाँ के प्रमुख विचारकों से मिले थे एवं आधुनिक राजनीति और अर्थशास्त्र का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया था। अपने इस अध्ययन के आधार पर उन्होंने चीन के लिए 'तीन सिद्धान्त' का निर्माण किया था। वह था—जातीय एकता, जनता का शासन और सामाजिक अर्थनीति। जातीय एकता से उनका मतलब था, किसी एक वंश या जाति के आधिपत्य का नाश करना और चीन की सभी जातियों को एक सूत्र में ग्रथित करना। जनता का शासन प्रजातंत्र के अर्थ में वह व्यवहार करते थे। हाँ, आज जहाँ शासन तीन भागों—कानून-निर्माण, शासन-संचालन और न्याय-व्यवस्था—में विभक्त किया गया है, वहाँ उन्होंने उसमें दो और बातों का समावेश किया था। किसी प्रश्न पर आम मत-ग्रहण और किसी पदाधिकारी के पदच्युत किये जाने का अधिकार जनता के हाथों में देना। किन्तु, इन सबसे उनका तीसरा सिद्धान्त व्यापक था। उसके अनुसार वह ज़मीन

बराबर बँटवारे के पक्षपाती थे और पूँजी पर नियंत्रण के हिमायती। जब वह राष्ट्रपति बनाये गये, अपने तीनों सिद्धान्तों को उन्होंने काम में लाने की चेष्टा की। किन्तु, थोड़े ही दिनों में उनपर स्पष्ट हो गया, क्रान्ति में सफलता प्राप्त करना जितना आसान होता है, एक नये समाज का निर्माण उतना आसान नहीं होता। उनके जो हिमायती थे, वे ही फिसड्डीपना दिखाने लगे। उन्होंने ऊब कर इस्तीफा दे दिया।

यहाँ पर चीन के एक खास तबके—वर्ग की स्थिति को समझ लेना है, जिसके बिना चीन का इतिहास समझना मुश्किल है। यह है वहाँ का फौजी तबका। चीन के हर प्रान्त में एक या अनेक छोटे-बड़े फौजी सरदार थे। वे सरदार अपने पास सेना रखते, किसी मोर्चे की जगह पर गढ़ बना-कर रहते, लूटमार करते, कर उगाहते। आप उन्हें फौजी सामन्तशाह कह सकते हैं। जब तक मांचू-वंश को गद्दी से हटाना था, उनमें से बहुतों ने डाक्टर सन को मदद दी थी, किन्तु, उनके सुधारों से उनका कोई मतलब नहीं था। क्योंकि उन सुधारों का मतलब तो था, उनके अपने ही तबके के आधिपत्य का नाश। सन-यात-सेन के इस्तीफे के बाद यूआन-शिह-काई नामक एक व्यक्ति प्रजातंत्र का अधिपति चुना गया। वह भी एक फौजी सरदार था। थोड़े दिनों तक तो उसने अच्छी तरह काम किया, किन्तु, पीछे अपना खूंखार पंजा दिखाने लगा। पहले उसने अपने को आजीवन सभापति बनाया, फिर राजतंत्र स्थापित करने की कोशिश की। उसकी यह कोशिश तो कामयाब नहीं हुई, १९१६ में वह चल बसा। लेकिन, सन-यात-सेन की पार्टी बिल्कुल कमजोर हो गई—प्रजातंत्र का विस्तार कहाँ तक होगा, वह सिकुड़ता गया

और १९१७ में वह दक्खिन, में ही, खासकर क्वांगतुंग प्रान्त में, सीमित हो गया। कान्तन को राजधानी बनाकर डा० सन-यात-सेन मानो भविष्य चीनी प्रजातंत्र की धूनी रमाने लगे।

१९१७ में ही रूस में क्रान्ति हुई और १९२० में चीन की साम्यवादी पार्टी का जन्म हुआ। डा० सन-यात-सेन साम्यवादी नहीं थे—मार्क्स के कुछ सिद्धान्तों की वह आलोचना भी करते थे। किन्तु, रूस की इस विजय ने उन्हें कम प्रभावित नहीं किया। रूस के क्रान्तिकारी नेताओं से इसके पहले वह मिल चुके थे और उनकी धुन और त्याग के वह बहुत कायल थे। एक बार उनमें और रूस के एक क्रान्तिकारी में बातचीत हुई थी। उसने पूछा था—चीन में क्रान्ति को सफल होने में कितने दिन लगेंगे? डा० सन ने कहा—तीस वर्ष। किन्तु, रूस में? उन्होंने पूछा था। उसने जवाब दिया था—सौ वर्ष! जब १९१७ में ही वह क्रान्ति सफल हुई तो स्वभावतः डा० सन के मन में जिज्ञासा उठ रही थी कि आखिर वह कौन-सी राह थी कि उनकी क्रान्ति इतनी जल्द सफल हुई। इतने ही में चीन में साम्यवादी पार्टी कायम हुई, और वह जल्द-जल्द तरक्की करने लगी। डा० सन स्वभावतः उस ओर आकृष्ट हुए और १९२४ में उन्होंने वह कदम बढ़ाया जिसने कुछ ही दिनों में चीन में एक सजीव उथल-पुथल ला दी—उसमें एक नवजीवन का-सा संचार हुआ।

१९२४ में उन्होंने कुओ-मिन्-तांग का पुनर्संगठन किया। इस पुनर्संगठन में उनकी तीन विशिष्ट नीति थी। पहली—साम्यवादी पार्टी को कुओ-मिन्-तांग में शामिल कर एक संयुक्त मोर्चा बनाना। दूसरी—किसानों और मजदूरों के संगठन की

ओर ध्यान देकर कुओ-मिन्-तांग के आन्दोलन को जन-आन्दोलन का रूप देना और तीसरी—रूस से सुलह करना।

निस्सन्देह यह कदम एक जबर्दस्त कदम था और इसका प्रभाव इतना व्यापक हुआ, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। मजदूर-संघों और किसान-सभाओं का जाल समूचे चीन में बिछ गया। पीड़ित और पददलित किसान-मजदूरों ने अपना सर अभिमान से उठाया और राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए सब कुछ बलिदान करने की तत्परता दिखलाई। कुओ-मिन्-तांग की सदस्य-संख्या बहुत बढ़ गई। उसमें नये-नये आदर्शवादी युवक-युवतियों का प्रवेश हुआ, जिनके जोश और उत्साह से समूचा देश आप्लावित होने लगा। रूस से राजनीतिक और सैनिक विशेषज्ञ आये और उन्होंने वहाँ के नौजवानों को—अग्रतः चतुरोवेदाः पृष्ठतः सशरः धनुः—के अनुसार राजनीति और युद्ध-कला दोनों में निपुण बना दिया। इन युवकों की सेना प्रजातंत्र की ओर से विजयाभियान को निकली और कुछ ही दिनों में फौजी सामन्तशाही की शक्ति को तहस-नहस कर दिया गया। इनकी पच्चीस हजार की सेना, दो लाख की सेना से बेखौफ भिड़ जाती और विजय पाती। विदेशियों में भी थर्राहट मच गई। एक बार जरा जापान ने आँख दिखलाई, तो उसे इस तरह दपेटा गया, कि बेचारा समझ न सका कि यह कौन-सा भूत कहाँ से आकर उसके सामने खड़ा हो गया है। तीन वर्षों में ही क्या-से-क्या हो गया। संसार के राजनीतिक आकाश में चीन का सितारा फिर बुलन्द हुआ और उसके तेज और जोत की ओर समूचा संसार आश्चर्य-चकित होकर देखने लगा।

किन्तु, चीन का दुर्भाग्य अभी खतम नहीं हुआ था।

संयोग ऐसा कि दूसरा वर्ष खतम होते-न-होते सन-यात-सेन चल बसे। उनके मरते ही कुओ-मिन्-तांग में फूट के लक्षण दीख पड़ने लगे और दो वर्ष के अन्दर ही एक महा विस्फोट हुआ, जिसने सब करा-धरा नाश कर दिया।

साम्यवादी पार्टी का शामिल करना, किसानों और मजदूरों का संगठन करना और रूस से सहायता लेना—ये तीनों ही बातें ऐसी थीं, जिन्हें सन-यात-सेन के पुराने साथियों में से अधिकांश नापसंद करते थे। उनकी नापसंदी आधार-हीन नहीं थी। पहले, वे थे कौन, हम इसे देख लें। प्रारम्भ से ही अधिकांशतः चीन के विदेशी व्यापारी डा० सन के मददगार थे—विदेशी व्यापारी और विदेशों में पढ़नेवाले विद्यार्थी। ये दोनों ही शोषक वर्ग के थे और इनकी मदद इसलिए थी कि ये समझते थे कि चीन में जब प्रजातंत्र होगा तो इन्हीं का बोल-बाला होगा—ये ही हाकिम-हुक्काम बनेंगे और स्वदेशी व्यापार के नाम पर इन्हें मालामाल होने का मौका मिलेगा। डा० सन पहले भी कहा करते थे कि हमारे अनुयायी हमारी बातों को नहीं समझते हैं। सचमुच, इनके दिमाग में सामाजिक पुनर्निर्माण की बात घुस नहीं सकती थी। फिर जब डा० सन ने ये तीन नई नीतियाँ अख्तियार कीं, तब तो वे और भी घबराये। किन्तु, डा० सन का व्यक्तित्व कुछ इतना ऊँचा था कि उनकी जिन्दगी में किसी को कुछ बोलने की हिम्मत नहीं होती थी। सभी उनकी हाँ-में-हाँ मिलाते थे। पर, उनके मरते ही वे अपनी नापसंदी साफ-साफ दिखलाने लगे। इधर उत्तरी विजयाभियान के बाद बहुत फौजी सामन्तों ने भी पराजित होकर या डरकर कुओ-मिन्-तांग की हुकूमत क़बूल की और उनमें से बहुत-से उसके मेम्बर भी बन गये। इस [illegible]

ने उन पुराने दकियानूस मेम्बरों का साथ देना शुरू किया और इन दोनों के सम्मेलन से एक बड़ी प्रतिक्रियावादी ताक़त पैदा हो गई। एक बात और भी हुई। उत्तरी विजयाभियान के चलते पार्टी के सेनानायकों की महत्ता बढ़ गई और उन्हें अपनी महत्वाकांक्षा के लिए प्रजातंत्र एक अनावश्यक बंधन मालूम होने लगा। च्यांग-काई-शेक प्रधान सेनापति था। उसी को केन्द्रित कर प्रतिक्रियावादियों ने गुटबंदी शुरू की। अन्तिम बात यह हुई कि शांघाई-विजय के बाद विदेशी राष्ट्रों में भी हड़कम्प मच गया और उन्होंने देखा कि अब तो चीन केवल खड़ा ही नहीं हो रहा है, वह रूस का साथी भी बनने जा रहा है। अतः वे लोग किसी तरह चीन में फूट डालने की चेष्टा में लगे। च्यांग-काई-शेक के कान उन्होंने भरे। कान ही नहीं, उसकी जेब भी भरी।

पहले तो कुओ-मिन्-तांग में साम्यवादियों का प्रभाव कम करने की चेष्टायें हुईं। साम्यवादियों के लिए सख़्त-से-सख़्त नियम बनाये गये। कार्यकारिणी और पदाधिकारियों में उनकी संख्या निश्चित कर दी गई—वे एक तिहाई से ज्यादा नहीं रहने पावें। फिर, किसान-सभाओं और मजदूर-संघों से साम्यवादियों को निकालने की कोशिश की गई। जब इससे भी काम नहीं चला, तो च्यांग-काई-शेक ने खुलेआम बगावत शुरू की। प्रजातंत्र की राजधानी वू-हान में थी—हांकाऊ का नया नाम वू-हान रखा गया था। च्यांग ने वू-हान की सत्ता की अवहेलना कर नानकिंग में एक नई सरकार की स्थापना कर ली। साम्यवादियों ने वू-हान को केन्द्र बना एक सेनापति की सहायता से च्यांग को सबक सिखाना चाहा। किन्तु, उस सेनापति ने भी धोखा दिया। नानकिंग और वू-हान

दोनों मिल गये और साम्यवादियों का कत्लेआम शुरू हुआ। साम्यवादी, किसान, मजदूर, विद्यार्थी और विद्रोही सैनिक—सब तलवार के घाट उतारे जाने लगे !

डा० सन-यात-सेन की ४० वर्ष की तपस्या, जब वह पूरी होने जा रही थी, अचानक असफल हो गई। अभागा चीन—अभी न जाने तुम्हें क्या-क्या देखना बदा है !

# सोवियत का उदय

जिस समय च्यांग-काई-शेक ने साम्यवादियों और उनके सहायकों—किसानों, मजदूरों और विद्यार्थियों—का घोर दमन आरम्भ किया, उस समय साम्यवादियों के निकट एक प्रश्न खड़ा हुआ, अब क्या किया जाय ?

उस समय चीन में रूस की साम्यवादी सरकार और अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी पार्टी के प्रतिनिधि भी थे। चीन के भी बड़े-बड़े साम्यवादी नेता थे, किन्तु, ऐसा मालूम हुआ, जैसे सबकी बुद्धि मारी गई। उस अवसर पर एक की प्रतिभा चमकी, जिसके कारण दुनिया यह असम्भव सम्भव हुआ देख सकी।

उसका नाम है माव-से-तुंग। वह एक किसान का बेटा है। बड़ी-बड़ी दिक्कतों में उसने अपनी पढ़ाई जारी रखी थी। नाना तरह की कठोर यंत्रणाओं की आग में उसने अपने शरीर को तपाया था—इसलिए कि जिस समय उसका देश, उसका समाज पुकार करे, वह सभी संकटों का सामना करते हुए अपने आदर्श की पूर्ति कर सके।

उसने देखा, शहरों में केन्द्रित मजदूरों में इस समय काम करना असम्भव है। विद्यार्थियों में भी इस हालत में कुछ होने जाने को नहीं। किन्तु, एक बड़ी अमोघ शक्ति है, जिसका उपयोग किया जा सकता है। साम्यवाद का सिद्धान्त

मजदूरों के नेतृत्व को सबसे आगे स्थान देता है। किन्तु, किसान के इस बेटे ने देखा, चीन के किसान जिस स्थिति पर पहुँचा दिये गये हैं, उनमें काफी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति जग उठी है और यदि इन्हें ठीक से इस्तेमाल किया जाय, तो इनके द्वारा भी चीन में साम्यवाद की स्थापना की जा सकती है।

चीन की साम्यवादी पार्टी का वह एक विशिष्ट सदस्य था। साम्यवादी पार्टी के जन्मदाताओं में उसकी गिनती थी। पार्टी की स्थापना के बाद, वह अपने प्रान्त हूनान की प्रांतीय पार्टी का मन्त्री चुना गया था। उसने हूनान के मजदूरों और विद्यार्थियों का जबर्दस्त संगठन किया था। उसके नेतृत्व में हूनान में मजदूरों की एक आम हड़ताल मनाई गई थी, जो चीन के मजदूर-आन्दोलन की एक जबर्दस्त घटना समझी जाती है। हूनान के बाद वह पार्टी की ओर से कान्तन और शांघाई में मजदूरों का संगठन करता रहा था।

इसी बीच वह बीमार पड़कर अपने देहात के घर लौटा। इस बार उसने किसानों में जो जागृति देखी, इसका उसपर बड़ा प्रभाव हुआ। इस बीमारी में भी उसने किसान-सभायें कायम करना शुरू किया। उसे बड़ी सफलता मिली। किसान-सभाओं ने तुरत ही जंगी रूप अख्तियार किया। जमीन्दार घबराये—उसकी गिरफ्तारी का वारंट निकला। उसने कान्तन भागकर अपनी जान बचाई।

उस समय साम्यवादी पार्टी और कुओ-मिन्-तांग का संयुक्त मोर्चा कायम था। उसने कुओ-मिन्-तांग की ओर से किसान-संगठन करने का भार अपने ऊपर लिया। इसके लिये कार्यकर्त्ताओं का एक शिक्षण-शिविर उसने खोला—जिसमें

चीन के २१ प्रान्तों के कार्यकर्त्ता शामिल हुए थे। वह एक अखबार का सम्पादक भी बनाया गया। उस अखबार द्वारा किसान-आन्दोलन के लिए वह खूब प्रचार भी करता।

इसी समय उसने एक पुस्तिका लिखी। उस पुस्तिका में उसने किसान-संगठन की आवश्यकता पर जोर दिया और जमीन-सम्बन्धी कानूनों में क्रांतिकारी परिवर्तन करने की सिफारिश की। किन्तु, उसके ये विचार साम्यवादी पार्टी के मन्त्री चेन-तू-स्यू को पसंद नहीं आये। चेन अपनी विद्वत्ता और अध्ययन के लिए चीन भर में मशहूर था। वह पार्टी का सर्वेसर्वा था। उसके सामने किसी की कुछ नहीं चलती थी। माव की पुस्तिका को उसने पार्टी के मुखपत्र तक में प्रकाशित नहीं होने दिया।

चेन और माव में इसी समय से जो संघर्ष शुरू हुआ, वह बढ़ता ही गया। एक तरफ थी अगाध विद्वत्ता, दूसरी ओर था प्रौढ़ अनुभव। किन्तु, जहाँ तक बहस का सम्बन्ध है, अनुभव पर विद्वत्ता की विजय होती है।

किसान-संगठन का निरीक्षण करते हुए एक बार फिर माव अपने प्रान्त हूनान आया और पाँच जिलों की परिस्थिति का गम्भीर अध्ययन कर, आँकड़ों के बल पर उसने फिर एक पुस्तिका लिखी और उसे पार्टी के केन्द्रीय समिति में पेश किया। दूसरे वर्ष वू-हान में किसानों की एक अन्तर्प्रान्तीय सभा हुई। कई सूबों के किसान-प्रतिनिधि उसमें शामिल हुए थे। रूस के दो विशेषज्ञ भी थे। सबने इस पुस्तिका को एकमत से स्वीकार किया। किन्तु आश्चर्य, चेन के प्रभाव से ओतप्रोत साम्यवादी पार्टी की केन्द्रीय समिति ने उसे साफ अस्वीकार कर दिया।

उसी समय च्यांग-काई-शेक ने अपना खूनी पंजा दिखाना शुरू किया था। माव चाहता था कि यही मौका है जब जमीन के सम्बन्ध में एक क्रान्तिकारी नीति अख्तियार करके किसानों को अपनी ओर कर लिया जाय और उन्हें सशक्त करके प्रतिक्रियावादी लहरों का सामना करने के योग्य बनाया जाय। किन्तु, किताबी ज्ञान के कीड़े चेन के दिमाग में यह बात ही नहीं समाती थी कि किसानों में भी इतनी क्रान्तिकारी प्रवृत्ति हो सकती है कि वे इस प्रतिक्रिया का मुकाबला कर सकें। वह तो अब भी उन्हीं से उम्मीद किये बैठा था, जो क्रान्ति के दुश्मन थे। वह उनके हृदय को जीतना चाहता था— फलतः, फूँक-फूँककर पैर उठाना चाहता था।

बेचारे चेन की ही क्या बात! उस समय रूस के प्रतिनिधि की हैसियत से मो० बोरोदीन और पूर्वीय देशों के विशेषज्ञ के रूप से हमारे कामरेड राय साहब वहाँ तशरीफ रखते थे और सब चीजों का बंटाढार करने में इन तीनों सज्जनों के ही हाथ बताये जाते हैं।

जब च्यांग-काई-शेक ने नंगा नृत्य शुरू किया, बोरोदीन और राय साहब रूस भाग गये। पार्टी के सदस्यों को हुक्म हुआ कि विदेश चले जाओ या कहीं छिपकर रहो। बेचारे चेन से पार्टी का मंत्रित्व छीन लिया गया। पीछे वह च्यांग-काई-शेक के हाथों गिरफ्तार हुआ, कैदी बना।

जब ये सब बातें हो रही थीं, माव की प्रतिभा चमकी। आँखें वे, जो अंधेरे में देखें। इस काले अंधकार में भी माव को पथ दिखाई पड़ा और वह पथ था उसका वही पुराना पथ, जिसके लिए वह अब तक पार्टी में लड़ता आ रहा था। वह अपने प्रान्त हूनान आया और वहाँ के किसानों में उसने

काम करना शुरू किया। उस समय अगहनी की फसल का वक्त था। उस समय जिस विद्रोह की नींव उसने डाली वह "अगहनी का विद्रोह" के नाम से चीनी इतिहास में मशहूर है।

उसके कार्यक्रम में तीन बातें मुख्य थीं—

किसानों और मजदूरों की एक क्रान्तिकारी सेना तैयार करना, जमीन्दारों का धन ज़ब्त करना और सोवियत्-शासन कायम करना।

अगहनी का यह विद्रोह बहुत ही सफल रहा। इसी के सिलसिले में सबसे पहले किसानों-मजदूरों की पहली लाल सेना १९२७ के सितम्बर महीने में बनी। इस सेना के सैनिक तीन ज़रिये से आये—किसानों से, खान के मजदूरों से और सरकारी सेना से। हन्यांग की खानों के मजदूरों ने पहली टुकड़ी दी, दूसरी टुकड़ी पिंग-कियांग, ल्यू यांग, लिलिंग और दो दूसरे हल्के के किसान नौजवानों से बनी और तीसरी टुकड़ी वू-हान की सरकारी फौज से मिली, जिसने विद्रोह कर दिया था। लाल सेना के इस पहले दस्ते का हूनान-प्रान्तीय-साम्यवादी-पार्टी ने तो अपनी लालसेना के रूप में स्वीकार कर लिया, किन्तु, पार्टी की केन्द्रीय कमीटी ने उसे स्वीकृति नहीं दी—चेन निकाल दिया गया था, किन्तु उसकी आत्मा वहाँ बैठी थी!

इसी समय माव एक बार दुश्मन के हाथों में आकर भी बाल-बाल बचा। वह इस पहली लालसेना का संगठन करते समय कुओ मिन्-तांग के आदमियों के हाथ में पड़ गया। उस समय कत्लेआम अपनी चरम सीमा पर थी। ज़रा सन्देह पर ही साम्यवादियों को गोली मार दी जाती थी। उसे पकड़-

कर एक थाने पर भेजा जा रहा था, जहाँ उसे गोली मार दी जाती। जब उसे इस प्रकार लिये जा रहे थे, रास्ते में अपने एक जानपहचान के आदमी से उसकी भेंट हो गई और उनसे कुछ रुपये ले, सिपाहियों को घूस देकर, उसने निकल जाना चाहा। सिपाही तो राजी हुए, किन्तु, जमादार न माना। आखिर जब थाने से करीब दो सौ गज पर था, वह रस्से में एक जबर्दस्त झटका दे चम्पत हो गया।

आगे वह भागा, पीछे सिपाही दौड़े। थोड़ी दूर पर सघन घास उपजी थी। वह उसमें छिप रहा। सिपाही कुछ किसानों को पकड़कर उस घास में उसे खोजने लगे। कभी-कभी वे उस के इतने निकट पहुँच जाते, कि उनकी नाक की हवा उसकी देह में स्पर्श करती। किन्तु, हर बार नजदीक जा-जा करके भी वे वहाँ से दूसरी ओर मुड़ जाते। आखिर शाम होने तक जब वह नहीं मिला, वे हार कर लौट आये। इधर वह उठा और जंगलों, पर्वतों को छानता, दूसरे ही दिन, दूसरे ज़िले में जा पहुँचा।

खैर, पहली लाल सेना बनी और वह काम करने लगी। माव पार्टी की मोर्चा-कमिटी का अध्यक्ष चुना गया और उसकी अध्यक्षता में यह छोटी सेना हूनान में अपना ऐतिहासिक काम करती रही। इस सेना को बर्बाद करने के लिए च्यांग-काई-शेक के पिट्ठुओं ने कुछ उठा नहीं रखा। कितने अवसरवादी सैनिक जो इसमें शामिल हो गये थे, विपक्षी सेना की प्रबलता देख हटने लगे। नई सेना थी, अनुशासन की कमी थी, सामान नहीं थे, हथियारों की कमी सबसे ज्यादा खटकती थी। लेकिन, माव और उसके साथियों ने हिम्मत नहीं हारी। वे लड़ते-झगड़ते, बढ़ते-हटते आखिर

चिंगकान्सन की अमेद्य पहाड़ी पर पहुँचे और वहीं अड्डा जमाया। उस समय लाल सेना में कुल एक हजार सैनिक थे।

किन्तु, इस समय माव और उसके साथियों के निकट एक और बड़ी बाधा आई। साम्यवादी पार्टी की केन्द्रीय समिति ने उनकी इस कार्रवाई का समर्थन नहीं किया—माव की तो निन्दा तक की और उसे पार्टी की कार्य-समिति और मोर्चा-समिति से निकाल दिया। हूनान की प्रान्तीय पार्टी ने भी नाराजी प्रकट की और माव के इस आन्दोलन को 'राइफल-आन्दोलन' कहकर भर्त्सना की। माव के लिए सचमुच यह अजीब परिस्थित थी। किन्तु, उसे अपने मिशन पर विश्वास था। उसने कहा—हम जिस लाइन पर बढ़ रहे हैं, वही सही लाइन है और समय ही हमारे इस दावे को सिद्ध करेगा।

इस प्रकार चारों ओर से प्रताड़ित होकर भी माव ने अपना धैर्य नहीं खोया। नई भर्ती कर इस सेना की शक्ति और बढ़ाई और वह सेना कैसी, जिसकी कोई आधार-भूमि नहीं हो, यह समझ, नवम्बर १९२७ में हूनान के चाालिन् नामक स्थान में उसने पहली सोवियत की स्थापना की। उसका बाजाप्ता चुनाव हुआ। ताउ-सुंग-पिंग उसका पहला अध्यक्ष चुना गया। माव ने उस सोवियत का जो कार्यक्रम बनाया वह प्रजातंत्र के आधार पर था और काफी संयत था। जो लोग अपने को आग बबूला ही समझते थे, वे आतंक-वादी कार्यक्रम चाहते थे—यानी जमीन्दारों को जहाँ पाओ, मारो, लूटो। किन्तु माव ने ऐसे लोगों की बात भी नहीं सुनी। उसे ये लोग भी कोसते, किन्तु, वह चुपचाप अपने काम में लगा रहता।

समय ने माव की इस नीति का भी समर्थन किया। धीरे-धीरे सोवियत आन्दोलन बढ़ने लगा। एक-के-बाद दूसरे जिले सोवियत के अन्दर आने लगे। साम्यवादी पार्टी का भी माव की नीति स्वीकार करनी पड़ी और दिसम्बर १६३१ में जब सभी सोवियतों को मिलाकर एक केन्द्रीय सोवियत की स्थापना पार्टी की ही संरक्षकता में की गई, तो माव को उसका अध्यक्ष बनाया गया।

# लाल सेना का विकास

अब सोवियत और लाल सेना का विकास साथ-साथ होता है।

चालिन् में सोवियत स्थापित हो जाने के बाद, उसके पास के दो डकैत नेताओं ने लाल सेना में शामिल होने की ख्वाहिश जाहिर की। उन्हें ले लिया गया—क्योंकि उन्होंने अब से साम्यवादी सिद्धान्त को स्वीकार करने की इच्छा प्रकट की थी। जब तक माव के साथ वे रहे, उन्होंने ठीक से काम भी किया। उनके साथ देने से लाल सेना की ताकत भी बढ़ी। किन्तु, माव की संगत छूटते ही उनकी पुरानी प्रवृत्ति जाग्रत हुई। पर, तब तक किसान भी सोवियत के कारण संगठित और शक्तिशाली हो चुके थे। उन्होंने उन दोनों को मार डाला।

किन्तु, लाल सेना में जिसके चलते जान पड़ी, वह व्यक्ति तो अभी दूर था। मई १९२८ में वह आया और माव के साथ हो लिया। उसका नाम था च्यू-तेह और वह आज लाल सेना का सेनापति है।

च्यू-तेह के आने के बाद सबसे पहले लाल सेना को सुसंगठित और सुसज्जित करने का प्रबन्ध किया गया। बाद में लड़ाई का एक निश्चित कार्यक्रम और प्रणाली ठीक की गई। माव और च्यू-तेह दोनों की यह एक राय हुई कि अभी छः जिलों में ही सोवियत की स्थापना और उसकी दृढ़ता की

चेष्टा की जाय। न तो इतनी तेजी से बढ़ा जाय कि वह अव-सरवादिता की सीमा पर पहुँच जाय, न पीछे हटकर पराजय-वाद की वृत्ति दिखाई जाय। सोवियत के प्रतिनिधियों की एक सभा भी बुलाई गई, जिसमें सोवियत के भविष्य पर विचार हुआ। एक छोटा-सा अल्पमत कुछ निराशावादी जरूर था, किन्तु, बड़े बहुमत का अपने इस मिशन में पूरा विश्वास था। संयोग से, इसी समय, मास्को में अन्तर्राष्ट्रीय साम्य-वादी पार्टी की कान्फ्रेन्स बैठी और उसने माव की लाइन का समर्थन किया। फिर तो, पार्टी का मतभेद भी खतम हुआ।

माव द्वारा चालिन में सोवियत स्थापित किये जाने की खबर फैलते ही, और कई जिलों में आप से आप धड़ाधड़ सोवियत कायम हो गई और लाल सेना भी बना ली गई। हो-लंग ने पश्चिम में और सू-हाई-तुंग ने पूरब में लाल सेनायें संगठित कीं और सोवियत की नींव डाली। फुकियन के निकट, कियांग्सी की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर भी एक जबर्दस्त सोवि-यत की नींव पड़ी। हैलनफैंग में भी सोवियत बनी—किन्तु, जल्दीबाजी की नीति ने इसका अन्त कर दिया। हाँ, इसकी सेना माव और चू-तेह से जा मिली और ११वीं लालसेना का बीज बनी। कियांगसी की और दो जगहों में सोवियत कायम हुई, जिसका आधार कियान था। पीछे यहीं तीसरी लाल सेना कायम हुई और केन्द्रीय सोवियत सरकार का दफ्तर भी यहीं आ गया। फुकियन के पश्चिमी हिस्से में भी सोवियतें कायम हुईं।

चिंगकान्शान में रहते समय, पहली लाल सेना का च्यांग-काई-शेक की सेना से दो बार मुकाबला हुआ। वह पहाड़ी स्थान बहुत ही सैनिक महत्व रखता था और वे जबर्दस्त

नहीं कर सकते थे कि ऐसी जगह इन लाल खुराफातियों के हाथ में रहे। लेकिन, दोनों ही बार उन्हें बुरी तरह पराजित होना पड़ा। इस संघर्ष के ही बीच चौथी और पाँचवीं लाल सेना भी संगठित हो गई।

अब लाल सेना की कुछ ऐसी वृद्धि हो गई थी कि इस पहाड़ पर रहना मुश्किल हो गया। सैनिकों के पास जाड़े की वर्दियाँ नहीं थीं, खाने-पीने की चीजों की बहुत ही कमी थी। महीनों ये लोग कद्दू-कुम्हड़े पर ही रह रहे थे। उस समय सैनिकों ने एक अजीब नारा लगाना शुरू किया था—'पूँजीवाद का नाश हो' और 'हमलोग कद्दू खाँय'। जिस समय वे लोग 'पूँजीवाद' कहते थे तो उसका अर्थ उनके सामने था—जमींदार।

ऐसी अवस्था में तय किया गया कि इस पहाड़ पर एक सेना का एक भाग छोड़कर शेष लोग अब मैदानों में उतरें। जनवरी १९२७ को चू-तेह के नायकत्व में चौथी लाल सेना ने विजय-यात्रा शुरू की।

कियाँगसी के एकिलगी ज़िले से यह यात्रा शुरू हुई और विजय शुरू से ही मिलती गई। तुंगकू में एक सोवियत् कायम की गई और वहाँ की स्थानीय लाल सेना को मिलाकर तीन दस्ते बनाये गये और तीन जिलों पर हमला किया गया एवं वहाँ सोवियत कायम कर ली गई। जहाँ-जहाँ लाल सेना जाती, किसान उसकी मदद करते। वे अपनी सहायक सेना बनाकर लड़ने में भी लाल सेना की मदद करते।

धीरे-धीरे लाल सेना की हालत कुछ अच्छी हो रही थी, किन्तु कुछ बुरे लक्षण भी दिखाई पड़ने लगे। एक ओर तो लोकतंत्र के गलत ख्याल के कारण अनुशासन में कमी और

संगठन में ढिलाई दीख पड़ती थी, दूसरी ओर सैनिकों में आवारेगर्दी की—यानी हमेशा स्थान-परिवर्तन करते रहने और सैर-सपाटे में रुचि रखने की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। जिससे जमकर सरकार कायम करना मुश्किल हो रहा था। कुछ ऐसे कप्तान थे जिनमें वही पुरानी नौकरशाही प्रवृत्ति काम कर रही थी और वे अपने सैनिकों को पीटा करते या उनपर व्यक्तिगत मेहरबानियाँ दिखलाते थे। इन मसलों पर विचार करने के लिए फूकियन में नवीं पार्टी कांफ्रेन्स की गई। अनुशासन के निश्चित नियम बनाये गये। कप्तानों को निश्चित हिदायतें दी गईं और जिन्होंने इन्हें मानने से इन्कार किया वे सैनिक हों या कप्तान, लाल सेना से निकाल बाहर कर दिये गये।

इस कांफ्रेंस के बाद लाल सेना ने कई महत्त्वपूर्ण विजय प्राप्त की। कियाँगसी का समूचा दक्खिनी हिस्सा लाल सेना के कब्जे में आ गया। वहीं १९३० की फरवरी में फिर पार्टी कांफ्रेंस हुई जिसमें कियाँगसी प्रान्तीय सोवियत सरकार कायम करने का निश्चय किया गया। जमीन के बँटवारे में प्रगति लाने और बाकी जगहों में जल्द-से-जल्द सोवियत का विस्तार करने का भी निश्चय हुआ। किसान दिल खोलकर इस काम में साथ देने लगे।

जिस समय कियांगसी में लाल सेना का संगठन बाजाप्ता किया जा रहा था, उसी समय तीन नियम बना लिये गये थे। पहला—हुक्म की तुरत तामील, दूसरा—गरीब किसानों की कोई चीज जब्त न करना, और तीसरा—जमींदारों की जो चीज जब्त की जाय उसे तुरत से तुरत सरकार में जमा कर देना। १९२८ की कांफ्रेन्स में आठ और नियम बनाये गये—

१. जब तुम जाने लगो, घरों की किवाड़ें उसकी पहली जगह पर लगा दो। (चीन में किवाड़ें निकालकर उस पर रात में सोया जाता है।)

२. उन सभी चटाइयों को, जिनपर तुम रात में सोओ, सिमट दो और लौटा दो।

३. लोगों के साथ तुम्हारा व्यवहार नरम और शिष्ट होना चाहिये और जहाँ तक बन पड़े उनकी मदद करने से मत चूको।

४. उधार ली हुई सभी चीजें वापस कर दो।

५. टूटी हुई चीजें उनकी पहली जगह पर रख दो।

६. किसानों के साथ जो तुम लेन-देन करो उनमें पूरी ईमानदारी से काम लो।

७. खरीदी हुई चीजों का पूरा-पूरा दाम दो।

८. सफाई से रहो और पाखाना लोगों के घर से काफी दूर पर बनाओ।

ये आठ नियम लाल सैनिकों को जबानी रटाये जाते थे। उनसे बार-बार पूछा जाता था और इनकी पाबन्दी बड़ी सख्ती से की जाती थी।

लाल सेना का उद्देश्य क्या है? इसके लिये तीन बात बताई जाती थीं; पहली—दुश्मन के साथ आखिर-आखिर तक लड़ना, दूसरी—जनता को हथियारबन्द करना और तीसरी—अपनी जद्दोजहद के लिए रुपये इकट्ठा करना।

चिंगकान्शान में ही लालसेना की युद्ध-प्रणाली का भी निश्चय कर लिया गया था। इस सम्बन्ध के चार नारे यों थे—

१. जब दुश्मन बढ़ता हो, हम पीछे हटें।

२. जब दुश्मन ठहर गया हो और अड्डे डाल रहा हो, हम उसे तंग करें।

३. जब दुश्मन युद्ध से बचना चाहे, हम उसपर चढ़ाई करें।

४. जब दुश्मन हट रहा हो, हम उसका पीछा करें।

जिस समय ये नारे बनाये गये, बड़े-बड़े अनुभवी फौजी अफसरों ने इसका विरोध किया था। लेकिन अनुभव ने उसकी उपयोगिता सिद्ध कर दी। जब कभी लाल सेना इससे हटी, उसे तकलीफ उठानी पड़ी। जहाँ दुश्मन की सेना दस गुनी से बीस गुनी तक अधिक हो, उसके साजो-सामान, अस्त्र-शस्त्र, सैकड़ों गुने अधिक हों, वहाँ सिवा इस पद्धति के दूसरी नीति कारगर हो नहीं सकती थी।

लाल सेना की जो सबसे महत्त्वपूर्ण युद्ध-नीति थी वह यह थी—चढ़ाई करते समय पूरी सेना इकट्ठी कर लो और पूरा धक्का लगाकर फिर तुरत-से-तुरत कई हिस्सों में बँट जाओ और निकल भागो। इस नीति का यह मानी था कि जमकर तो कहीं भी लड़ाई न की जाय। जब दुश्मन रास्ते में हो, तभी उससे दो-दो हाथ किया जाय।

लाल सेना का कार्य-क्रम और युद्ध-नीति सोवियत सीमाओं में कुशलता से बढ़ रही थी और उसे विजयपर विजय प्राप्त हो रही थी। इस नीति को केवल दो बार एक बड़े चीनी जेनरल की राय से तोड़ा गया था, चांगशा और नांगचंग पर चढ़ाई करते समय। और दोनों ही समय लाल सेना को इसकी पूरी कीमत चुकानी पड़ी थी।

लाल सेना के साथ ही माव और चू-तेह का नाम भी फैल रहा था। और इनकी प्रसिद्धि से घबड़ा कर च्यांग-काई-शेक

की सरकार इन्हें नेस्तनाबूद करने को तुल पड़ी थी। उसका सबसे बड़ा क्रोध का लक्ष्य था—माव ही। माव के घर पर चढ़ाई की गई, उसे अस्त किया गया, उसकी स्त्री, उसकी बहिन, उसके दो भाई और उनकी स्त्रियों को गिरफ्तार किया गया और उनमें से माव की स्त्री और उसकी बहिन को फाँसी की टिकटी पर झुला दिया गया।

किन्तु क्या इससे माव की महान आत्मा विचलित हो सकती थी? लाल सेना की प्रगति में कोई व्याघात पड़ सकता था?

# धावे-पर-धावे

क्यांग-काई-शेक जो पहले घरेलू झंझटों में व्यस्त था और शायद इसे एक खेलवाड़ भी समझता था, अब इस ओर स्वयं मुखातिब हुआ। उसकी दूरदर्शी आँखें सोवियत आन्दोलन और लाल सेना की क्रान्तिकारी सम्भावनाओं को देखने से चूक न सकीं। उसने धावे-पर-धावे डालना शुरू किया।

पहला धावा १९३० में हुआ। एक लाख सैनिकों की एक फौज एक सुप्रसिद्ध सेनापति की अध्यक्षता में कियांग्सी की ओर रवाना हुई और उसे चारों ओर से घेर लिया। उसके मुकाबिले को जो सेना माओ और चू-तेह ने एकत्र की, उसकी संख्या चालीस हजार से ज्यादा नहीं पहुँच सकी थी। किन्तु इस सेना ने ही, अपने से ढाई गुनी ज्यादा सेना को, बिल्कुल ध्वस्त और पस्त कर दिया। १९३१ की जनवरी तक इसका नाम-निशान भी कियांग्सी में नहीं रह गया।

चार महीने के बाद ही युद्ध-मंत्री हो-यिंग-चिंग की अध्यक्षता में दो लाख की सेना दूसरी बार रवाना हुई और सात रास्तों से एक बार ही सोवियत भूमि पर धावा बोल दिया गया। एक बार तो लाल सेना की स्थिति बिल्कुल संकटापन्न मालूम होने लगी। सोवियत का क्षेत्रफल छोटा था, लाल सेना थक गई थी, सामान की कमी थी। किन्तु, आत्मसमर्पण का भाग

भी माव के साथी नहीं जानते थे। अपनी उसी युद्ध-पद्धति पर, जान लड़ाकर, उन्होंने लड़ना शुरू किया। पहले तो नान-किंग की सेना को सोवियत क्षेत्र में बहुत दूर तक बढ़ आने दिया। फिर बस पहले से दूसरी राह से आनेवाली सेना पर धावा कर उसे चकनाचूर किया और उसके बाद तीसरी, छठी और सातवीं राह की सेनाओं को तहस-नहस कर दिया। चौथी राह की सेना तो आप ही भाग गई, पाँचवीं राह की सेना का बड़ा हिस्सा भी तितर-बितर हो गया। दो सप्ताह के अन्दर लाल सेना ने छः बड़े-बड़े मैदान जीते और आठ दिनों तक लगातार दौड़ती-सी रही। छठी राह की सेना के विध्वंस होने के बाद पहली राह की मुख्य सेना चुपचाप खिसक गई।

इस महान पराजय को नानकिंग की सरकार क्यों चुपचाप पी सकती? अब तीसरा धावा—और, इस बार खुद च्यांग-काई-शेक तीन लाख सेना लेकर "बिल्कुल तहस-नहस करने" के इरादे और अहद के साथ आया। अपने साथ वह तीन ऐसे सेनापतियों को भी लाया था, जो चीन के 'सर्वोत्तम' सेनानायक समझे जाते थे। च्यांग ने तूफान की तरह इस सोवियत-भूमि को घेर लेना चाहा और ८० मील प्रतिदिन चलकर उसके 'हृदय-स्थल' तक पहुँच गया। लाल सेना की सफलता के लिए यही तो सबसे जरूरी शर्त थी। केवल तीस हजार की मुख्य सेना लेकर पाँच दिनों के अन्दर पाँच भिन्न-भिन्न जगहों पर छापे मारे गये और पहले छापे में ही लाल सेना ने बहुत-से सैनिकों को गिरफ्तार किया, बहुत सी युद्ध-सामग्रियाँ, बन्दूकें और तोपें प्राप्त कीं। सितम्बर आते-आते यह प्रकट हो गया कि च्यांग-काई-शेक की यह चढ़ाई

भी पूरी विफल हुई। बेचारा च्यांग अपना-सा मुँह लिये अपनी राजधानी नानकिंग लौटा।

इस विजय से लाल सेना की शक्ति और प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। नानकिंग की एक बड़ी सेना ने विद्रोह किया और वह लाल सेना में शामिल हो गई। उस सेना में बीस हजार सैनिक थे। लाल सेना ने अब खुद भी आगे बढ़कर आक्रमण करना शुरू किया। १९३२ में उसने फुकियन के चांग-चाऊ शहर पर कब्जा किया। और भी कई शहरों पर छापे मारे गये। कांगचाऊ पर भी चढ़ाई की गई, किन्तु, उसपर कब्जा नहीं किया जा सका।

१९३३ में नानकिंग की सरकार का चौथा धावा शुरू हुआ। यह धावा लाल सेना और सोवियत सरकार को नुकसान कहाँ तक पहुँचायेगा, उनके लिए बहुत ही फायदे का साबित हुआ। पहले ही मुकाबले में लाल सेना ने दो डिवीजन सेना को हथियार समर्पित करने को बाध्य किया और दो कमाण्डरों को गिरफ्तार किया। फकत एक लड़ाई में १३ हजार सैनिक गिरफ्तार किये गये और च्यांग-काई-शेक की सब से अच्छी सेना ११ वीं डिवीजन का तो नाम-निशान भी नहीं छोड़ा गया। च्यांग-काई-शेक ने उस समय अपने कमान्डर को लिखा था कि उसने अपनी जिन्दगी में यह सबसे बड़ा अपमान सहा है। यही नहीं, उसने उस कमान्डर को डिसमिस भी कर दिया।

अब च्यांग-काई-शेक ने अपने पाँचवे और आखिरी धावे की तैयारी शुरू की।

च्यांग ने नौ लाख की एक अनुशासित सेना तैयार की और उसे आधुनिकतम ढंग के सामानों से सुसज्जित किया।

आजकल जिसे "मैकेनाइज्ड आर्मी" कहते हैं, यह सेना उसका नमूना थी। इस सेना के साथ ४०० हवाई जहाज भी थे।

फिर, लड़ाई का ढंग था बिल्कुल नया। कहीं चढ़ाई नहीं करके, चारो ओर से इस सोवियत भूमि को घेरकर, धीरे-धीरे बढ़ना शुरू किया गया। सबसे पहले ऐसा घेरा डाला कि बाहर से कोई भी सामान वहाँ नहीं पहुँच सके। फिर चारो ओर सड़कें और किले बनाना शुरू किया। ये सड़कें और किले लगातार बनाते रहे—धीरे-धीरे वे आगे बढ़ते और जहाँ तक बढ़ते, वहाँ फिर नई सड़कें और किले बना लेते, जिसमें पीछे हटा नहीं जाय। एक तरह से इन्होंने लाल सेना को पिंजड़े में बन्द कर दिया। कहा जाता है, च्यांग की यह तैयारी जर्मन सलाहकारों की सलाह पर हुई थी—जिनका अगुआ जेनरल वोन सिक्ट था। यह आदमी नाजी सेना का चीफ-आफ-स्टाफ रह चुका था।

च्यांग के इस धावे के मुकाबले के लिए जो लाल सेना एकत्र की जा सकी, उसकी संख्या १ लाख ८० हजार से ज्यादा नहीं थी। स्वयंसेवकों की तायदाद दो लाख की थी। किन्तु, हथियारों की कमी की वजह से एक बार में एक लाख आदमी से ज्यादा को मोर्चे पर नहीं लाया जा सकता था। फिर इनके पास बड़ी-बड़ी तोपें नहीं थीं और बम-कारतूस और दूसरे सामान भी बहुत कम थे। च्यांग की सेना से इन्होंने कुछ हवाई जहाज छीन रखे थे और इनमें तीन-चार उनके चलाने की कला भी जानते थे, किन्तु, पेट्रोल और भाग के अभाव में उनका कोई उपयोग नहीं था।

तो भी लाल सेना दृढ़ता से मुकाबला करती रही। एक जगह तक अलग-अलग मोर्चों पर उनके दस्ते और नायक

अपना युद्ध-कौशल दिखलाते रहे। किन्तु, देखा कि इस बार इनसे पार पाना सम्भव नहीं है। अतः, अक्टूबर १९३४ में यह निश्चय किया गया कि लाल सेना का मुख्य भाग और सोवियत के प्रधान अधिकारी इस प्रान्त को ही छोड़ दें और उत्तर-पश्चिम चीन में स्थित शेन्सी की सोवियत भूमि में जाकर उसे ही केन्द्र बना अपना आन्दोलन जारी रखें। च्यांग-काई-शेक की इस सेना के दबाव के अलावा, वहाँ जाने का एक और मुख्य कारण था। उस ओर जापान चीन पर बढ़ता जा रहा था। अतः, सोचा गया कि गृह-युद्ध में सारी शक्ति बरबाद न कर बाहरी दुश्मन का मुकाबला वहाँ से किया जाय। वहाँ से रूस भी निकट पड़ता था।

कियांग्सी से लाल सेना और सोवियत सरकार के पदाधिकारियों के महा अभियान कर जाने के बाद भी वहाँ लड़ाई जारी रही। च्यांग-काई-शेक ने स्वीकार किया है कि इस लड़ाई में उसके ६० हजार सैनिक मरे और उसके इस धावे और घेरे के चलते १० लाख लोगों की जानें गईं।

किन्तु, यह तो निश्चित है कि जिस उद्देश्य से च्यांग-काई-शेक ने इतना शक्ति-प्रदर्शन किया, अरबों रुपया स्वाहा किया, इतनी जानें लीं, उसमें वह सफल नहीं हुआ। लाल सेना और सोवियत सरकार को वह चीन के नक्शे से हटा नहीं सका। केवल उसका स्थान-परिवर्तन हुआ। फिर, खुद कियांग्सी में भी वह लाल सेना और सोवियत के अवशिष्ट को खतम नहीं कर सका। शहरों पर उसका कब्जा हुआ, किन्तु, बहादुर किसानों ने उसकी जड़ देहातों में नहीं जमने दी। १९३७ में भी कियांग्सी, फुकियन और क्वाङतुङ में लाल सेना के चिह्न पाये जाते थे, जिनके दमन के लिए च्यांग-काई-शेक ने फिर एक धावा करने का विचार किया था।

# महा अभियान

कियांग्सी से शेन्सी तक का जो महा अभियान हुआ, वह संसार के इतिहास में, बहुत अंशों में, सर्वथा अभूतपूर्व और सबसे आश्चर्यजनक है। इधर के तीन सौ वर्षों का तो वह सबसे बड़ा सैनिक कर्तृत्व है, इसमें शक नहीं। केवल इस कर्तृत्व के कारण ही चीन की लाल सेना और उसकी सोवियत संसार के इतिहास में गौरव का स्थान प्राप्त करने का दावा कर सकती है।

इस महा अभियान में ९० हजार लाल सेना शामिल थी। सेना के अलावा हजारों किसानों ने इसमें साथ दिया था—उनमें बूढ़े थे, बच्चे भी; पुरुष थे, स्त्रियाँ भी; साम्यवादी थे, गैर-साम्यवादी भी। शस्त्रागारों को खाली कर दिया गया, कारखानों को उखाड़ दिया गया और जितनी मैशीनरियाँ थीं उन्हें गधों और खच्चरों पर लाद लिया गया। ये बोझ भी पीछे हल्के करने पड़े। लाल सैनिकों का कहना है कि बोझ के मारे उन्हें न केवल मैशीनरियों को, वरन् हजारों राइफलों और मशीनगनों, यहाँ तक कि चाँदी के कीमती टुकड़ों को भी, रास्ते में गाड़ देना पड़ा।

एक तो इतने लोग और इतना सामान—उसपर यात्रा की दूरी ६००० मील की। और, क्या यह दूरी भी समतल थी और वे नदियों की तरह गाते-बजाते चलते थे?

इन्हें इस यात्रा में १८ पहाड़ों को लाँघना पड़ा, जिनमें ५ तो बर्फों से आच्छादित थे। २४ नदियों को पार करना पड़ा, जिनमें चीन की सबसे बड़ी और भयानक नदियाँ भी थीं। १२ प्रान्तों की सीमाओं से इन्हें जाना पड़ा और ऐसे जंगली हिस्सों को तय करना पड़ा जिनसे होकर बीसियों वर्षों से कोई सेना नहीं गई थी।

फिर, इन्हें सीधे बढ़ना नहीं था। इनके पीछे च्यांग-काई-शेक की सेना पड़ी हुई थी। उसके हवाई जहाज इनके रास्ते का सुराग़ लेते और गोले बरसाते; उसकी सेना रह-रहकर छापा मारती। इन बारह प्रान्तों के युद्ध के देवता भी बैठे हुए नहीं थे और न जंगली ही इन्हें सीधी राह देने-वाले थे। हिसाब लगाकर देखा गया है, तो ३६८ दिनों की इस यात्रा में प्रतिदिन एक-न-एक छोटी-मोटी लड़ाई ज़रूर हुई और १५ दिनों तक तो दिन-दिन भर जमकर घमासान हुए।

इन झंझटों के बावजूद, ये बढ़े किस वेग से और आराम कितना कम किया। ३६८ दिनों में २३५ दिन, दिन की यात्रा में और १८ दिन, रात की यात्रा में बीते। १०० दिन अड्डे डाले गये—जो ज्यादातर छोटी-मोटी लड़ाइयों में ही बीते। ज़ेचुआन के १००० मीलों को तय करने ही में उनके विश्राम के १०० दिनों में से ५६ दिन बीत गये; शेष ५००० मीलों में तो फकत ४४ दिन वे अड्डे डाल सके—यानी १४४ मील की दूरी तय करने पर कहीं वे जरा विश्राम पाते थे। प्रतिदिन २४ मील की दूरी उन्हें तय करनी पड़ी थी—और इस यात्रा की कठिनाई को देखते निस्संदेह यह बहुत बड़ी दूरी और मानव-शक्ति की चरम सीमा है।

हनीबाल का आल्प्स तय करना, या नैपोलियन का मास्को-अभियान इसके नजदीक बच्चों का खेलवाड़ मालूम पड़ता है। कल्पना कीजिये कि पटना से यह अभियान शुरू हुआ और सीधे पेशावर, फिर वहाँ से पूना, पूना से मद्रास, पुरी होते हुए कलकत्ता और फिर पटना—यह दूरी तय करने के बाद भी हमने पाया कि अभी उस अभियान का एक चौथाई हिस्सा यों ही पड़ा है!

कियांग्सी से यह अभियान इतना चुपचाप शुरू हुआ कि कई दिनों के बाद, जब कि यह काफी आगे बढ़ चुका था, दुश्मनों को इसकी गति का पता चला। मोर्चे पर से लाल सेना के सैनिकों को बड़ी होशियारी से हटाया गया और उनकी जगह स्वयंसैनिकों को तैनात कर दिया गया। प्रायः यह रात में ही किया गया। धीरे-धीरे सभी लोग दक्षिणी कियांग्सी के यूतू नामक स्थान में एकत्र हुए और वहीं से १६ अक्टूबर १९३४ को महा अभियान का कूच प्रारम्भ हुआ।

समूची सेना को दो हिस्सों में बाँट दिया गया और तीन रातों तक एक सेना पश्चिम और दूसरी दक्षिण की ओर बढ़ती रही। चौथी रात को इन दोनों सेनाओं ने एक बार ही हूनान और कांगतुंग की किलेबन्दी पर चढ़ाई कर दी। यह चढ़ाई इस तरह अकस्मात् हुई थी कि दुश्मनों के पैर उखड़ गये और इन्हें दक्षिण और पश्चिम के रास्ते मिल गये।

किन्तु, यह तो अभी पहली किलाबंदी थी। इस तरह चार किलाबन्दी की लाइनें थीं; जिनको सफलतापूर्वक पार कर लेने पर ही अभियान आगे बढ़ सकता था।

कियांग्सी की पहली लाइन २१ अक्टूबर को टूटी और हूनान की दूसरी लाइन नवम्बर ३ को। तीसरी लाइन भी हूनान में थी, और वह भयंकर लड़ाई के बाद एक सप्ताह के बाद टूटी। नवम्बर २६ को च्यांग-काई-शेक की सेना चौथी लाइन को भी छोड़ने को बाध्य हुई और तब लाल सेना सीधे उत्तर हूनान की ओर बढ़ी, वहाँ से जेचुआन होकर सोवियत-जिलों में घुसने और चौथी मोर्चा-सेना से मिलने का उसका कार्यक्रम था। १६ अक्टूबर से २६ नवम्बर के अन्दर नौ बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें लाल सेना को नानकिंग के ११० रेजिमेन्टों की अपार फौज से मुकाबला करना पड़ा।

कियांग्सी, क्वांगतुंग, क्वांग्सी और हूनान को तय करते समय इस अभियान को बहुत ही हानियाँ उठानी पड़ीं। कीचाऊ तक पहुँचते-पहुँचते इनकी संख्या एक तिहाई हो गई। उसका प्रमुख कारण हुआ उनके साथ के भारी सामान। इसके ढोने में ही ५००० आदमी लगे रहते। मार्गदर्शक सेना को अपनी गति धीमी करनी पड़ती, और दुश्मनों को रुकावटें डालने के मौके मिलते। इसके अलावा कियांग्सी से इन्होंने सीधे उत्तर मुँह बढ़ना शुरू किया था, जिस कारण नानकिंग की सेना को इनकी राह का अन्दाजा लगाने में सहूलियत होती थी।

कीचाऊ पहुँचकर इन्हें दूसरी पद्धति कबूल करनी पड़ी। सीधी, तीर की तरह, राह न लेकर इन्होंने टेढ़ी-मेढ़ी, धोखे में डालनेवाली, राह पर बढ़ना शुरू किया। नानकिंग के हवाई जहाजों को अब यह पता पाना मुश्किल होता था कि वे किस तरह बढ़ रहे हैं। बीच में मुख्य सेना छुपछुप भागती

और दो या चार छोटी-छोटी सेनायें उसकी अगल-बगल, दूर-दूर इस तरह से हो-हल्ला मचाती बढ़ती कि दुश्मन अजीब गोरखधंधे में पड़ जाते। सामानों में से बहुत हटा दिये गये, जो बचे उन्हें रात में ही ढोया जाता, जिससे दुश्मन के हवाई जहाजों को खासकर इन्हीं पर लक्ष्य करके गोले गिराने का अब मौका नहीं मिल पाता।

जेचुआन में ये यांग्जे नदी को पार करेंगे, ऐसी उम्मीद कर च्यांग-काई-शेक ने हुपे, आन्हो और कियांग्सी से हजारों नई सेनायें मँगाईं और उन्हें जहाज पर पश्चिम की ओर भेजकर आगे से ही इनका रास्ता रोक लेना चाहा। नदी के जितने घाट या पार करने के सम्भव रास्ते थे, सबपर किलाबन्दी की गई। जितनी नावें थीं सब नदी के उत्तरी तट पर जमा की गईं, सभी सड़कों पर घेरे डाल दिये गये और एक बड़े रकबे से अन्न हटा लिया गया। जेचुआन के सरदार की मदद के लिए बड़ी सेनायें भेजी गईं और यून्नान की सीमा पर सैनिक तैनात किये गये। संक्षेप में कहने का मतलब यह कि जिस समय लाल सेना कीचाऊ पहुँची, उसके 'स्वागत' के लिए दो सेनायें खड़ी थीं, और रास्ते में 'फूल' बिछे हुए थे!

किन्तु, लाल सेना इस 'स्वागत'-समारोह से घबराई नहीं। उसने अपने कौशल दिखलाने शुरू किये। चार महीने तक वह कभी इधर बढ़ती, कभी उधर हटती, कभी यहाँ लोप होती, कभी वहाँ उगती रही। इसके अन्दर उसने दुश्मन की पाँच डिवीजन सेना का सत्यानाश किया। वहाँ के फौजी सरदार की आधुनिक ढंग की नयी राजधानी पर भी कब्जा कर लिया। यही नहीं, उसने बीस हजार नये सैनिक अपनी सेना

में भर्ती किये। जहाँ-जहाँ शहर और गाँव में ये जाते, सभायें करते, अपने उद्देश्य और कार्यक्रम समझाते, साम्यवादी पार्टी स्थापित करते और नौजवानों को लाल सेना में भर्ती होने को उत्साहित करते।

अब यांग्जी नदी का पार करना रह गया। च्यांग-काई-शेक को दूसरे पर भरोसा नहीं हुआ। वह खुद आया और कीचाऊ-युनान सड़क को इस तरह घेर लिया कि एक सुई का सरकना भी मुश्किल हो। यही एक राह थी, जिससे नदी तक पहुँचा जा सकता था। उसने उमीद की थी कि रास्ता रोककर इन्हें वह दक्षिण-पश्चिम की ओर बढ़ने को बाध्य करेगा, जहाँ तिब्बत की निर्जन भूमि में ये मर-खप जायँगे। उसने अपने सभी सरदारों और सेनापतियों को भी सन्देशा दिया—"राष्ट्र और पार्टी का भविष्य इसीपर निर्भर है कि लाल सेना को यांग्जी के दक्षिण ही बोतल-बंद कर दिया जाय!"

मई १९३५ में अचानक लाल सेना दक्षिण रुख मुड़ी और युनान पहुँची, जिससे बर्मा और इन्डोचीन की सीमायें मिलती हैं। अति द्रुत गति से चार दिनों के अन्दर ही वह उसकी राजधानी यूनानफू से दस मील की दूरी पर पहुँच गई। उसकी यह रफ्तार देख, च्यांग-काई-शेक भी उनका पीछा करते हुए दौड़ा। उसके साथ उसकी पत्नी श्रीमती च्यांग-काई-शेक भी थीं। जल्द-जल्द फौरन रेलवे-लाइन को दुरुस्त कराया गया। हवाई जहाज भी अपने 'आग के अण्डे' दिन-रात गिराने लगे। किन्तु, थोड़े ही दिनों में यह पता चला, यह तो लाल सेना की एक चाल-भर है, मुख्य सेना तो नदी की ओर बढ़ गई और वह लेंकाई के निकट उसे पार करना चाहती है।

क्यांग खूब खुश हुआ। उसने सोचा, अच्छा, धोखा देने से क्या हुआ—ये जायँगे कहाँ? चारों ओर तो हमने किला-बंदी कर रखी है। वहीं हम उनका श्राद्ध करेंगे।

लाल सेना बढ़ती गई—मानो, उसे अपने भविष्य की कोई परवाह ही नहीं। तीन दलों में विभक्त हो वह बढ़ रही थी। नावें तो सभी जला दी गई थीं, इसलिए, जब पथ-प्रदर्शक सेना नदी के किनारे पहुँची, उसने बांस का पुल बनाना शुरू किया—ऐसी खबर च्यांग के हवाई जहाज के चालकों ने उसे दी। क्यांग को अपनी सफलता पर और विश्वास हो गया। उसने सोचा, पुल बनाने में हफ्तों लगेंगे। किन्तु, एक शाम को लाल सेना की एक बटालियन गुपचुप वहाँ से रवाना हुई और एक रात और दिन में ही ८५ मील की दूरी पार कर, बेर ढलते समय, चाऊ-पिंग नामक स्थान में जा पहुँची। यह स्थान ही अब एकमात्र स्थान बच रहा था, जहाँ से नदी को पार किया जा सकता था। किन्तु, यहाँ भी क्यांग-काई-शेक की एक सेना डेरा डाले थी। हाँ, वह निश्चिन्त पड़ी थी, सपने में भी नहीं सोचा था कि यहाँ लाल सेना आ सकती है।

लाल सेना की इस बटालियन के सैनिक अपने साथ नानकिंग-सरकार की सेना की वर्दियाँ भी लाये थे—जिन्हें उन्होंने युद्ध-भूमि में छीना था और ऐसे ही मौकों के लिए उन्हें सँजो कर रखा था। उन्हीं वर्दियों को पहन कर, जब शाम हुई, वे किनारे के गाँव में घुसे। लोगों ने समझा, ये क्यांग के सैनिक हैं। किन्तु, छावनी में पहुँचकर उन्होंने क्यांग के सैनिकों को चुपचाप आत्म-समर्पण करने को बाध्य किया।

लेकिन, नावें तो उस पार थीं। यद्यपि, क्यांग-काई-शेक ने नावों को जला डालने का हुक्म दे रखा था, किंतु, वे जलाई

नहीं गई थीं। सोचा गया था, यहाँ दुश्मन आयेंगे ही कहाँ, जो चीज खराब की जाय। हाँ, उस पार वे भेज दी गई थीं। उन नावों को इस पार कैसे लाया जाय? लाल सैनिकों ने उस स्थान के अफसर को पकड़ा और नदी किनारे ले गये और उसे बाध्य किया पुकारने को, नाव ले आओ, सरकारी सेना के लिए जरूरत है। एक नाव आई। उसपर ये "सरकारी" सैनिक सवार हुए। उस पार भी च्यांग की एक छावनी थी। सबसे पहले ये उस छावनी में पहुँचे। सैनिक ताश खेल रहे और ठहाके लगा रहे थे। इन्होंने संगीन तान कर जब उन्हें "हाथ उठाओ" का हुकम दिया, वे भौंचक रह गये। किन्तु, करते क्या? उन्होंने भी चुपचाप आत्मसमर्पण कर दिया।

इधर लाल सेना का मुख्य भाग, एक बहुत ही चक्करदार रास्ते को तै कर, दूसरे दिन यहाँ आ पहुँचा। अब पार करना तो मामूली बात थी। छः बड़ी बड़ी नावें दिन-रात काम करती रहीं। नौ दिनों में सभी सेना उस पार, जेचुआन की भूमि में पहुँच गई। सब के पार उतर जाने पर नावों को बर्बाद कर दिया गया और फिर सब गाढ़ी नींद में सो गये। दो दिनों के बाद जब च्यांग की सेना पीछा करते पहुँची, तो लाल सैनिक इस पार से ही हँस हँस कर ताने देने लगे—दोस्तो, बढ़े चलो; तैरने में हमें बड़ा मजा आया, तुम भी मजे लो!

---

# तातू के वीर

जब च्यांग काई-शेक ने सुना, लाल सेना यांग्जे पार कर गई, वह आपे में नहीं रहा। झट हवाई जहाज पर चढ़कर जेचुआन पहुँचा और तातू नदी पर उन्हें खत्म करूँगा—ऐसी प्रतिज्ञा कर वह उसकी तयारी में लगा।

तातू नदी का मोर्चा लाल सेना के इस महान् अभियान की सबसे बड़ी घटना है, इसमें कोई शक नहीं। यदि इस मौके पर लाल सेना चूकती, तो उसका सत्यानाश धरा हुआ था। तातू के किनारे ऐसे सत्यानाश पहले भी हो चुके थे। तीन राज्य और कितने सैनिकों की कब्रगाह यह नदी बन चुकी थी। उन्नीसवीं सदी में विद्रोही नेता शीह-ता-काई की एक लाख फौज को यहीं पर मांचू सरकार की सेना ने तहस-नहस किया था। च्यांग-काई-शेक ने अपने सेनापतियों और सरदारों को तार दिया था—'शीह' के इतिहास को एक बार फिर तातू के किनारे दुहराना चाहिये।

किन्तु लाल सेना को मालूम था कि शीह-ता-काई के हारने के क्या कारण थे? सबसे प्रधान कारण था उसका विलम्ब। तातू के किनारे पहुँचकर शीह अपने पुत्र का जन्मोत्सव तीन दिनों तक मनाता रहा था। इससे उसके दुश्मनों को उसे चारों तरफ से घेर लेने का मौका मिला। शीह ने जब इस पिंजड़े से निकलना चाहा, काफी देर हो चुकी थी—भूतल से

सदा के लिए उसका नाम-निशान मिटा दिया गया। लाल सेना उस गलती को दुहराना नहीं चाहती थी।

थांग्जे नदी को पार कर वह लोलोभूमि के जंगली प्रदेश होकर तेजी से बढ़ी। लोलो-जाति एक स्वतंत्र जाति है। चीनी सेनानायक उसे कभी नहीं पराजित कर सके। तिब्बत से उसकी सीमा मिली हुई है। एक तो जंगली देश है, फिर यह जंगली जाति विघ्न-बाधा देने में क्यों चूकेगी ; अतः, लाल सेना को वहाँ से निकलने में काफी देर लगेगी—च्यांग ने ऐसा मान लिया। लेकिन, उसे क्या मालूम था कि ये लाल लड़ने ही में बाँकुड़े नहीं हैं, किसी को अपने में मिला लेने में भी ला-मिशाल होंगे।

लोलो भूमि की सीमा पर लाल सेना ने कई चीनी सेनापतियों को हराया था। उनके हराने के बाद उसने ऐसे कई लोलो-सरदारों को मुक्त किया था, जिन्हें चीनी सेनापतियों ने कैद कर रखा था। लोलो-भूमि में प्रवेश करने में इन सरदारों ने लाल सेना की खूब मदद की। लाल सेना की जो पथप्रदर्शक सेना थी, उसका सेनापति इस लोलो-भूमि के अधिवासियों, उनके आपसी झगड़ों, उनकी मित्र-पालकता आदि गुणों को जानता था और लोलो की भाषा भी बोल सकता था। इसके कारण और सहूलियत हुई। जहाँ च्यांग-काई-शेक ने उमीद की थी कि लाल सेना को ये लोलो तंग-तबाह कर छोड़ेंगे—वहाँ उन्होंने उसकी मदद ही नहीं की, वरन् बहुत से लोलो नौजवान लाल सेना में भर्ती भी हो गये।

पहली लाल सेना का सेनापति लिन-पिआव निर्देश, सबसे पहले, तातू के किनारे के आन-जेन-चांग नामक शहर में पहुँचा। यह सेना इस तरह फुर्ती से और जंगल-झाड़ियों में

छिपती आई थी कि नानकिंग के हवाई जहाजों के चालक इसकी राह का पता नहीं पा सके थे। जिस तरह यांग्जे के किनारे चाव-पिंग में लाल सेना अकस्मात आ गई थी, उसी तरह यहाँ भी आ पहुँची। लोलो लोगों के पथ-प्रदर्शन में एक दस्ता चुपके-चुपके पहाड़ी रास्तों को तय करता, उस छोटे शहर में घुस गया, उसपर कब्जा किया और एक ऊँची जगह से तातू नदी की ओर देखने लगा। उसके आनन्द की सीमा न रही, जब उसने देखा—उस पार की तीन नावों में से एक इस ओर आ रही है! अहा —बस एक नाव तो चाहिये!

यह नाव क्यों आ रही थी? बात यों है कि नदी के उस पर क्यांग-काई-शेक की सेना डेरा डाले हुई थी। उसका सेना-पति एक नौजवान था, जिसका घर इस जगह के आसपास ही था। उस नौजवान की पत्नी का मायका नदी के इस पार था। पत्नी ने चाहा, जरा माँ-बाप से मिल आऊँ। पति ने देखा—अभी लाल सेना का तो नामोनिशान नहीं, उसके पहुँचने में अभी हफ्तों देर हो सकती है; फिर, पत्नी की ख्वाहिश क्यों न पूरी की जाय? उसकी पत्नी का दल इस नाव पर इस ओर आ रहा था।

लिन-पिआव ने इस नाव पर कब्जा किया। फिर अपनी सेना की पाँच कम्पनियों में से प्रत्येक से १६-१६ आदमी ले ८० सैनिकों को नाव पर चढ़ाकर उस पार भेजा। इधर अपनी मशीनगनें उस पार के दुश्मनों को लक्ष्य कर पहाड़ पर बैठा लीं और उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगा। मई का महीना था। बाढ़ आई हुई थी। तातू की धार की लम्बाई और तेजी यांग्जे से भी अधिक थी। नाव को

उस पार पहुँचने में दो घंटे लगे और वह उस पार के पहाड़ी शहर के ठीक नीचे लगी। इस किनारे, आन-जे-चांग शहर के बाशिन्दे इस नाव को निर्निमेष देख रहे थे और सोच रहे थे कि ज्योंही ये सैनिक नाव से निकलेंगे, उन्हें च्यांग की सेना भून डालेगी। वे निकले। अरे, वे तो उनकी तोपों के नजदीक ही निकले और आगे बढ़े। उनका उधर बढ़ना, इधर इस पार से लाल सेना की मशीनगनों का गरजना! चारों ओर धुँआँ-धुँआँ। और, इस धुँएँ के बीच वे बढ़ रहे हैं और पलक मारते दुश्मन की जगह के ऊपर की एक चोटी पर पहुँच जाते हैं और वहाँ अपनी दस्ती मशीनगन बिठाकर धुँआधार गोलियाँ बरसाने लगते हैं—और हाथों से बम-पर-बम भी फेंक रहे हैं।

अचानक सुफेद सेना हथियार चलाना छोड़ देती और भागती है—पहली लाइन से दूसरी लाइन, दूसरी से तीसरी लाइन। और उस पार आनन्दध्वनि उठ रही है—लाल झंडे फहराये जा रहे हैं और साम्यवादी नारे लगाये जा रहे हैं।

पहली नाव लौटती है—उसके साथ दो बाकी नावें भी आ रही हैं। तीनों पर फिर अस्सी-अस्सी सैनिक सवार होते हैं। इनके पहुँचते ही, सुफेद सेना का नाम-निशान तक नहीं रहता। इन तीन नावों पर तीन दिन-रात सैनिक ढोये जाते हैं और लाल सेना की एक पूरी डिवीजन उस पार उतर जाती है।

किन्तु नदी की धारा तेज-से-तेज होती गई और नावों का आना-जाना मुश्किल होता गया। तीसरे दिन एक बार के आने-जाने में कुल चार घंटे लग गये। इस रफ्तार से तो पूरी सेना, उसके सामान और पशुओं को पार करने में महीनों लग जायेंगे।

फिर, च्यांग-काई शेक के हवाई-जहाजों ने पता पा लिया था और चारों ओर से घिर जाने की पूरी सम्भावना थी। क्या किया जाय? लिन-पिआव ने एक कान्फ्रेंस बुलाई। माव-से-तुंग, चू-ते, चाव-एन-लाई और पेंग-ते-ह्वाई आदि इकट्ठे हुए। एक राय क़ायम हुई और उसे काम में लाना शुरू किया गया।

इस स्थान से करीब सवा सौ मील दूर एक जगह तातू नदी कुछ सँकरी थी और उसपर एक पुराना पुल था। तिब्बत के पूरब यही एक स्थान है, जहाँ से इस नदी का पार करना सम्भव था। अतः दूसरे ही दिन से सेना का रुख उस ओर मोड़ दिया गया। रास्ता बड़ा ही भयंकर। पहाड़ और जंगल। कहीं हजारों फीट पहाड़ पर चढ़ना, कहीं कमर-भर कीचड़ को पार करते बढ़ना। यदि इस पुल पर समय पर कब्जा हुआ, तब तो खैरियत; नहीं तो सर्वनाश धरा हुआ है। या तो वहीं कट मरो या लोलोभूमि होकर यूनान में वापसी और वहाँ से तिब्बत के सत्यानाशी मैदान में जाकर तिल-तिल कर सड़ो!

नदी के दक्षिणी तट की सेना जब पश्चिम की ओर, इस लक्ष्य की तरफ बढ़ी, तो नदी पार करके उत्तरी तट पर पहुँची हुई लाल सेना भी उस किनारे-किनारे पश्चिम की ओर बढ़ी। बीच में तातू नदी कोलाहल करती भागी जाती—दोनों किनारों पर लाल सेना की ये दोनों टुकड़ियाँ भागी चलतीं। कहीं-कहीं नदी की धारा सँकरी हो जाती, तो दोनों तटों के सैनिक चिल्ला-चिल्लाकर बातें भी कर लेते और कभी-कभी बीच में इतनी बड़ी खाई पड़ जाती कि उन्हें डर होता, शायद यह तातू नदी हमें कभी नहीं मिलने देगी। रात में जब दस हज़ार मशालें जलाकर, विशाल अजगर-सी,

लम्बी कतार बना, ये आगे बढ़ते और इन मशालों की छाया तातू नदी के दोनों किनारों पर झलमल कर उठती, तब की शोभा अवर्णनीय थी।

दिन और रात ये लोग बढ़ा किये। बीच में केवल दस मिनट आराम और खाने के लिए वक्त मिला। आराम का वक्त भी व्यर्थ नहीं गया। माव और उनके सजग साम्यवादी साथियोंने उनमें अपने भाषणों द्वारा जान फूँकी। उनके इस काम का क्या महत्व है, इस महत्व के लिए कितनी कोशिश करनी है, विजय उनके कितनी निकट है साथ ही जरा-सी चूक होने पर वह कितनी दूर चली जायगी—ये बातें उन्हें बताईं। साथियो, चाल धीमी न हो, डग लम्बा-लम्बा पड़े, निराशा की गुंजाइश नहीं, थकान हमारे पास क्यों आवे? विजय—इसका अर्थ है जिन्दगी। पराजय—यही है मौत!

दूसरे दिन दाहिने तट की सेना की गति रुक गई, क्योंकि जेचुआन की सुफेद सेना उनपर टूट पड़ी और दो-दो हाथ होने लगे। किन्तु दक्षिणी तट की सेना दृढ़तापूर्वक बढ़ती ही रही। इतने ही में उत्तरी तट पर फिर एक सेना दीख पड़ी और लाल सेना ने जब दूर्बीन से देखा, तो मालूम हुआ, वह सुफेद सेना है और पुल की ओर तेजी से बढ़ रही है। भर दिन दोनों तटों पर चलनेवाली इन दोनों सेनाओं में सबसे पहले पुल तक पहुँचने की बाजी-सी लगी रही। किन्तु, आखिर लाल सेना की ही जीत रही। खसीसाँदी [?], देर-देर तक विश्राम करनेवाली और भाड़े की टट्टू सुफेद सेना, लाल सेना का क्या खाकर मुकाबला करती?

सदियों पहले यह पुल बना था। इसकी बनावट अपने ढंग की थी—जैसी कि चीन की गहरी नदियों के पुलों की

अक्सर हुआ करती है। दोनो तटों पर कंक्रीट और पत्थर के दो विशाल पाये थे और उनसे लगी हुई सोलह लोहे की मोटी-मोटी जंजीरें बीच की सौ गज की दूरी को छाये हुई थीं। इन जंजीरों पर मोटे-मोटे तख्ते रखे गये थे, जिनपर होकर नदी पार किया जाता था। जब लाल सेना पुल के नजदीक पहुँची, उसने देखा कि इन जंजीरों के इस तरफ के आधे हिस्से के तख्ते हटा दिये गये हैं और उस तट के पाये के नजदीक एक मशीनगन लगा रखी गई है, जिसके पीछे सुफेद सेना की एक पूरी डिवीजन डटी है। ये लोग तो इस पुल को ही खतम कर दिये होते, लेकिन चीनी लोगों में अपनी पुरानी कृतियों पर बड़ा मोह होता है। फिर, इस पुल के बनाने में तो "अट्ठारह प्रान्तों का धन" लगा था। और, तख्ता ही हटा देने के बाद अब किसकी ताकत है जो इसे पार करे?—फिर पुल क्यों बर्बाद किया जाता!

एक मिनट भी बर्बाद नहीं किया जा सकता था, क्योंकि सुफेद सेनायें चारो ओर से यहाँ उमड़ी आती होंगी। ऐसे वीरों की पुकार हुई, जो जान हथेली पर लेकर खेल सकें। एक-एक कर वीर बढ़ने लगे। उनमें से तीस सैनिकों को चुन लिया गया। उनकी पीठ पर बम और पिस्तौल बाँध दिये गये और वे एक के बाद दूसरे हाथ से जंजीर पकड़ते आगे बढ़े। नीचे नदी गरज रही थी, ऊपर दुश्मन की मशीनगन आग उगल रही थी। लाल सेना की मशीनगनों ने भी जवाब दिया। चारो ओर आग और शीशे की वर्षा हो रही थी और ये तीस मस्ताने वीर बन्दर की तरह जंजीरों से लटकते, झूलते आगे बढ़ रहे थे। दुश्मन की बन्दूकें इनकी ओर ताक-ताक कर निशाने लगाने लगीं। पहले वीर को गोली

लगी—वह नीचे की धारा में धड़ाम से गिर पड़ा। दूसरा गिरा, तीसरा गिरा। किन्तु, ज्यों-ज्यों वे तख्ते के निकट पहुँचते गये, दुश्मन की गोलियाँ या तो उनके ऊपर निकल जाती रहीं या नीचे जाकर दूसरे किनारे की चट्टानों से जा टकरातीं।

ये आदमी हैं, या देवता, या शैतान?—जेचुआन के अंधविश्वासी सैनिक सोचने लगे। ये आदमी कैसे हो सकते हैं! यह नौजवानी की उम्र—और खुद अपने को मौत के मुँह में फेंक दिया है। मौत न हुई, दालभात का खाना हुआ। जेचुआनी सैनिकों का दिमाग घूमने लगा, उनकी हिम्मत छूटने लगी। गोलियाँ चलाते थे, लेकिन मालूम नहीं कहाँ? शायद अब वे इन वीरों को मारना भी नहीं चाहते थे! शायद उनमें से कोई-कोई इन बहादुरों की सफलता की भी कामना करते थे!

एक लाल सैनिक ने किसी तरह जंजीर को पार किया, तख्ते पर आया, पैर जमाकर खड़ा हो गया, पीठ पर से बम निकाला और निशाना ठीक कर उसे दुश्मन के अड्डे पर फेंका। दुश्मन अब तक होश-हवास खो चुके थे। उन्होंने बाकी तख्तों को भी उखाड़ फेंकना चाहा—लेकिन, जल्दी यह सम्भव नहीं था। बाकी लाल सैनिक भी तख्ते पर बढ़े आ रहे थे। घबरा कर सुफेद सैनिकों ने तख्ते पर पाराफीन छिड़क दिया और आग लगा दी। तख्ते धूधू कर जलने लगे। किन्तु इसके बावजूद बीस लाल सैनिक घुटने और हाथ के सहारे लगातार बढ़ रहे थे और अपने बम लगातार दुश्मन की मशीनगन के घोंसले पर फेंक रहे थे।

उसी समय दक्खिनी तट के उनके साथी आनन्द से चिल्ला

उठे—इन्कलाब जिन्दाबाद—लाल सेना की जय—तातू के वीरों की जय। क्योंकि सुफेद सेना के पैर उखड़ गये थे और वह अजीब वहशत की हालत में इधर-उधर भागी जा रही थी। जिनपर लपटें नृत्य कर रही थीं, उन तख्तों पर, तेजी से दौड़ते, बचते, झुलसते ये वीर दुश्मन द्वारा छोड़ी गई मशीन-गन के निकट आ पहुँचे और उसका मुँह किनारे की ओर कर उन पलायित कायरों पर गोलियाँ बरसाने लगे। मियाँ की जूती, मियाँ के सर!

तब तक लाल सैनिकों का दूसरा दल भी जंजीरों को पकड़ कर झूलते-बढ़ते तख्ते तक पहुँच चुका था। आग बुझाना और नये तख्ते देकर पुल दुरुस्त करना शुरू किया गया। इधर, लाल सेना का वह हिस्सा भी पुल के निकट जा पहुँचा, जो येन-जेन-चांग में ही तातू पार कर चुका था और जिसे सुफेद सेना ने बीच में अटका लिया था। एक-दो घंटे के अन्दर ही पुल तैयार था और उसपर विजयी लाल सेना पार कर रही थी। उसी समय च्यांग-काई-शेक के हवाई जहाज वहाँ पहुँचे। किन्तु लाल सेना घबराई नहीं। वह तो उन्हें देखकर और भी आनन्द-ध्वनि करने लगी। हवाई जहाजों ने कुछ "आग के अंडे" बरसाये, किन्तु ये पानी में गिर साँय-साँय करके, खतम हो गये!

---

# कठिनाइयों के पहाड़

तातू को बेखटके पार कर लाल सेना पश्चिमी जेचुआन में घुसी। च्यांग-काई-शेक का घेरा यहाँ पूरा नहीं हुआ था। इसलिए वे बिना झंझट आगे बढ़ सकते थे। लेकिन, इसका यह मतलब नहीं कि वे निश्चिन्त हो चुके थे। उन्हें अब भी २००० मील तय करना था, जिसके लिए सात पहाड़ों की चोटियाँ लाँघना लाजिमी था। तिब्बत की सीमा की वह विकट घासवाली भूमि भी आगे पड़ी थी।

तातू के उत्तर १६००० फीट की चोटीवाले "बड़े बर्फीले पहाड़" को पार किया गया। उसकी चोटी से उन्होंने अपने पश्चिम के तरफ की उस भूमि को देखा, जिसे तिब्बत कहते हैं। मालूम होता था, बरफ का समुद्र लहरा रहा है। यद्यपि जून का महीना था, किन्तु ताङ-स्वेह-शान पार कर जब वे आगे बढ़े, कपड़े के अभाव और दक्षिण में रहने के कारण ऊँची सतह की जिन्दगी के अनभ्यासी होने के सबब, बहुत-से लोग जाड़े से ठिठुर कर मर गये। पावतुंग-कांग पहाड़ की नंगी चोटियों को पार करना तो और भी मुश्किल हुआ। कमर भर बर्फीली कीचड़ पर बाँस रख-रखकर अपना रास्ता उन्हें खुद बनाना पड़ा। माव-त्से-तुंग ने कहा था कि इस चोटी पर एक सेना के दो-तिहाई पशु खतम हो गये। सैकड़ों गिरे और फिर ऊपर नहीं आये।

इसके बाद भी उन्हें तीन पहाड़ों को पार करना पड़ा। इन तीन पहाड़ों ने भी अगणित मनुष्य और पशु के टैक्स वसूले।

आखिर २० जुलाई १९३५ को वे वैभवशाली मावेरकाई प्रान्त में पहुँचे और यहीं उनसे चौथी मोर्चा-फौज आ मिली।

यहाँ उन्होंने कुछ दिनों तक खूब विश्राम किया और अपने इस महा अभियान का हिसाब-किताब दुरुस्त किया। आज से नौ महीने पहले कियांग्सी से वे ९०,००० की लाल सेना लेकर चले थे, किन्तु, आज उनके हँसुए-हथौड़ेवाले लाल झंडे के नीचे मुश्किल से ४५,००० सैनिक एकत्र हो सकते थे। बाकी केवल मर या मारे ही नहीं गये थे, अपने रास्ते में जगह-जगह उन्होंने सैनिकों के छोटे-छोटे टुकड़े छोड़ भी दिये थे। उनका काम था च्यांग काई-शेक की पीछा करनेवाली सेना को तंग करना, किसानों में सोवियत की भावना भरना, किसानों की स्वयंसेना तैयार करना। कियांगसी से जेचुआन तक इस समय जगह-जगह विद्रोह हो रहे थे और नानकिंग की सरकार अजीब गोरख-धन्धे में पड़ गई थी। उत्तरी हूनान में होलंग के नायकत्व में इस समय भी एक सोवियत काम कर रही थी और तब तक काम करती रही जब तक कि उसे हुक्म नहीं दिया गया कि तिब्बत होकर वे लोग भी इस सेना में आ मिलें। तिब्बत होकर! लेकिन, वैसा ही हुआ।

इस चार हजार मील के रास्ते में उन्हें अनुभव कम नहीं हुए थे। उन्होंने कितने नये मित्र पैदा किये, तो कट्टर दुश्मन भी कम नहीं बनाये। रास्ते भर उन्होंने रसद के लिए एक ही तरीका अख्तियार किया—जमीन्दार, सरकारी अफसर, नौकरशाह और बड़े-बड़े रईसों की सम्पत्ति ज़ब्त करते रहे। गरीबों की उन्होंने सदा रक्षा की। ये ज़ाहिरा बड़े कारनामे थे होंगे। सोवियत के कानून के अनुसार कार्यक्रम के

जप्ती-डिपार्टमेंट को ही जप्ती के सामानों को रखने और वितरण करने का हक था। ज्योंही कहीं जप्तियाँ होतीं, रेडियो से इस विभाग को खबर कर दी जाती, जो जरूरत के अनुसार सेना के अलग-अलग हिस्सों में चीजों का बँटवारा कर देता। रेडियो की जरूरत इसलिए होती कि यह अभियान कभी-कभी सौ पचास मील तक लम्बा होता! अपने खर्च से फाजिल जो चीजें होतीं, उन्हें गरीबों में बाँट दिया जाता। मीलों से गरीब आते और चीजें लेकर लाल सेना की जय-जय मनाते लौटते। कियांग्सी से चलते समय काफी नोट, चाँदी-सोने के सिक्के और चाँदी-सोने के टुकड़े भी रख लिये गये थे। गरीबों में उनका भी वितरण किया जाता। जमीन के रेहननामों को फाड़ फेंका जाता, टैक्सों को उठा दिया जाता और गरीब किसानों को हथियारबन्द किया जाता।

सिवा पश्चिमी जेचुआन के लाल सेना का स्वागत जनता रास्ते भर करती रही। इसकी आमद की शुहरत पहले से ही मच जाती, झुंड के झुंड किसान आते और अपने को 'आजाद' कर दिये जाने के लिए प्रार्थना करते। लाल सेना के राजनीतिक कार्यक्रम की बारीकी को तो ये नहीं ही समझते, केवल यही जानते कि यह हम गरीबों की सेना है।

मावेरकाई और मोहुंग में लाल सेना तीन सप्ताह का विश्राम करती रही। इसके अन्दर सेना की कौंसिल, पार्टी के प्रतिनिधि और सोवियत-सरकार की बैठकें होती रहीं और आगे का कार्यक्रम तय किया जाता रहा। चौथी सोवियत-फौज की स्थापना होनान-हुपे आन्ह्वी के सोवियत-जिलों में हुई थी और जेचुआन में उसने १९३३ में ही अपनी जड़ जमा ली थी। जिस समय यह सेना कियांग्सी की लाल सेना से आ

मिली, उस समय इसकी संख्या पचास हजार थी। सो, इस समय पूरी लाल सेना लगभग एक लाख की हो गई थी। निश्चय हुआ कि पूरी सेना को दो हिस्सों में बाँट दिया जाय और चौथी मोर्चा-फौज जेचुआन में ही रहे और कियाग्सी की सेना अपना अभियान उत्तर की दिशा में जारी रखे। इस बँटवारे पर कुछ मतभेद हुआ, कुछ लोग यहीं बस जाना चाहते थे, कुछ पूरी सेना को आगे बढ़ाने के पक्ष में थे—किन्तु, आखिर माओ, चू-तेह आदि की राय से उपर्युक्त बात ही तय पाई। जेचुआन की सेना का नायक चू-तेह को बनाया गया और माओ-से-तुंग अपने दूसरे सेनानायकों आदि के साथ तीस हजार की सेना लेकर आगे बढ़ा।

आगे की यात्रा बड़ी ही सनसनीदार और ख़तरनाक रही। मांजू और तिब्बत के पूर्वी हिस्से होकर आगे बढ़ते समय लाल सेना को अपनी यात्रा में पहली बार ऐसे लोगों से वास्ता पड़ा, जो सर्वथा ही उसके ख़िलाफ थे। पैसे होने पर भी कुछ ख़रीदना असम्भव था, बन्दूकें थीं, लेकिन दुश्मन इस तरह छिपे होते कि वे बेकार थीं। जंगल-जंगल होकर जाना। ये जंगली इनमें छिपे रहते और जहाँ मौका पाते, टूट पड़ते, लूट-पाट मचाते। जब लाल सेना पहाड़ी दर्रों को पार करती होती, ये ऊपर से चट्टानों के टुकड़े इनपर गिराते। मांजू की भी जो रानी थी, उसे चीनी लोगों से सख्त घृणा थी। लाल या सुफेद, चीनी का भेदभाव वह नहीं समझ सकती थी। उसने हुक्म दे रखा था कि जो कोई 'चीनी' सेना की मदद करेगा, मैं उसे जिन्दा खौलते कड़ाह में भून डालूँगी।

जब बड़ी जाड़वाली भूमि को वे पार करने लगे, दस दिनों तक तो उन्हें एक आदमी की सूरत नजर नहीं आई।

दिन-रात वर्षा होती रही। दलदली भूमि। बीच में पतली राह। ज़रा भी पैर खिसका, तो कोई ठौर-ठिकाना नहीं। आग जलाने के लिए लकड़ी नहीं मिलती। तिब्बत से जो हरे गेहूँ ले आये थे, उसी को कच्चे चबाते। पेड़ भी नहीं कि उसके नीचे दम लें—सामान कम रखने के कारण तम्बू पास में थे नहीं। किन्तु, लाल सेना आखिर इस परीक्षा में भी पास कर गई। उसका पीछा करनेवाली सुफेद सेना तो रास्ता भूलकर कहाँ न तहस-नहस हो गई।

अब लाल सेना कांसु की सीमा पर पहुँची। किन्तु, अभी विघ्न-बाधा खत्म नहीं हुई थी। उसका सामना करने के लिए नानकिंग, तुंगपी और मुसलमानों की सेना वहाँ मोर्चा डाले बैठी थी। मुसलमानों की घुड़सवार सेना तो इतनी अदम्य थी कि लोगों ने समझ रखा था कि इस बार लाल सेना गई। किन्तु, क्या यह हो सकता था? लाल सेना हार सकती थी? कई लड़ाइयाँ हुईं। उनमें से एक में भी हारने से सब किया-कराया चौपट हो जाता। लेकिन, नहीं—लाल सेना जीती और शान से जीती। मुसलमानों की सेना से उसने बहुत-से घोड़े छीने और उनसे अपनी घुड़सवार सेना तैयार की। और, आखिर में थकी, माँदी, मानवी धैर्य और सहनशीलता की चरम सीमा दिखाती, २० अक्टूबर १६३५ को लाल सेना ने, चीन की बड़ी दीवाल के ठीक नीचे, शेन्सी के प्रान्त में प्रवेश किया। उसके महा अभियान का अन्त हुआ—उस समय उसकी संख्या केवल २०,००० थी।

एक अभियान के रूप में तो यह महान् और इतिहास की विरल घटना है ही, यदि प्रचार के ख्याल से भी देखा जाय, तब भी इतिहास ने इतना बड़ा प्रचार-भ्रमण (Propaganda

tour) कभी देखा नहीं। लाल सेना को २० करोड़ की जन-संख्यावाले प्रान्तों से गुजरना पड़ा। लड़ाइयों और मुठभेड़ों के बीच, जिस-जिस शहर पर इसने कब्जा किया, वहाँ बड़ी-बड़ी सभायें कीं, नाटक खेले, धनियों से खूब टैक्स वसूला, गुलामों को आजाद किया (जिनमें बहुत से लाल सेना में भर्ती हो गये), स्वाधीनता, समता और प्रजातंत्र के नारे लगाये, देशद्रोहियों, जमीन्दारों और टैक्स-वसूल करनेवालों के धन ज़ब्त किये और उन्हें गरीबों में बाँटा। करोड़ों आदमियों ने अपनी आँख से लाल सेना देखी—अब इस नाम से उनमें भय नहीं रहा, वरन् प्रीति बढ़ी। किसानों की क्रान्ति और जापान-विरोधी-नीति का क्रियात्मक प्रयोग उन्होंने देखा। हजारों किसानों को हथियार दिये गये, उन्हें सैनिक शिक्षा दी गई, उनसे लाल स्वयंसेना बनाई गई। इस हड्डी-तोड़ अभियान से ऊबकर कुछ लोग अलग भी हुए, तो उनकी जगह हजारों किसान, मजदूर, गुलाम और सरकारी सेना को छोड़कर आये हुए सैनिक इसमें शामिल हुए।

इसमें कोई शक नहीं कि एक दिन इस महान् अभियान का पूरा इतिहास लिखा जायगा। साहस, अनुसंधान, आविष्कार, बहादुरी, आनन्दातिरेक, विजय, कष्टसहन और बलिदान—एक साथ इस परिमाण में शायद ही कहीं देखे गये हों। चीन के साम्यवादियों ने इसका एक इतिहास लिखना भी शुरू किया है। इसमें शामिल होनेवाले दर्जनों व्यक्ति अपनी-अपनी जानकारी की बातें लिख रहे हैं और करीब तीस लाख शब्दों की यह पुस्तक तैयार हो चुकी है। पूरी पुस्तक तैयार हो जाने पर निस्सन्देह ही वह इस युग का एक महापुराण ही बन जायगी।

---

## लक्ष्य-भूमि

जिस समय चीन में माव-से-तुंग ने सोवियत-आन्दोलन शुरू किया था, वह सिर्फ कियांग्सी, फुकियन और हुनान तक ही परिमित न रहा। अलग-अलग साहसी और क्रान्तिवादी वीरों ने अलग-अलग जगहों में सोवियत-सरकार कायम करना शुरू किया। उनमें दो सोवियतें बहुत ही मशहूर हुईं—एक तो होनान-आन्ही-हुपे की और दूसरी शेन्सी-कान्सू और निंगो-सिया की। यह आखिर सोवियत को ही लक्ष्य कर कियांग्सी से लाल सेना चली थी और नाना तरह के संकटों को पार कर आखिर यहाँ तक पहुँचकर ही रही।

यहाँ का पहुँचना क्या था, मानो, अपने घर में पहुँचना था। लाल सेना की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। किन्तु, कुछ ही दिनों रहने के बाद, देखा गया कि यहाँ तो एक अजीब अंधेर हो चुका है, जिसका सुधार करना नितान्त आवश्यक है।

इस सोवियत का संस्थापक था लिउ-जू-तान। गरीबों के साथ की इसकी सहानुभूति और धनियों के प्रति इसकी घोर घृणा एक कहानी की तरह हो गई थी। यों ही इसकी हिम्मत की चर्चा हर आदमी की जबान पर थी।

शेन्सी के उत्तरी भाग में पाव-आन नामक एक पहाड़ी स्थान है। लिउ का जन्म यहीं एक मध्यवित्त किसान के घर में हुआ था। यूलिन में उच्च शिक्षा प्राप्त कर उसने कान्तन के

वाम्पा-सैनिक-विद्यालय में नाम लिखाया और १९२६ में वहाँ की पूरी शिक्षा समाप्त की। वाम्पा-विद्यालय में रहते समय ही वह साम्यवादी पार्टी में शामिल हुआ। शिक्षा समाप्त करने पर उसे कुओ-मिन्-तांग की सेना में एक छोटे अफसर का पद भी मिल गया। किन्तु, १९२७ में जब कुओ-मिन्-तांग से साम्यवादियों को निकाला जाने लगा और च्यांग-काई-शेक ने उन्हें मिट्टी में मिलाना शुरू किया, लिउ वहाँ से निकल भागा और शांघाई में आकर साम्यवादी पार्टी के साथ काम करने लगा।

१९२८ में वह अपने प्रान्त को लौटा और अपने कुछ पुराने साथियों को मिला-जुलाकर उसने शेन्सी में किसानों का विद्रोह कराया। यद्यपि इस विद्रोह को बुरी तरह से कुचल दिया गया, किन्तु उसी से शेन्सी की लाल सेना की नींव पड़ी।

१९२९ से १९३२ तक की लिउ-जू-तान की जिन्दगी पराजय, असफलता, निराशा, बच निकलने और फिर चढ़ दौड़ने की जिन्दगी रही और कई बार तो वह मौत के मुँह से बाल-बाल बचा। उसकी सेनायें बिलकुल तहस-नहस कर दी गईं। एक बार तो वह पाव-आन की सरकारी रक्षा-समिति का अध्यक्ष भी बना दिया गया—किंतु उसने इस पद का उपयोग कई जमींदारों और साहूकारों को पकड़ने और फाँसी पर चढ़ाने में किया। जब यह भेद खुला, पाव-आन के बेचारे सरकारी अधिकारी छिन्नभिन्न कर दिये गये और लिउ अपने तीन समर्थकों के साथ भागकर सुरक्षित स्थान में आ छिपा। एक बार एक फौजी अफसर ने लिउ को भोज खाने का निमंत्रण दिया। लिउ भागा गया, किन्तु भोज खाने नहीं। वह और

उसके साथियों ने उस अफसर और उसके आदमियों को आत्म-समर्पण के लिए बाध्य किया, बीस बन्दूकें छीनकर वे पहाड़ पर चम्पत हो गये और थोड़े ही अर्से में तीन सौ आदमियों की एक सेना तैयार कर ली।

यह छोटी सेना भी आखिर घेर ली गई। तब लिउ ने सुलह का पैगाम भेजा। उसे कुओ-मिन्-तांग की सेना की एक टुकड़ी का कर्नल बना दिया गया। कर्नल बनकर फिर जमींदारों के खिलाफ उसने जेहाद शुरू किया। एक बार फिर वह गिरफ्तार किया गया और बड़ी मुश्किलों से उसे छुटकारा मिला और उसके प्रभाव का ख़याल कर फिर उसे एक छोटी अफसरी भी दी गई। किन्तु, अफसरी पाते ही तीसरी बार उसने फिर वही कार्रवाई शुरू की। उसकी सेना घेर ली गई, किन्तु, वह खुद निकल भागा। इस बार उसके सिर पर ईनाम भी बोला गया।

उसकी गिरफ्तारी के लिए ईनाम का लालच था, उसकी तलाश भी हो रही थी, किन्तु लिउ तो भागनेवाला या छिपकर रहनेवाला या चुपचाप बैठनेवाला नहीं था। वह अपनी धुन में घूमता रहा—घूमता रहा और अपने ही ऐसे पगलों की एक टोली बनाता रहा, जिस टोली ने १९३१ में पाव-आन और चुंग-यांग पर अपना लाल झंडा गाड़ा और शेन्सी के उत्तर बढ़ना शुरू किया। उसके मुकाबले को सेनायें भेजी जाती रहीं—किन्तु, ऐसी जन-श्रुति थी कि उसपर गोलियाँ कोई काम नहीं करतीं। बहुत-से सैनिक भी उसकी बहादुरी पर मुग्ध हो उसकी सेना में जा भर्ती होते।

दो वर्षों तक लिउ की लाल सेना शेन्सी में धूम मचाये रही। असफरों, टैक्स वसूल करनेवालों और जमींदारों को

चुन-चुनकर मारा जाता। सदियों से संचित क्रोध से पागल किसान सशस्त्र होते ही अपने दुश्मनों का लूटना-मारना शुरू कर देते और उनमें और साधारण डकैत में शायद ही कोई भेद मालूम देता। १९३२ तक लिउ-जू-तान के साथियों ने शेन्सी के उत्तर के ११ हल्कों पर कब्जा कर लिया था और एक साम्यवादी पार्टी का भी संगठन हो चुका था, जो यूलिन में रहकर लिउ की सेना का संचालन करती। १९३३ में शेन्सी में पहली सोवियत कायम हुई, जिसका कार्यक्रम कियागसी की सोवियत के ऐसा था।

१९३४, ३५ में शेन्सी की सोवियत का खूब विकास हुआ। शेन्सी में प्रान्तीय सोवियत सरकार की स्थापना की गई। पार्टी का एक शिक्षण-शिविर कायम हुआ। आन-तिंग में सेना का हेडक्वार्टर बनाया गया। सोवियत ने अपने बैंक और पोस्ट-आफिस कायम किये और अपने सिक्के और टिकट भी चलाये। साम्यवादी ढंग से अर्थ-नीति का संचालन किया जाने लगा। जमीन्दारों की जमीन जप्त की गई और बाँट दी गई। सर-टैक्स उठा दिये गये। सहयोग-समितियाँ स्थापित की गईं। शिक्षकों के जत्थे तैयार किये जाने लगे, जो निरक्षरता और अविद्या को दूर भगा दें।

इधर यह सब चल रहा था, उधर लिउ-जू-तान अपनी सेना लिये सोवियत के सीमा-विस्तार में लगा था और किसी तरह राजधानी सियानफू पर कब्जा करना चाहता था। उसने लिन-तुंग शहर पर कब्जा किया और कई दिनों तक सियानफू पर भी घेरा डाले रहा। किन्तु, पीछे उसे हट जाना पड़ा। लाल सेना का एक दस्ता शेन्सी के दक्षिण की ओर मुड़ा और वहाँ भी कई हल्कों पर सोवियत कायम की।

ज्यों-ज्यों अनुशासन का भाव बढ़ा, और लुटेरी प्रवृत्ति खतम हुई, लाल सेना की शक्ति भी बढ़ती गई। १६३५ के मध्य तक शेन्सी और कान्सू के २२ हल्कों पर सोवियत-सरकार कायम हो चुकी थी और लाल सेना की तायदाद पाँच हजार हो गई थी। इस सेना ने रेडियो का भी इन्तजाम कर लिया था और इसके जरिये अपने दक्षिणी और पश्चिमी भाइयों से इनका वार्तालाप भी जारी हो चुका था। जिस समय कियांग्सी-फुकियन की लाल सेना ने महा अभियान शुरू किया, लिउ-जू-तान की सेना ने घोर घमासान करना प्रारम्भ किया। यहाँ तक कि च्यांग-काई-शेक को अपने उप-सेनापति मार्शल चांग-स्यू-ल्यांग को एक बड़ी सेना के साथ इस ओर भेजना पड़ा।

इधर लिउ-जू-तान को भी एक बड़ा बहादुर साथी इस अवसर पर मिला। वह कुम्हार जो पीछे चलकर सुप्रसिद्ध साम्यवादी सेनापति हुआ, यानी सू-हाई-तुंग, १६३४ के अंत में ८००० लाल सैनिक लेकर होनान प्रान्त से आया और शेन्सी पहुँचकर लिउ की सेना से आ मिला। दोनों की सेना मिलने से शक्ति कहीं अधिक बढ़ गई। विजय-पर-विजय हुई। दुश्मनों की बड़ी-बड़ी फौजों को हराया गया। लाल सेना की संख्या बहुत बढ़ गई। सू-हाई-तुंग उसका सेनापति और लिउ-जू-तान उसका उप-सेनापति बनाये गये। शेन्सी-कांसू-शान्सी की जो क्रान्तिकारी-सेना-कमिटी बनी, लिउ को उसका अध्यक्ष चुना गया। १६३५ के अगस्त में इस सेना ने चांग-स्यू-ल्यांग की तुंगपी सेना के दो बड़े-बड़े डिवीजनों का सत्यानाश कर अस्त्र-शस्त्र और नई भर्ती से अपनी ताकत कहीं-से-कहीं बढ़ा ली।

किन्तु, इस समय एक अजीब बात हुई। च्यांग-चिंग-फू नामक एक हट्टा-कट्टा नौजवान शेन्सी पहुँचा और उसने अपने को साम्यवादी पार्टी की केन्द्रीय कमिटी का प्रतिनिधि बताते हुए पार्टी और सेना के पुनर्संगठन करने का काम शुरू किया। इस भलेमानस ने लिउ के खिलाफ गवाहियाँ एकत्र कीं। लिउ पर बाज़ाब्ता अभियोग लगाया। बेचारा लिउ पार्टी का वफ़ादार सदस्य था, उसने इस भलेमानस की मंशा पर ज़रा भी शक न किया और न चूँ-चरा किया। चुपचाप उसके फ़ैसले को मान लिया। उसने सेनापतित्व से इस्तीफा दे दिया और फिर पाव-आन की अपनी पहाड़ी गुफा में जाकर रहने लगा। लिउ पर ही नहीं बीती—उसके सौ प्रमुख साथी भी क्रान्ति-विरोधी कहकर निकाल बाहर किये गये।

इसी परिस्थिति में १९३५ के अक्तूबर में माव-से-तुंग अपनी लाल सेना लिये-दिये पहुँचा। जब सारी बातें मालूम हुईं, तो नये सिरे से गलतियों की जाँच-पड़ताल की गई और देखा गया कि चांग-चिंग-फू ने बदमाशियाँ की हैं। लिउ और उसके साथियों को आदर के साथ बुलाया गया और उन्हें उनके पहले स्थान पर सम्मान के साथ रखा गया। चांग-चिंग-फू पर मुकदमा चलाया गया, उसे कैद किया गया और उसके बाद उससे नीचे दर्जे का काम लिया गया।

यहीं पर प्रसंग-वश यह कह देना उचित है कि जिस समय १९३६ में सोवियत-सरकार ने अपनी जापान-विरोधी चढ़ाई शुरू की, तो उसकी पहली सेना का सेनापति लिउ-ज़ू-तान ही बनाया गया और उसने दो महीने के अन्दर १८ हल्कों पर कब्ज़ा कर लिया। उसके नाम से जापानी सेना में तहलका मच जाता था। किन्तु, दुर्भाग्य की बात कि १९३६

में जब वह दुश्मन के एक किले पर चढ़ाई कर रहा था, घायल हो गया। घायल हुआ, किन्तु, सफलता भी उसे मिली, उसकी सेना पील नदी पार कर सकी। घायल होने पर उसे शेन्सी लाया गया और उस पहाड़ की ओर आखिरी बार देखते हुए उसने आँखें मूँदीं, जिस पहाड़ पर वह जन्मा, पला और बढ़ा था और जिसके दर्रे-दर्रे पर उसके कर्त्तव्य की छाप लगी थी। उसकी मृत्यु के बाद सोवियत ने एक जिले का नाम उसके नाम पर रखा। उसके छः वर्ष के बच्चे को, उसके बाप के सम्मान में, अफसरी का खिताब दिया गया और उसे सेनापति की तरह रखा और अदब किया जाता।

लगभग एक वर्ष के बाद चू-तेह की सेना भी जेचुआन से आकर शेन्सी में आ मिली।

शेन्सी में आने पर या उसके पहले भी, सोवियत का किस तरह संचालन होता, साम्यवादी आर्थिक नीति को किस तरह काम में लाया जाता, शिक्षा की क्या पद्धति थी, फौज की शिक्षा और नियंत्रण कैसे होता, आमोद-प्रमोद की क्या सूरतें थीं—इन प्रश्नों पर विचार करना जरूरी है। किन्तु, इसके पहले हम उन महान आत्माओं के बारे में जान लें—जिनके कारण यह असम्भव सम्भव हो सका!

---

# नेतृत्व

## किसान का बेटा

### ( माओ-से-तुंग )

निस्सन्देह सोवियत चीन का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति और नेता माओ-से-तुंग है। और, माओ-से-तुंग एक किसान का बेटा है।

उसके सर पर च्यांग-काई-शेक की सरकार ने दो लाख डालर का इनाम बोल रखा था। दुनिया के इतिहास में किसी एक व्यक्ति के सर पर इतना बड़ा इनाम कभी नहीं बोला गया!

उसका सर दुश्मनों की ही नजर में कीमती नहीं, उसके अपने आदमियों के लिए भी अमूल्य है। किन्तु, अपने इस सर की उसे परवाह नहीं। उसे प्रायः आप अकेले किसानों में घूमते, उनसे बातें करते, उनसे दिल्लगियाँ करते पायेंगे। उसके घर के निकट कोई सन्तरी नहीं। सभी उससे मिल सकते और अपना अभाव-अभियोग बता सकते हैं।

वह दुबला-पतला लम्बे कद का आदमी है—साधारणतः चीनियों [illegible] ऊँचा। वह आगे की ओर कुछ झुका हुआ है। सिर पर लम्बे काले बाल—जो प्रायः ही बेतरतीब रहते हैं। आँखें तीखी—मानो कुछ ढूँढ़ रहीं। नाक उठी हुई और गाल की हड्डियाँ स्पष्ट दीख पड़तीं। पहली झाँकी ही उसके बुद्धिजीवी होने की छाप डालती है।

लेकिन, बुद्धिजीवी लोगों का प्रतिनिधि उसे समझना, उसके साथ अन्याय होगा। वह चीन का, चीनी—सम्पूर्ण चीनी समाज का प्रतिनिधित्व करता है। खास करके वहाँ के किसानों का। वे चीनी किसान—गरीब, भूखे, शोषित, अनपढ़ ;—लेकिन साथ ही साथ उदार, साहसी और अब जो विद्रोह का अवतार बन गये हैं। वह उनकी माँग और आन्दोलन का सच्चा प्रतीक है।

उसकी जिन्दगी अपनी जादूगरी के लिए मशहूर है। च्यांग-काई-शेक की सरकार कितनी ही बार उसे मरा हुआ घोषित कर चुकी। उसकी मृत्यु के सबूत भी दिये जाते—गोरे पादरी तक कसमें खाते। किन्तु, ऐसी हर मौत की खबर के बाद ही उसकी किसी बड़ी विजय की खबर लोगों को स्तब्ध कर देती। उसकी जिन्दगी की जादूगरी का एक सबूत यह भी है कि यद्यपि वह बीसियों लड़ाई में शामिल हुआ, सर्वप्रमुख हिस्सा बँटाया, एक बार तो वह दुश्मनों के हाथ पड़ भी गया था, तो भी, आज तक एक बार भी वह घायल नहीं हुआ।

उसे थाइसिस है, वह असाध्य बीमारियों का शिकार है—कुछ सनसनी पैदा करनेवालों ने यह बात भी उड़ाई। किन्तु, उसका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक है—उसका फेफड़ा बिलकुल दुरुस्त है, गर्चे वह, और लाल सेनानियों के बिलकुल विपरीत, सिगरेट पीने का आदी है। उस महा अभियान के वक्त तो सिगरेट न मिलने के कारण, वह रास्ते के जंगली पत्तों पर प्रयोग करता और उनसे सिगरेट का काम निकालता।

उसकी पत्नी—हो-जे-नीन—जो पहले एक स्कूल की अध्यापिका थी और अब एक मशहूर साम्यवादी कर्मणी है—निस्सन्देह ही अपने पति की तरह भाग्य की लाड़ली नहीं है। उस बेचारी के शरीर पर एक दर्जन घाव के चिह्न हैं, जो हवाई जहाज से गिराये गये बम के विस्फोट से हुए। किन्तु, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह बेचारी अपनी सौत से तो अच्छी ही है, जो, इसकी शादी के पहले ही, फाँसी पर चढ़ाई जा चुकी थी! वह एक प्रोफेसर की लड़की थी। उससे दो बच्चे और इससे एक बच्चा—यों माव तीन सन्तानों का पिता है।

माव-से-तुंग की उम्र इस समय ४५ वर्ष की है।

चीन के साम्यवादियों में माव का प्रभाव सर्वापेक्षा अधिक है। वह करीब-करीब सभी कमिटियों का सदस्य है,—क्रान्तिकारी सेना कमिटी, केन्द्रीय कमिटी का राजनीतिक विभाग, अर्थ-समिति, संगठन-कमिटी, स्वास्थ्य-कमिटी, आदि। किन्तु, यद्यपि उसके लिए सभी के दिल में सम्मान और आदर है, वह इस आदर और सम्मान को अंधपूजा की ओर नहीं बढ़ने देता। "हमारा-महान-नेता" ऐसी चीज, जिसे हिटलर और मुसोलिनी अपने को कहलवाना पसंद करता है, माव को जरा भी पसन्द नहीं। अध्यक्षजी—प्रायः वह इसी साधारण संज्ञा से पुकारा जाता है।

उसका चरित्र बड़ा ही मनोरंजक और कुतूहलवर्द्धक है, उसकी सादगी चीनी किसानों की तरह है। हँसी-मजाक और गँवारू ठहाका बात-बात में पाइयेगा। वह अपने पर भी दिल्लगी करने से बाज नहीं आता और न सोवियत के कामों की त्रुटियों पर चुटकियाँ लेने से चूकता है। सादी जिन्दगी

और साफ बातें—इसका वह नमूना है। इसके चलते कभी-कभी लोग उसपर रुखाई और अश्लीलता के भी दोष लगाते हैं। लेकिन, यह बात गलत है—सांसारिक शिष्टता और प्राकृतिक भाव-व्यंजना का वह एक सुन्दर सम्मिश्रण है।

माव ने चीन के प्राचीन साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है। वह पूरा पढ़क्कू है। दर्शन और इतिहास का पारखी पाठक। अच्छा वक्ता। याद रखने की अपूर्व ताकत। किसी चीज पर अपने पूरे ध्यान का केन्द्रित करना उसके लिए आसान है। योग्य लेखक। अपनी व्यक्तिगत आदतों और बनाव-सिंगार में बिल्कुल लापरवाह। किन्तु, अपने कर्त्तव्यों के ब्योरे-ब्योरे पर ध्यान देनेवाला। अथक परिश्रमी। फौजी और राजनीतिक मोर्चे-बन्दियों में अप्रतिम प्रतिभाशाली। जापानियों का कहना है कि वह आधुनिक चीन के जीवित लोगों में सर्वश्रेष्ठ मोर्चाबन्दी करनेवाला है!

वह एक साधारण मकान में रहता, जिसकी दीवारें पच्चीकारी की जगह नक्शों से ढँकी होतीं। आराईश की चीजों में उसके पास बस एक मच्छरदानी है—नहीं तो, साधारण लाल सैनिकों की ही तरह वह रहता, सहता। व्यक्तिगत चीजों में कम्बल, कुछ कपड़े-लत्ते और दो सूती वर्दियाँ। वह सोवियत का सभापति है और लाल सेना का कमाण्डर—किन्तु वह अपने कंधे या छाती पर इसका कोई चिह्न नहीं लगाता। साधारण सैनिक की तरह अपने कालर में दो लाल पत्तियाँ लगाये रहता है।

सभाओं में, या 'लाल' नाटकों में जब वह आता है, लोगों के बीच, बिना किसी भेद-भाव या आडम्बर के, बैठ जाता है।

उसका भोजन भी, और सैनिकों की तरह का होता है। लेकिन जूनान के होने की वजह, वह मिर्चा खूब पसंद करता है। वह अपनी रोटियाँ भी मिर्चा डालकर पकवाता है। सिवा इसके, वह इसकी पर्वाह भी नहीं करता, कि वह क्या खाता है? एक दिन खाते समय, उसने यहाँ तक कह दिया कि मिर्चा खानेवाले लोग क्रान्तिकारी होते हैं। उदाहरण में पहले उसने अपने प्रान्त हूनान को लिया, जो अपने क्रान्तिकारी आन्दोलन के चलते बदनाम है। फिर, स्पेन, मैक्सिको, रूस और फ्रांस को पेश किया—किन्तु, इसी समय किसीने इटली का नाम लिया और कहा कि लाल मिर्चों का शौकीन यह देश तो फासिज्म का अड्डा है। माव ने हँसते हुए अपनी हार मंजूर कर ली।

दम्भ तो उसमें है नहीं, किन्तु व्यक्तिगत मर्यादा का उसे बहुत खयाल रहता है और जब जरूरत होती है, वह बड़ी ही कड़ाई से काम लेता है। वह नाराज तो होता ही नहीं—किन्तु, यदि किसी अभूतपूर्व कारण से उसे क्रोध आया, तो फिर क्या पूछना है।

वह संसार की परिस्थिति और परिवर्तनों से अपने को सदा जानकार रखता है। महा अभियान के समय भी वह किसी न किसी तरह अखबार मँगाकर पढ़ता था। संसार के प्रमुख पुरुषों की गतिविधि पर वह खास खयाल रखता है। एक पत्र-प्रतिनिधि से उसने गांधी, जवाहरलाल आदि भारतीय नेताओं और नेत्रियों के बारे में पूछताछ की थी।

जिसको धार्मिक भावना कहते हैं, वह उसमें नहीं है। तर्क और आवश्यकता इन्हीं दोनों के आधार पर वह अपना निर्णय किया करता है।

माव प्रायः तेरह-चौदह घंटे तक दिन-रात में काम करता है। वह रात में देर से सोता है, प्रायः दो-तीन बजे तक जगा रहता है।

उसे इस्पात का शरीर मिला है। बचपन में वह पिता के खेतों में दिन-दिन भर खटता रहता था। विद्यार्थी-अवस्था में उसने अजीब ढंग से अपने शरीर को साधा था। उसने अपने साथियों को लेकर एक क्लब बना रखा था। लम्बे-लम्बे उपवास किये जाते, पहाड़ियों और जंगलों को लाँघा जाता, जाड़े के दिनों में पानी में तैरा जाता, वर्षा और बरफ की बूँदा-बूँदी में नंगे बदन घूमा जाता, चिलचिलाती धूप में टहला जाता। माव और उनके साथियों ने अपने देश के लिए काम करने का पहले से ही तय कर लिया था और उसके लिए उन्होंने पहले से ही तैयारियाँ शुरू कर दी थीं।

एक गर्मी के दिनों में माव ने अपने प्रान्त हुनान की एक यात्रा की थी। वह अपनी रोटी खेतों पर काम करके लेता था और कभी-कभी उसे भीख भी माँगनी होती थी। कभी-कभी उसे पानी या सूखी छीमियों पर ही रह जाना पड़ता था—ऐसा करके वह अपने पेट को वक्त-जरूरत के लिये तैयार करता था। उसकी यह यात्रा पीछे चलकर बड़े काम की हुई। जब वह किसान-सभायें स्थापित करने अपने प्रान्त में पहुँचा, उसकी पुरानी जान-पहचान ने उसे बहुत सुविधायें दीं।

माव में सुकुमार भावनाओं की कमी नहीं। जब कभी वह अपने मृत साथियों के बारे में चर्चा करता, उसकी आँखें छलछला उठतीं। जब अपने प्रान्त के किसानों की दशा का

वर्णन करता—किस तरह अकाल के समय वे दर-दर मारे फिरते और जब अफसरों और जमीन्दारों से एक मुट्ठी अन्न की माँग करते, तब उनके सर धड़ से उतार दिये जाते—तो वह आठ-आठ आँसू रोने लगता। मोर्चे पर एक घायल को देखकर उसने अपना कोट उतारकर दे दिया था। जब तक लाल सेना के सैनिकों के लिए जूते का प्रबंध नहीं हो गया, वह पैदल ही घूमा करता!

कुछ लोगों का ख़याल है, माव चीन के बुद्धिवादी लोगों का नेता नहीं हो सकता, वे लोग उसे नेता स्वीकार नहीं कर सकते। इसका कारण यह नहीं कि वह बुद्धि और मस्तिष्क में, अध्ययन या विश्लेषण में कम शक्ति और पैठ रखता है—किन्तु, इसलिए कि उसका रहन-सहन पूरा किसानों की तरह है। जिसे 'बड़े लोगों की मर्यादा' कही जाती है, इसकी उसे परवाह नहीं। गर्मी के दिनों में अपने सभी कपड़े उतार, वह नंग-धड़ंग पड़ा-पड़ा नक्शे को देखता, पढ़ता या अपने अधीनस्थ लोगों को हिदायतें किया करता है।

कुछ हफ्तों को छोड़कर, महा अभियान में, माव साधारण सिपाहियों की तरह पैदल ही चला किया।

१९३४ में दूसरी अखिल चीन सोवियत कांग्रेस हुई थी, उसमें वह सर्व सम्मति से केन्द्रीय चीनी सोवियत सरकार का अध्यक्ष चुना गया था। उस समय सोवियत की जन-संख्या ९० लाख थी, जो यों बँटी थी—कियांग्सी सोवियत ३० लाख; हूपे-आन्ह्वी-होनान सोवियत २० लाख; हूनान कियांग्सी-हूपे-सोवियत १० लाख; कियांग्सी-हूनान-सोवियत २० लाख, कैंकियांग-फुकियन-सोवियत १० लाख, हूनान-हूपे-

सोवियत १० लाख। किन्तु, इन सोवियतों की शक्ति और प्रसिद्धि इतनी थी कि कहा जाता था, ८ करोड़ की जनसंख्या पर इनका लाल झंडा फहराता है।

माव का प्रारम्भिक जीवन भी कम आकर्षक नहीं।

उसका जन्म एक गरीब किसान-परिवार में १८९३ ई० में हुआ। जब वह छः वर्ष का हुआ, तभी से वह अपनी माँ के साथ खेत पर काम करता। उसका बाप अन्न का छोटा-सा रोजगार भी करता, जिसमें फँसा रहता। वह माव से बड़ी रुखाई से पेश आता और प्रायः पीटता।

८ वर्ष की उम्र में उसकी पढ़ाई शुरू हुई। तेरह वर्ष की उम्र तक वह प्राइमरी स्कूल में ही पढ़ता रहा। स्कूल का मास्टर इतना पीटता कि दस वर्ष की उम्र में वह स्कूल से भागकर तीन दिन तक निकट के गाँवों में भटकता रहा। पिता ने आखिर बेटे की खोज-खबर ली, ढूँढ़कर घर लाया और तब से मार-पीट कुछ कम हो गई—बाप की और शिक्षक की भी।

प्राइमरी स्कूल की पढ़ाई खतम कर माव, पिता की आज्ञा से, घर पर ही रहा और खेती-बारी के अलावा उनके व्यापार का हिसाब-किताब भी देखता। किन्तु, एक तो उसमें पढ़ने की बड़ी लालसा थी, दूसरे बाप से पटती नहीं थी, अतः १६ वें वर्ष की उम्र में जब उसने सुना, निकट के दूसरे जिले में एक ऐसा स्कूल खुला है जहाँ बिना फीस की पढ़ाई होती है, वह उसमें जाकर भर्ती हो गया।

वह दूसरे जिले का था। और गरीबी के कारण फटे-चिटे कपड़े पहनकर स्कूल जाता, फलतः वहाँ के जमीन्दारों के लड़के उसे बहुत तंग करते। तो भी वह आकर पढ़ा करता।

वहीं उसने अपने देश में चलने वाले सुधार-आन्दोलनों के बारे में जानकारी प्राप्त की एवं विदेश के इतिहास, खासकर विदेशी वीरों की कहानियाँ पढ़ीं। एक शिक्षक जापान से लौटे हुए थे, जिनके मुँह से उसने जापान के करतब के किस्से सुने।

इस स्कूल के बाद, माव ऊँची शिक्षा के लिए अपने प्रान्त की राजधानी चांग्सा पहुँचा। वहाँ आते ही उसे नई-नई बातें मालूम होने लगीं। जिन्दगी में पहली बार उसने अखबार देखा और डा० सन-यात-सेन और उनके राष्ट्रीय आन्दोलन की बात सुनी। उसके हृदय में देशभक्ति जागी और जब देश के नाम पर छात्रों की एक सेना संगठित करने की बात उठी तो उसने भी उसमें नाम लिखाया और छः महीने तक लेफ्ट-राइट करता रहा।

इसके बाद वह भिन्न-भिन्न शिक्षण-संस्थाओं में प्रवेश पाने और विद्याध्ययन करने की चेष्टा में लगा रहा। घर से उसे एक पाई तक नहीं मिलती थी। तो भी उसने हिम्मत नहीं हारी। यह देखकर कि अंगरेजी में ज्ञान का भंडार है उसने अँगरेजी भी सीखी और धीरे-धीरे इतिहास अर्थशास्त्र, विज्ञान और दर्शन की प्रामाणिक पुस्तकें पढ़ डालीं। ऐसे-तैसे-प्रकारेण वह नार्मल स्कूल में भी भर्ती हुआ और पाँच वर्षों में उसकी उपाधि-परीक्षा पास कर अच्छा खासा ग्रेजुएट बन गया।

माव को शुरू से ही साहित्य से अनुराग था। प्राइमरी स्कूल में पढ़ते समय भी वह चीन के प्राचीन साहित्य की ओर ध्यान देता। ज्यों-ज्यों वय और होश बढ़ता गया, साहित्य की ओर अधिकाधिक आकृष्ट होता गया। अपने देश के साहित्य के अलावा उसने विदेशी साहित्य का भी

अध्ययन किया और विचारों में थोड़ी प्रौढ़ता आते ही लेख लिखना शुरू किया। पहले वह पुरानी पंडिताऊ भाषा और शैली लिखता, किन्तु, धीरे-धीरे उसने इसमें भी तरक्की की और काफी सुन्दर, सुबोध और सरल भाषा और शैली लिखने लगा।

इधर देशभक्ति का नशा भी तेज होता चला और अन्त में माव ने निर्णय कर लिया कि वह अपना पूरा समय देश के लिए देगा। ग्रेजुएट होने पर उसने अखबारों में एक विज्ञापन छपवाया कि जो नौजवान अपना जीवन देश के लिए देना चाहें और सब तरह के बलिदान करने को तैयार हों, वे कृपया मुझसे अमुक स्थान पर मिलें। यह विज्ञापन कोई ज्यादा काम का सिद्ध नहीं हुआ, किन्तु, धीरे-धीरे उसने देश-भक्त विद्यार्थियों को एक अच्छी गुट अपने इर्द-गिर्द कायम कर ली। प्रजातंत्रवाद के साथ-साथ उसका ध्यान साम्यवाद की ओर भी जाने लगा और वह उदार साम्यवादी बन गया।

इसी समय उसने अपने शरीर की ओर भी ध्यान देना शुरू किया। तरह-तरह की कसरतें करता—यही नहीं, जाड़ा, धूप, बरसात से अपनी देह की साधना करता।

उस समय फ्रांस की सरकार ने चीनी विद्यार्थियों के फ्रांस आकर पढ़ने की एक योजना बनाई थी, जिसे 'मजदूरी करो और पढ़ो' के नाम से पुकारा जाता था। उस योजना के अनुसार बहुत-से चीनी विद्यार्थी फ्रांस गये—खुद माव ने भी बहुतों को जाने के लिए प्रेरित किया, किन्तु, वह खुद नहीं गया। वह सोचता, अभी अपने देश की अवस्था समझने में ही मुझे वक्त लगाना चाहिये और वक्त का जितना उपयोग

अपने देश में हो सकता है, उतना विदेश में नहीं। हाँ, चांग्सा छोड़कर वह चीन की उस समय की राजधानी पेकिंग—जो अब पीपिंग कहलाता है—चला आया और वहाँ राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का सहकारी पुस्तकालयाध्यक्ष बनाया गया। उसका अध्यक्ष था ली-ता-चाव, जिसने चीन की साम्यवादी पार्टी का जन्म दिया था और जिसे पीछे च्यांग-काई-शेक की सरकार ने फाँसी पर लटका दिया।

पेकिंग में रहते समय माव ने दर्शनशास्त्र और सम्पादन-कला का विशेष अध्ययन किया। राजनीति में उसके विचार दिनदिन क्रान्तिकारी होते गये।

१९१९ में फ्रांस जानेवाले विद्यार्थियों के साथ माव शांघाई आया और वहाँ से नानकिंग और पू-काऊ होते, बिना एक पैसा राह-खर्च के जैसे-तैसे चांग्सा पहुँचा। चांग्सा पहुँचकर अब माव ने खुलकर काम करना शुरू किया। वह विद्यार्थियों के सुप्रसिद्ध पत्र का सम्पादक बनाया गया और एक "सांस्कृतिक अध्ययन-केन्द्र" कायम कर उसके द्वारा नौजवानों को वर्तमान राजनीतिक प्रवृत्तियों से परिचित कराने लगा। हूनान के शासक के विरुद्ध विद्यार्थियों की एक हड़ताल भी कराई—शासक ने नाराज होकर उसके अखबार को बन्द करा दिया।

माव फिर एक बार पेकिंग आया और यहाँ आकर सैनिकों में काम करने लगा। उस शासक के खिलाफ के अपने आन्दोलन को भी यहीं से संचालित करता रहा और आखिर उसे उस पद से हटाकर ही दम लिया।

१९१९ में दूसरी बार वह शांघाई भी गया, जहाँ चीन की साम्यवादी पार्टी के प्रमुख संस्थापक चेन-तू-स्यू से उसकी

भेंट हुई। अपने प्रान्त के कार्यक्रम के बारे में सलाह-मशविरा कर वह चांग्सा पहुँचा और यहाँ आकर 'नवीन हूनान' नामक पत्र अपने प्रान्त के नाम पर निकाला।

पेकिंग की इस दूसरी यात्रा में उसने कुछ प्रामाणिक साम्यवादी पुस्तकें पढ़ीं—मार्क्स की 'साम्यवादियों का घोषणा-पत्र', कौतस्की की 'वर्ग-संघर्ष' और किर्कप की 'साम्यवाद का इतिहास'। इन पुस्तकों ने उसे पक्का साम्यवादी बना दिया। १९२० में चांग्सा पहुँचकर वह मजदूरों के संगठन की ओर ज्यादा ध्यान देने लगा। इसी साल उसने एक प्रगतिशील युवती कमिंग्री के साथ विवाह किया।

माव की इसके बाद की जिन्दगी तो चीन की साम्यवादी पार्टी के इतिहास के साथ संग्रथित है, जो प्रसंग-वश भिन्न-भिन्न जगहों पर मिलेगी।

# रसोइयों का सरदार

## ( चू-तेह )

माओ के बाद चीनी सोवियत में जो सबसे प्रभावशाली आदमी है, वह है, चू-तेह। लाल सेना का वह सेनापति है, उसके सिर पर भी दो लाख का इनाम च्यांग-काई-शेक ने बोल रखा था।

माओ के ठीक विपरीत, यह एक बड़े जमीन्दार का लड़का है। बचपन इसका खेल-कूद और जवानी इसकी मौज-शौक में बीती। किसी ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी कि यह रईस-जादा, अफीम के नशे में बेहोश रहनेवाला, अपने घर में पौन दर्जन बीबियाँ पाल रखनेवाला, रंडीबाज़, आवारा-गर्द एक दिन विशुद्ध साम्यवादी बन जायगा और लाल सेना के सेनापति की हैसियत से अपने कर्तृत्वों द्वारा संसार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेगा।

चू-तेह का जन्म जेचुआन प्रान्त में हुआ। शुरू से ही वह बिगड़ैल और साहसी स्वभाव का था। अपने पहाड़ी प्रांत के साहसी वीरों की कहानियाँ बचपन से ही उसे सैनिक जीवन के लिए उत्साहित करतीं। अपने परिवार के राजनीतिक प्रभाव के कारण तुरत के स्थापित यूनन के सैनिक-विद्यालय में उसकी भर्ती होने में कठिनाई नहीं हुई। वह चीन के आधुनिक ढंग की शिक्षा पाये हुए सैनिकों के

पहले दल का है। इस विद्यालय से स्नातक बनकर निकलते ही वह लेफ्टिनेन्ट बना दिया गया।

१९१२ में जब सन-यात-सेन की नायकता में मांचू-शासन को हटाया गया, उस समय चू-तेह ने वीरों की एक टोली का नायकत्व किया था। यही नहीं, १९१६ में जब य्वान-शिह-काई ने प्रजातंत्र के विरुद्ध बगावत करना चाहा था, तो उसके दबाने में चू-तेह की टुकड़ी ने भी बड़ा नाम कमाया था और उस समय के "चार भयंकर सेनापतियों" में उसकी गिनती हुई थी।

इन प्रसिद्धियों के कारण, और अपने खान्दान के रुतबे के सबब, चू-तेह की पद-मर्यादा दिन-दिन बढ़ने लगी। यूनानफू की सार्वजनिक-समिति और प्रांतीय अर्थ-सचिव के पद पर उसे बिठाया गया। यूनन और जेचुआन के लोगों की यह धारणा है कि हर अफसर में दो चीजें होना जरूरी है—वह घूसखोर हो, वह अफीम पीये। उसके प्रांत में अफीम चाय की तरह मामूली चीज समझकर खूब ली जाती है और हर अफसर सार्वजनिक कोष से अपना भंडार भरना अपना वाजिब हक समझता है। फिर चू-तेह अफीम पीने से क्यों चूके? वह अपने को धनी क्यों नहीं बनाये?

उसके बाद, स्वभावतः उसका ध्यान अपने 'हरम' की ओर गया और कुछ ही दिनों में नौ बीबियाँ और रंडियाँ एकत्र हो गईं। उनके लिए उसने यूनन की राजधानी में एक शानदार महल भी बनाया। उसके पास अब सब कुछ थे—धन, शक्ति, प्रेम, [illegible], सुनहले स्वप्न और चमकते आदर-सम्मान। एक निश्चित भविष्य उसके सामने था। किन्तु, एक 'बुरी' आदत ने सब चौपट कर दिया—वह

बुरी आदत थी, किताबें पढ़ना ! गर्चे आज तक वह विशुद्ध यथार्थवादी था, किताबों के लगातार पढ़ने से उसमें धीरे-धीरे आदर्शवाद ने घर बनाना शुरू किया। विदेशों से पढ़े हुए कुछ विद्यार्थी जब उससे मिले, उसके आदर्शवाद पर कुछ और रंग चढ़ा। उसने सोचना शुरू किया कि १९११ की क्रान्ति जनता के लिए किसी काम की नहीं हुई। उसने तो एक शोषक वर्ग के बदले दूसरे को उसकी जगह पर बिठलाया। फिर उसके नगर की दशा ने भी उसे कम प्रभावित नहीं किया—वह नगर जहाँ ४०,००० गुलाम लड़के और लड़कियाँ लोगों को पाशविक वासनाओं की तृप्ति करती थीं। उसके मन में कुछ लज्जा और उससे भी बढ़कर महत्त्वाकांक्षा पैदा होने लगी—वह 'पश्चिमीय' देशों की तरह अपने देश को भी आधुनिकता में रँगकर अपने को एक 'जन-नायक' के रूप में देखने का स्वप्न देखने लगा। कुछ और पढ़ा जाय, कुछ आँखों से भी देखा जाय—उसने निश्चय किया।

१९२२ में यूननफू ने एक अजीब दृश्य देखा। चू-तेह अपनी सभी बीबियों और रंडियों को काफी पैसे देकर, उन्हें सदा के लिए छोड़ शांघाई को रवाना हो गया। शांघाई पहुँचकर वहाँ उसने राष्ट्रवादी नेताओं से भेंट की। फिर गरमदली क्रान्तिकारियों से भी उसकी जान-पहचान हुई। किन्तु, वे गरमदली सोचते—यूनन का यह घूसखोर अफसर, अनेक बीबियाँ रखनेवाला सेनाध्यक्ष, अफीम का घोर आदी—क्या यह क्रान्तिकारी हो सकेगा ?

चू-तेह बीबियाँ छोड़ चुका था, धन-वित्त से भी उसे वितृष्णा हो चली थी। किन्तु अफीम ? अफीम की आदत कैसे छूटे ? और बिना छोड़े वह क्या कोई काम कर सकेगा ?

चू-तेह ने इसे भी छोड़ने का निश्चय किया और इसपर डट गया। सात दिन तक वह बेहोश पड़ा रहा—क्योंकि अफीम की इच्छा से युद्ध करना आसान न था। उसके बाद वह एक अँगरेजी जहाज पर जा सवार हुआ, जो हांकाओ जाता-आता था। जहाज पर अफीम खाना सख्त मना था। वह इसी उद्देश्य से इसपर आया भी था कि कहीं फिर उसकी इच्छा उसे विचलित न कर दे। हफ्तों तक वह इसी जहाज पर आता-जाता रहा—किनारे पर उतरा नहीं। जिन्दगी में उसने जितनी लड़ाइयाँ लड़ी थीं, यह लड़ाई उन सबमें प्रबल और विकट थी। किन्तु, आखिर उसकी विजय हुई। एक महीने के बाद जब वह जहाज से उतरा—उसकी आँखें साफ थीं, उसके गाल पर एक तरह की ललाई थी, उसके डगों में एक दृढ़ता थी। अफीम से वह पूरी तरह मुक्ति पा चुका था। उसे नवजीवन मिल चुका था।

इस समय चू-तेह की उम्र ४० वर्ष के करीब थी—लेकिन उसका स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक और उसका दिमाग नये ज्ञान के लिए आतुर था। कुछ चीनी विद्यार्थियों के साथ वह विदेश के लिए रवाना हुआ और जर्मनी पहुँचा। उस समय जर्मनी साम्यवादियों का अखाड़ा था। उसने वहाँ के प्रसिद्ध साम्यवादियों से भेंट की और राजनीति और इतिहास का अध्ययन करना शुरू किया। वह फ्रेंच नहीं जानता था, फकत कटर-मटर की जर्मन जानता था। पढ़ने में उसे चीनी विद्यार्थियों से मदद लेनी पड़ती थी, जो उम्र में उसके लड़के के समान होते। किन्तु, वह जरा भी शर्मिंदा नहीं होता, वरन् बहुत ही उत्साह से अपनी पढ़ाई में लगा रहता।

उसने महायुद्ध का इतिहास पढ़ा और यूरोप की राज-

नीति से अपने को परिचित किया। एक दिन एक विद्यार्थी ने उसके निकट लेनिन की 'स्टेट ऐंड रेवोल्यूशन'—"राज्य और क्रान्ति" नामक पुस्तक रखी। वह बड़े चाव से, एक विद्यार्थी की सहायता से, उसे पढ़ गया। बुखारिन की 'ए-बी-सी ऑव कम्यूनिज्म' और उसकी 'हिस्टोरिकल मिटिरियलिज्म' नाम पुस्तक भी उसने पढ़ी। उस समय जर्मनी में साम्यवादी आन्दोलन जोरों से चल रहा था। उसे साम्यवाद की धारा में घसीट लाने में उसने और भी मदद की। जब चीनी विद्यार्थियों ने जर्मनी में अपनी एक साम्यवादी पार्टी कायम की, वह उसमें शामिल हो गया।

जर्मनी से वह फ्रांस आया और वहाँ अध्ययन करते समय जब उससे कहा गया कि एक बार रूस जाकर अपनी आँखों से सब देख आइये, तो वह मास्को भी गया और वहाँ के 'पूर्वीय-श्रमजीवी-विश्वविद्यालय' में नाम लिखाकर साम्यवादी सिद्धान्तों की शिक्षा लेता रहा। कई वर्षों तक विदेश में शिक्षा-ग्रहण करने के बाद वह १९२५ में शांघाई लौटा।

स्वदेश लौटकर चू-तेह फिर फौज में शामिल हुआ। उसका बड़ा अफसर उसका साथी चू-पी-तेह था, जो च्यांग-काई-शेक के बाद सबसे बड़ा प्रभावशाली आदमी था। इस फौज में रहते हुए उसने कितने ही जिम्मेवारी के पदों को सुशोभित किया। दोनों में पटती भी खूब थी। किन्तु, १९२७ का जब वह जमाना आया, जब साथी-साथी सिद्धान्तों के नाम पर अलग होकर एक-दूसरे के जानी दुश्मन बने और साम्यवादी और राष्ट्रवादी नाम से दो साफ दल बन गये, तो चू-तेह ने साम्यवादियों का साथ दिया। वह विद्रोह कर चू-पी-तेह की सेना से निकल आया। उसके साथ उसके

बहुत-से सैनिक और अधीनस्थ सेनापति भी निकल आये। इन्हीं लोगों में लिन-पिआव भी था, जो पीछे चलकर लाल सेना के सैनिक विद्यालय का अध्यक्ष हुआ।

विद्रोह करके निकल आना सहज तो नहीं था। उसके बाद ही घमासान लड़ाइयाँ शुरू हुईं और एक जमाना वह भी आया, जब चू-तेह की सेना में कुल ६०० सैनिक रह गये और सामान का तो पूछना ही क्या? बहुत थोड़े कारतूस और केवल ५०० राइफलें बच गई थीं।

चू-तेह को एक दूसरे सेनापति ने साथ देने के लिए निमंत्रित किया। वह साम्यवादी तो नहीं था, किन्तु, च्यांग-काई-शेक का वह दुश्मन था और उसका प्रतिद्वंद्वी भी। चू-तेह ने उसका साथ देना स्वीकार कर लिया और वह सेना का प्रधान राजनीतिक सलाहकार बनाया गया।

इसी समय वह घटना हुई, जिसके चलते चू-तेह आज भी अपनी लाल सेना के द्वारा प्यार से "रसोइयों का सरदार" कहकर पुकारा जाता है। बात यों है कि उस सेना में बहुत-से ऐसे सैनिक भी थे, जो साम्यवादियों के सख्त दुश्मन थे। उन्हें चू-तेह का इसमें शामिल होना और इतना प्रधानत्व प्राप्त करना पसन्द नहीं था। एक रात को जब चू-तेह अपने कुल ४० साथियों सहित एक सराय में ठहरा हुआ था कि उन लोगों ने उसपर एकाएक धावा बोल दिया और गोलियाँ चलाने लगे। अँधेरा था, कुछ सूझता नहीं था। जब उनमें से कई ने एक साथ ही अपने रिवाल्वर चू-तेह की तरफ मुखातिब किये, तो चू-तेह चिल्ला उठा—"अरे मुझे मत मारो. मैं रसोइया हूँ—मुझे मारने से क्या फायदा. मैं

तुम्हारी रसोई बनाऊँगा।" बेचारे सैनिक यह आवाज सुनकर ठिठक गये। किन्तु, उनमें से कुछ ने उसे पकड़ लिया और अच्छी तरह देखने के लिए बाहर ले आये। बाहर आते ही एक चिल्ला उठा—यह चू-तेह है, मारो! किन्तु, क्या अब चू-तेह को मारना आसान था? चू-तेह तब तक अपना रिवाल्वर निकाल चुका था। चिल्लाने वाले को वहीं सुलाकर और पकड़नेवाले को एक ही झटके में दूर पटककर वह चम्पत हो गया।

यहाँ से निकलकर चू-तेह अपनी सेना के साथ इधर-उधर भटकता रहा। साम्यवादी पार्टी की केन्द्रीय समिति की दुर्बलता के कारण चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था। कोई साफ रास्ता मालूम नहीं होता था। इधर अन्न-वस्त्र के अभाव के कारण उसकी सेना की बुरी हालत थी। इसी समय उसके कानों में कई जगह सोवियत सरकार कायम किये जाने की खबर मिली। उसने भी हूनान प्रान्त के दो जिलों में सोवियत कायम की और अपनी सेना का नामकरण "किसान-सेना" करके उसे सुसंगठित करने की चेष्टा में लगा। जब माव-से-तुंग को यह हाल मालूम हुआ, उसने सोवियत की ओर से अपने सगे भाई को प्रतिनिधि रूप में उसके पास भेजा और साथ मिलकर काम करने को निमंत्रित किया। चू-तेह राजी हुआ, मई १९२८ में दोनों सेनायें मिलकर एक हुईं और उसका सेनापति चू-तेह बनाया गया। उसके सेनापतित्व में लाल सेना ने जो कौशल दिखलाया, उसका वर्णन तो पिछले भाग में आ ही चुका है।

उसके युद्ध-कौशलों के कारण चीन में उसके बारे में अजीब-अजीब अफवाहें हैं: कोई कहता है, चू-तेह को युद्ध-

दृष्टि प्राप्त है और वह सौ कोस तक चारों ओर देख सकता है। कोई कहता है, उसे उड़ने का जादू मालूम है। दुश्मनों की राह रोकने के लिए धूल का घटाटोप करने या प्रचंड आँधी उठाने की शक्ति भी उसमें बताई जाती है। कोई कहता है, उसका शरीर अभेद्य है—हजारों गोलियाँ उसपर चलाई गईं, किन्तु, क्या एक भी घाव उसके शरीर पर कभी हुआ? तो कोई बतलाता है—नहीं, उसे पुनर्जीवन की कला मालूम है। कई बार च्यांग-काई-शेक के लोगों ने उसके मरने की खबर छापी—फिर वह आज तक जीवित है कैसे? "लाल कुकर्म" इस नाम से तो वह चीन भर में मशहूर है—क्योंकि उसके नाम का अर्थ चीनी-भाषा में यही है।

चू-तेह बहुत ही शान्त और विनयी स्वभाव का है। उसकी आवाज मधुर और बड़ी-बड़ी आँखें करुणा से भरी हैं। कद में ठिंगना, कुछ मोटा—उसके हाथ-पाँव तो मानो इस्पात के बने हैं। उसकी उम्र पचपन वर्ष के लगभग है—किन्तु, वह हँसकर कहता है, जब से मुझे याद है, मैं अपने को ४८ ही वर्ष का बताता हूँ। उसकी पहली स्त्री युद्ध में लड़ते-लड़ते मरी। दूसरी स्त्री एक किसान की लड़की है, जो किसानों की एक सेना बनाकर लड़ती और अपने घायल सैनिकों को अपने कंधे पर ढोती थी। स्त्री होने पर भी उसके हाथ-पाँव पुरुषों के-से हैं। खूब तन्दुरुस्त और साहसी।

अपने सैनिकों के प्रति चू-तेह का स्नेह अगाध है। जब से सेनापति बनाया गया, वह उन्हीं की तरह पोशाक पहनता और उन्हीं की तरह रहता, सहता। प्रारम्भिक दिनों में वह प्रायः ही बिना जूते का रहता और कद्दू के साग या पात के

श्रीमती सन-यात-सेन

च्यांग-काई-शेक
जिनकी पहले की सत्यानाशी नीति के कारण
सब बंटाढार हुआ !
[ चीन के संयुक्त मोर्चा बनाने में श्रीमती च्यांग-काई-शेक
और श्रीमती सन-यात-सेन का जबर्दस्त हाथ रहा है । ]

श्रीमती च्यांग-काई-शेक

गोश्त पर गुज़र करता। वह सैनिकों की छावनियों में गश्त-गश्ती करता है, उनके पास बैठकर कहानियाँ कहता-सुनता और ताश खेला करता है। टेनिस और बासकेट-बॉल का वह चतुर खिलाड़ी है। हर सैनिक सीधे उसके पास आकर अपने अभाव-अभियोग की बात रख सकता है। सैनिकों से बातें करते समय, वह अपनी टोपी उतारकर हाथ में ले लेता है। महान् अभियान के समय वह अपना घोड़ा प्रायः थके साथियों को दे देता और आप पैदल चलता। थकावट या बीमारी उसके पास नहीं फटकती।

# परिस्थितियों का पला

## ( पेंग-तेह-हाई )

माव-से-तुंग और चू-तेह के बाद ही जिसका नाम चीनी सोवियत के लोगों की जबान पर है, वह पेंग-तेह-हाई है। उसके सिर पर एक लाख डालर का इनाम च्यांग-काई-शेक ने बोल रक्खा था। हवाई जहाज से पर्चे गिराये जाते— पेंग को पकड़ लाओ और एक लाख रुपये लो। किन्तु, कोई माई का लाल यह काम करने में समर्थ नहीं हो सका।

और, यदि हम पेंग को परिस्थितियों का पला कहें, तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं।

वह एक धनी किसान का लड़का है। उसका घर उसी हूनान प्रान्त में है जिसे माव को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त है। यह प्रान्त बड़ा ही उपजाऊ और समृद्धिशाली है और संसार की सबसे घनी आबादियों में इसकी गिनती है। यहाँ के जमीन्दार अपने वैभव और सुख-ऐश्वर्य के लिए चीन भर में मशहूर हैं।

किन्तु, एक धनी घर में जन्म लेकर भी, पेंग को वे सुख प्राप्त नहीं हो सके, जो धन के प्रसाद हैं। जब उसकी उम्र कुल छः वर्ष की थी, उसकी माँ मर गई। पिता ने दूसरी शादी की और इस सौतेली माँ ने उसे कभी फूटी आँखों भी नहीं देखा। घर में वह पीटती और स्कूल में गुरुजी की छड़ी पीठ पर पड़ती। एक बार गुरुजी की पिटाई से आजिज

आकर पेंग ने तिपाई उठाकर उसके सिर पर दे मारा। मास्टर ने अदालत में नालिश की। उसकी सौतेली माँ ने बेटे के कसूर का एकबाल किया!

उसका पिता इस घरेलू झगड़े से अपने को दूर ही रखता। यही नहीं, अपनी स्त्री से संग निभाने के लिए उसने अपने इस बेटे को अपनी एक चाची के पास भेज दिया। उस बुढ़िया ने पेंग को एक आधुनिक स्कूल में बिठलाया। किन्तु, जब बुढ़िया को पेंग की शरारतें मालूम हुईं—वह हर महीने की पहली और पन्द्रहवीं तारीख को, तथा जिस दिन आँधी आती थी उस दिन, प्रार्थनायें करती कि इस बदमाश बच्चे से उसको त्राण मिले!

वह बुढ़िया घर के सब लोगों को अपना गुलाम समझती और खूब अफीम पीती। पेंग को अफीम की महक बर्दाश्त नहीं होती। एक दिन उसकी अफीम तैयार की जा रही थी कि पेंग ने ठोकर मारकर उसे तहस-नहस कर दिया। बुढ़िया बहुत नाराज हुई। कुनबे भर के लोगों को बुलाया और उनके नजदीक यह तजवीज रखी कि इस लड़के को डुबाकर मार डाला जाय—क्योंकि वह अपने बड़ों की कद्र नहीं करता, पितृ-द्रोही है। सौतेली माँ सबसे पहले तैयार हुई और उसके पिता ने कुनबे के निर्णय में खलल डालने से इन्कार किया। पेंग की मौत निश्चित मालूम होने लगी। किन्तु, उसी समय उसका मामा वहाँ पहुँचा। उसने लड़के की शरारत के लिए माँ-बाप को ही दोषी बतलाया और उन्हें खूब डाँटा भी। इस तरह, जरा से, पेंग की जान बच गई, किन्तु, उसे घर छोड़कर कहीं भी चले जाने का हुक्म हुआ।

पेंग उस समय कुल नौ वर्ष का था। कातिक का महीना

जाड़ा पड़ रहा था। उसके शरीर पर कोट और एक पाजामा के अलावा और कुछ नहीं था। उसकी सौतेली माँ यह कोट भी ले लेना चाहती थी, किन्तु, पंग ने कहा कि यह कोट तो मेरी अपनी मा का दिया हुआ है, मैं नहीं दूँगा। खैर, यह बात मान ली गई!

बालक पेंग ने संसार में प्रवेश किया। पहले उसने पशुओं की चरवाही की नौकरी की। फिर, कोयले की खान में काम करना शुरू किया, जहाँ उसे दिन में १४ घंटे कोयले को नीचे से ऊपर लाना होता। उस काम से परेशान हो वह भागा और एक जूता बनानेवाले के यहाँ नौकरी की। वहाँ बारह घंटे काम करना पड़ता—खैर, दो घंटे की बचत तो हुई। पर, यहाँ आठ महीने काम करने पर भी इसे एक पैसा मुशाहरा नहीं दिया गया, तब वहाँ से भागकर एक शोरे की खान में काम करने लगा। यहाँ भी उनका अभाग्य उसका पीछा कर रहा था। वह खान बन्द हो गई और उसे दूसरी नौकरी की तलाश करनी पड़ी। शरीर पर चीथड़ा लिये वह भटकता रहा। आखिर बाँध बाँधने के काम में उसे नौकरी मिली, जहाँ उसे पैसे भी मिलते। पैसे—हाँ, दो वर्ष में वह बारह चाँदी के सिक्के इकट्ठा कर सका!

पेंग १६ वर्ष का हो चुका था। दुनिया से हारकर वह फिर घर की ओर लौटा और अपने उस मामा के पास गया, जिसने उस दिन उसे मौत के पंजे से छुड़ाया था। मामा का बेटा तुरत ही मरा था, घर में कोई लड़का था नहीं, अतः पेंग की उसने बड़ी खातिर की। उसके मामा की एक लड़की-मात्र बच रही थी। इस लड़की से पेंग को प्रेम हो गया। मामा ने दोनों की शादी कर देने का भी सोचा। पेंग को उस लड़की

के साथ ही पढ़ाई-लिखाई फिर शुरू हुई। दोनों साथ रहते, खेलते, पढ़ते और अपने भविष्य जीवन का खाका बनाते।

किन्तु, पेंग की दुस्साहसिकता ने उस खाके को भी खाक में मिला दिया।

उस साल हूनान में बड़ा अकाल पड़ा था। हजारों किसान भूखों मर रहे थे। पेंग का मामा जहाँ तक सम्भव होता, लोगों को मदद देता। किन्तु, अन्न का अंबारा तो लगाये था वहाँ का एक जमीन्दार, जो अकाल से फायदा उठाकर लख-पति बन रहा था। एक दिन दो सौ किसान उसके दरवाजे पर इकट्ठे हुए और उससे उधार अन्न माँगने लगे। जमीन्दार बिगड़ा। उन्हें गालियाँ दीं, दरवाजे पर से निकलवा दिया और फाटक लगा दिया। पेंग उसी रास्ते आ रहा था। उसे गुस्सा आया। उसने किसानों को उत्साहित किया और उसके अन्न के भंडार पर सब मिलकर जबर्दस्ती टूट पड़े। गाड़ियों पर लाद-लादकर उसका अधिकांश अन्न किसान लूट ले गये।

लूट तो हो गई, किन्तु, जब कानून की बारी आई, तो पेंग अपनी जान बचाने को फिर एक बार घर से निकल भागा। इस समय वह कुछ जवान हो चला था—वह जाकर फौज में भर्ती हो गया। पहले साधारण सिपाही, फिर क्रान्ति के रंग में रँगा।

१८ वर्ष की उम्र में पेंग कप्तान बना दिया गया। उसी समय वहाँ के गवर्नर को मारने का षड्यंत्र रचा गया। पेंग को ही यह काम सौंपा गया। पेंग एक बम लेकर राजधानी में पहुँचा और एक दिन रास्ते पर खड़ा उसकी बाट जोह रहा था कि वह निकला। पेंग ने बम फेंका, किन्तु,

बम फटा नहीं। गवर्नर बचा। पँग ने भी अपने को बचा लिया।

इसी समय डाक्टर सन-यात-सेन ने विद्रोह का झंडा उड़ाया और इस गवर्नर पर चढ़ाई की। पँग डाक्टर की सेना में आ गया। किन्तु, डाक्टर के ही काम से जब वह फिर राजधानी चांग्सा में लौटा, तो उसके साथियों ने उसे धोखा दिया, वह गिरफ्तार कर लिया गया और उसपर जो अमानुषिक अत्याचार हुए, उसका वर्णन उसी के मुख से सुनिये—

"प्रति दिन एक घंटा मुझे तरह-तरह से सताया जाता। एक रात मेरे पैर बाँध दिये गये और मेरे हाथों को पीठ के पीछे लेकर कस दिया गया। फिर मेरी कलाई में रस्सा बाँध-कर मुझे छत से लटका दिया गया। तब मेरी पीठ पर पत्थर के बड़े-बड़े टुकड़े रखे जाने लगे और जेलर वहाँ खड़ा ठोकरों से मुझे मारता और सब बातें प्रकट कर देने को कहता। क्योंकि मेरे खिलाफ उनके पास कोई गवाही नहीं थी। मैं बार-बार बेहोश हो जाता था।

इस तरह के अमानुषिक उत्पीड़न महीने भर चलता रहा। जब मार पड़ती, मैं सोचता, अब अगली बार सब कुछ कह दूँगा, किन्तु, अगली बार फिर पीटा जाता और ज़बान से कुछ बाहर नहीं निकलता। अन्त में उन्हें मुझे छोड़ देना पड़ा, क्योंकि कोई चीज भी वे मुझसे नहीं पा सके। एक जमाना वह भी आया, जब मैंने चांग्सा पर चढ़ाई की, उसे जीता और सबसे पहला काम यह किया कि जेल की उस कोठरी को ढहा दिया, जिसमें ये तकलीफें दी गई थीं। वहाँ से मैंने

सैकड़ों राजनीतिक कैदियों को भी मुक्त किया, जो मारपीट और भूख के कारण अर्धमृत बने हुए थे।"

खैर, जेल से छुटकारा पाते ही पेंग घर को लौटा और इस आशा से कि अपने मामा की उस लड़की से उसकी शादी हो जाय। किन्तु, वहाँ पहुँचकर उसने सुना, वह बेचारी चल बसी है।

पेंग ने फिर सेना में नाम लिखाया और पीछे हूनान और नानचांग के सैनिक विद्यालयों में भर्ती होकर फौजी स्नातक हुआ। अपनी योग्यता से उसे बढ़ते देर न लगी और १९२७ में, जब कि वह कुल २८ वर्ष का था, ब्रिगेडियर-कमाण्डर था और हूनान-भर के सैनिक उसे 'उदार' अफसर के नाम से पुकारते थे, जो अपने सैनिकों की कमिटी की सलाह से ही काम करता था।

जिस समय च्यांग-काई-शेक की वह सत्यानाशी नीति शुरू हुई, पेंग पर हाथ नहीं उठाया गया, क्योंकि वह सेना में बड़ा ही जनप्रिय था। किन्तु, आखिर यह कब तक रुका रहता? १९२८ में पेंग ने स्वयं विद्रोह किया और पिं-कियांग पर कब्जा कर पहली हूनान-सोवियत-सरकार की स्थापना की।

दो वर्षों के बाद ही "इस्पाती भाईचारा" के ८००० सैनिकों का वह नेता था, जो पीछे पाँचवीं लाल सेना के नाम से मशहूर हुआ। इन्हीं ८००० सैनिकों को लेकर उसने चांग्सा पर चढ़ाई की और ६०,००० की सेना को पराजित कर उसपर कब्जा किया। यह कब्जा १० दिनों तक रहा—पीछे जब जापानी, अँगरेजी और अमेरिकन लड़ाकू जहाजों के साथ नानकिंग की सरकार ने उसपर चढ़ाई की, तो उसे हट जाना पड़ा।

महा अभियान में पेंग-तेह-हुआई सबसे आगे चलने वालों

पहली लाल सेना का कमान्डर था। लाखों सेना की पंक्तियों को तोड़कर आगे बढ़ना, दुश्मन के प्रमुख स्थानों पर कब्जा करना और पिछली सेना से सम्बन्ध भी रखना, सबका श्रेय पंग को बहुत अंशों में दिया जा सकता है। इस अभियान की ६००० मील की यात्रा पंग ने प्रायः पैदल ही तय की—अपना घोड़ा तो वह घायलों को दे दिया करता था।

जीवन के इतने कशमकश से पार होने पर भी पंग के चरित्र में कहीं कटुता या रुखाई नहीं है। वह बड़ा आनन्दी और हँसोड़ जीव है और उसका स्वास्थ्य भी अच्छा है। हाँ, हफ्तों तक कच्चा गेहूँ और घास-पात खाने की वजह से उसका पेट कुछ कमजोर हो गया है।

वह सादगी से रहता है। सादा खाना खाता है। न तो सिगरेट पीता, न कोई नशा छूता। फुर्ती का तो वह अवतार है। पहाड़ियों पर वह खरहे की तरह सर-सा चढ़ जाता है और वहाँ से खड़ा होकर अपने सैनिकों से कहता है—बढ़े चलो, यारो! घुड़सवारी में भी उसे कमाल हासिल है। वह बहुत देर से सोता और बहुत ही सवेरे जगता है। वह मुश्किल से चार-पाँच घंटे रोज सोता है।

१६२६ में उसने एक मिडिल-स्कूल की लड़की से शादी की। क्रान्ति के दो वर्षों तक दोनों जुदा रहे, फिर १६२८ में मिले।

बच्चों से उसे बेहद प्रेम है। वह जहाँ रहता, कुछ बच्चे उसे घेरे रहते। इन बच्चों को बहुत ही [illegible] से वह रखता है और उनसे राजनीतिक गम्भीर विषयों पर भी बातें करता है। उसने बच्चों की 'बाल-सेना' बना रखी है। रसोई, अस्पताल, बिगुल, संदेश-वाहक के लिए भी उसने बच्चों की भर्ती की, जो बहुत ही काम के सिद्ध हुए हैं।

# लाल कुम्हार

## ( सू-हाई-तुंग )

"हम एक लाख डालर इनाम देंगे, यदि तुम माओ-से-तुंग या सू-हाई-तुंग को मारकर हमारी सेना में भर्ती हो जाओ। किसी भी 'लाल डाकू' को मारकर आओ और हमसे खूब इनाम पाओ।"

ऐसी घोषणा के पर्चे हाल तक च्यांग-काई-शेक की ओर से लाखों की संख्या में हवाई जहाज से गिराये जाते थे। और, लोगों का कहना है कि सचमुच, लाल सेना के सेनापतियों में कोई भी उतना बदनाम या रहस्यमय नहीं, जितना यह सू-हाई-तुंग—लाल कुम्हार।

उसका जन्म हांकाऊ के निकट हांग्पी-सीन जिले में लगभग १९०० ई० में हुआ। पुश्त-दर-पुश्त से उसका परिवार कुम्हार का काम करता चला आया है। उसके बाबा ने कुछ जमीन खरीद कर खेती भी शुरू की थी, किन्तु, एक बार अकाल पड़ा और फिर वही चाक और डंडा। उसके पाँच भाई पिता के साथ हांग्पी में बर्तन बनाने का काम करते और काफी पैसे कमाते। वे सब-के-सब निरक्षर भट्टाचार्य थे और हाई-तुंग को बचपन से ही प्रतिभाशील देखकर उसके पढ़ाने-लिखाने के लिए अपनी कमाई के कुछ पैसे बचाकर रखते।

सू का नाम स्कूल में लिखाया गया। स्कूल में ज्यादातर तो धनियों—जमीन्दारों और महाजनों—के लड़के ही पढ़ा करते। वे लोग सू को देखते ही आँख-भौं सिकोड़ने लगे। सू को न तो जूते थे और न साफ-सुथरे कपड़े। फिर वे इससे क्यों घृणा न करें और गालियाँ दें? जब इन गालियों की नालिश सू मास्टर से करने आता, तो मास्टर इसे ही पीटता!

जब चौथे दर्जे में वह पढ़ रहा था, एक बार स्कूल में अजीब लड़ाई हुई। सू ने सभी गरीबों के लड़कों को संगठित किया और धनियों के लड़कों से जमकर मोर्चा लिया। इस लड़ाई में स्वभावतः ही धनियों की हार हुई, यद्यपि उनकी संख्या कहीं अधिक थी। एक धनी लड़के का सिर सू के हाथ के पत्थर के टुकड़े से कट गया। वह दौड़ा गया और बाप से फरियाद की। उसका बाप आया और बिना जाँच-पड़ताल किये, इस 'नीच खान्दान के जने' को मारना शुरू किया। जब यह घटना मास्टर को मालूम हुई, उसने भी सू को खूब पीटा। उस समय सू जो स्कूल से बाहर हुआ, फिर न लौटा। उसे विश्वास हो गया, स्कूल भी धनी लोगों के बच्चों के लिए हैं—गरीबों की उनमें गुजर कहाँ?

वह अपने खान्दानी पेशे में लगा। पहले तो मुफ्त में ही काम करता रहा, पीछे तो, जब वह १६ वर्ष का था, पूरा कारीगर बन चला और सभी कुम्हारों से ज्यादा तनख्वाह पाता। 'जल्द-से-जल्द बर्तन बनाने में मेरा मुकाबला चीन में कोई नहीं कर सकता, इसलिए इस जद्दोजहद के बाद मैं अपने देश का एक उपयोगी नागरिक सिद्ध होऊँगा'—सू आज भी हँसते-हँसते कहा करता है।

अपने उस जमाने की एक और कहानी सू कहा करता है। एक बार एक नाटक-मंडली आई और उसने खेल दिखाना शुरू किया। उस खेल में रईसों की बीबियाँ भी तमाशा देखने आई थीं। जो मजदूर नाटक देखने गये थे, वे उनकी अजीबो-गरीब सूरतों पर, उत्सुकता-वश, घूर-घूरकर नजर डालते। रईस-जादियों ने इसे अपनी तौहीनी समझी और पुलिस को हुक्म हुआ कि उन गुस्ताखों को मार निकाला जाय। मजदूर भी डट गये, बड़ी मार हुई। दूसरे दिन बर्तन के उस कारखानेदार ने, जिसमें सू काम करता था, उन साहबजादियों को अपने यहाँ निमंत्रित करना और उनके सम्मान में आतिशबाजियाँ करके उनके रात के अपमानित हृदयों को तसल्ली दिलाना चाहा। इसके खर्च के लिए उसने मजदूरों पर ही चंदा बिठाया। सू ने सभी मजदूरों को संगठित किया और चन्दा देने से साफ इन्कार कर दिया—यह भी कह दिया कि अगर मुशाहरे से काटा गया, तो हम हड़ताल करेंगे। कारखानेदार का होश दुरुस्त हुआ—उसने यह झंझट छोड़ दी। सू ने भी संगठन का महत्त्व समझा।

जब २१ वर्ष का था, एक घरेलू झगड़े की वजह से सू ने घर छोड़ दिया और हांकाओ आया। हांकाओ से भी आगे बढ़ा और कियांग्सी पहुँच एक वर्ष तक चाक चलाता रहा। वहाँ काफी बचाकर वह लौटने की बात सोच ही रहा था कि उसे हैजा हो गया और जो कुछ बचाया था, इलाज में खर्च हो गया। अब वह खाली हाथ क्या लौटे, फौज में भर्ती हो गया, क्योंकि उसने सुन रखा था, उसमें काफी पैसे मिलते हैं। उसका मुशाहरा कुछ डालर महीना ठीक हुआ, किन्तु, पैसे को अक्सर यहाँ भी उसे विदाई ही मिलती थी। इसी समय दक्षिण

में क्रान्तिकारी आन्दोलन बढ़ रहा था और साम्यवादी प्रचार सू की सेना में भी घुसने लगा था। उसकी सेना के कुछ आदमियों को इसी अपराध में फाँसी भी हो गई। तब वह इसकी ओर उत्सुकतावश ध्यान देने लगा। चूँकि उसकी यह सेना एक खानगी युद्ध-देवता की सेना थी, इसलिए वह इसे छोड़कर भाग चला और कान्तन पहुँचकर कुओ-मिन्-तांग की चौथी सेना में भर्ती हो गया। १९२७ में उसे उस सेना में छोटा-कमाण्डर का पद मिल चुका था।

इसी १९२७ में वह सत्यानाशी गृह-युद्ध शुरू हुआ। सू गरीब खान्दान का था, धनियों के चोंचले और गरीबों की विपता का जानकार उससे बढ़कर कौन था—उसने साम्य-वादियों का साथ दिया। सेना छोड़कर अपने घर भाग आया और वहाँ साम्यवादी पार्टी की शाखा खोलकर उसके संगठन में लग गया।

जब पार्टी की हालत डँवाडोल हो गई और उसके नेता किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो अपने सरों की रक्षा के लिए लुकने-छिपने लगे, सू-हाई-तुंग ने सोवियत के दूसरे संस्थापकों की तरह, दूसरी ही राह पकड़ी। उसने अकेले कुछ करने का सोचा। उसने अपने कुम्हार-भाइयों का संगठन किया और संगठन किया कुछ स्थानीय किसानों का और उनमें से लोगों को लेकर उसने हुपे की प्रथम लाल सेना की नींव डाली। शुरू में उस सेना में कुछ १७ सैनिक थे, एक रिवाल्वर थी और कारतूस कुल आठ।

इसी छोटी सेना का विकास आखिर १९३२ में चौथी मोर्चा-लाल-सेना के रूप में हुआ, जिसमें साठ हजार सैनिक थे और जिसकी छत्रछाया में हुपे-आन्ही-होनान की सोवियत कायम

हुई, जो आकार में कियांग्सी से कुछ ही छोटी, किन्तु तो भी, आयरलैण्ड के बराबर थी। इस सोवियत को भी अपने डाकखाने थे, बैंक थे, टकसाल-घर था, सहयोग-समितियाँ थीं, कारखाने थे, जिनका संचालन एक निश्चित योजना पर होता था।

कियांग्सी की तरह इस सोवियत को भी नष्ट करने के लिए च्यांग-काई-शेक ने कुछ उठा नहीं रखा। वहाँ भी पाँच बार बड़ी-बड़ी चढ़ाइयाँ की गईं। चार को तो पराजित कर दिया गया, किन्तु, पाँचवीं का बोझ नहीं बर्दाश्त कर, कियांग्सी की ही तरह, वहाँ से हटने की तैयारी की गई और जिस समय माव-से-तुंग अपने दलबल के साथ जेचुआन पहुँचा, ये लोग भी वहाँ उनसे जा मिले। दोनों के सम्मिलन से आनन्द और उत्साह की ही वृद्धि नहीं हुई, लाल सेना की शक्ति भी बढ़ गई और दोनों एक होकर शेन्सी पहुँचे।

निःसन्देह लाल सेना के जितने सेनापति हैं, उनमें सबसे वर्ग-जाग्रत व्यक्ति—व्यवहार में, सूरत-शकल में, बातचीत में—सू-हाई-तुंग समझा जाता है। हो-लंग के सिवा जितने सेनापति हैं प्रायः सभी मध्यवर्ग से, धनी किसान-खान्दान से या बुद्धि-जीवी वर्ग से आये हैं। सू इस नियम का पूर्ण अपवाद है। अपने को गरीब-खान्दान का होने का उसे गर्व है और उसका सच्चा विश्वास है कि चीन के गरीब बड़े ही दयालु, साहसी, निस्वार्थी और ईमानदार होते हैं। अपनी दुस्साहसिकताओं का श्रेय वह इसी गरीबी को देता है और चूँकि उसकी सेना गरीबों से बनी है, वह कहा करता है, हमारा एक लाल सैनिक किसी भी सुफेद सेना के पाँच सैनिकों के बराबर है।

उसका उत्साह, उसका घमंड कभी-कभी बचपन-सा

मालूम होता है, किन्तु, शायद यही वह रहस्य है जिसके चलते उसकी सेना उसपर जान देती है। अपनी सेना पर उसे बहुत ही घमंड है—व्यक्तिगत अच्छाइयों की दृष्टि से या चतुर सैनिकों की दृष्टि से, अच्छे घुड़सवारों की हैसियत से या सच्चे क्रान्तिकारियों की हैसियत से—वह अपनी सेना को अनुपम समझता है। अपने सहायक सेनापतियों पर भी उसको कम फख नहीं—जिनमें दो तो उसी की तरह कुली के बेटे हैं, जिनमें एक की उम्र कुल २१ वर्ष की ही है, किन्तु, ६ वर्षों से वह साम्यवादी पार्टी में काम कर रहा है।

शारीरिक शक्ति की सू बड़ी ही कद्र करता है। और, इस बात का उसे अफसोस होता है कि आठ गहरे घावों ने उसकी इस शक्ति में थोड़ी कमी कर दी है। उसके दोनों पैर, दोनों हाथ, छाती, कन्धा और चूतड़ गोलियाँ खा चुके हैं और एक गोली तो उसके सर में आँख के थोड़ा ही ऊपर लगी और कान के निकट से निकल गई। इतना होने पर भी वह एक ऐसा ताजा किसान-छोटा मालूम होता है, जिसने धान के खेत से तुरत-तुरत आकर फौज में नाम लिखाया हो। वह न तो सिगरेट पीता, न शराब छूता है। दुबला है—किन्तु उसके अंग-अंग गठे हुए हैं।

उसके ऊपर के दाँत बिल्कुल गायब हैं। एक बार वह घोड़े पर उसे दौड़ते जा रहा था कि घोड़े की अगली टाप एक सैनिक को लग गई। उसने जोर से जाते हुए घोड़े को एकाएक रोककर उस सैनिक की सुधि लेना चाहा कि घोड़ा बिगड़ गया और जोरों से उसे एक पेड़ पर पटक दिया। दो हफ्ते तक तो सू बिल्कुल बेहोश रहा—जब होश हुआ, तो देखा, उसके ऊपर के दाँत गायब हैं!

"देखिये, कहीं फिर न चोट खा जाइये"—एक विदेशी पत्रकार ने उससे हँसते हुए कहा।

"आप इतमीनान रखें—बचपन से ही इतनी चोटें सहता आया हूँ कि अब इसकी परवाह नहीं रह गई।"—इतना कह, वह ठहाका मारकर हँस पड़ा।

यों तो चीनी सोवियत में कोई ऐसा नेता नहीं, जिसका कोई न कोई निकटतम और प्रियतम व्यक्ति इस यज्ञ में बलि नहीं चढ़ा हो। किन्तु, जैसा बलिदान सू को करना पड़ा है—वह तो चीन ही क्या, संसार के इतिहास में शायद अनुपम है।

च्यांग-काईशेक ने हुक्म दे रखा था कि जिस किसी का नाम 'सू' से शुरू होते देखो, उसे कत्ल कर दो। सू के ६६ कुटुम्बियों को खत्म किया गया—उनमें २७ तो उसके नजदीक के सम्बन्धी थे और ३६ दूर के रिश्तेदार। ह्वांगपी में एक आदमी को भी नहीं छोड़ा गया, जिसका नाम 'सू' से प्रारम्भ होता था। बूढ़े, नौजवान, स्त्री-पुरुष, लड़के, दूध-मुँहे बच्चे किसी से रियायत नहीं की गई। सू के खान्दान के १३ आदमी ह्वांगपी छोड़ लिहसियांग भाग कर जान बचाने पहुँचे। वहाँ भी उन्हें पकड़ा गया—पुरुषों को फाँसी हुई, स्त्री और बच्चे को गोली मार दी गई।

सू के पाँच भाइयों में केवल एक बच रहा है। दुष्टों ने उसकी स्त्री को भी नहीं छोड़ा। उसे पकड़कर ले गये और न जाने उस बेचारी पर क्या बीती। खबर उड़ी थी कि वह रंडी की तरह एक सौदागर के हाथ बेच दी गई!

---

# डाकुओं का नेता

## ( हो-लुंग )

हाँ, जिसने एक छुरे के जोर से हूनान में सोवियत स्थापित की, वह हो-लुंग कभी डाकुओं का नेता था !

किन्तु, क्या उसके लोगों को डाकू और उसे डाकुओं का नेता कहना भी, इस शब्द के सही अर्थ में, ठीक है ?

चीन में एक गुप्त संस्था है, जिसे "बड़े भैया की पंचायत" कहते हैं। इसकी शाखायें चीन की दिहातों में हर जगह है। उसका पिता इस संस्था का लीडर था। हो-लुंग को नेतृत्व उसके पिता से विरासत के रूप में मिला।

हो की वीरता की कहानी बचपन से ही उसके प्रान्त भर में फैली थी। कहा जाता है कि एक बार उसके पिता ने कुछ अतिथियों को बुलाया, उन्हें भोज दिया। खाते समय गप करते-करते उसने अपने बेटे की भूरि-भूरि प्रशंसा की। अतिथियों में से एक को इसकी जाँच की सूझी। जिस टेबुल पर बैठकर ये लोग खाते और बात कर रहे थे, उसने उसके नीचे अपनी बन्दूक का मुँह करके गोली दाग दी। भयानक विस्फोट हुआ। किन्तु, हो-लुंग की पलकें तक नहीं गिरीं।

पिता की मृत्यु के बाद उनके दल का वह नायक हुआ— जो निस्सन्देह सशस्त्र सैनिकों की एक जबर्दस्त टोली थी। उसकी सेना की ताकत और उसकी वीरता की धाक सारे

ओर फैल रही थी। जिस समय साम्यवादी और राष्ट्रवादी मिलकर चीन के पुनर्जीवन का प्रयत्न कर रहे थे, यह आवश्यक समझा गया कि हो-लुंग को भी इसके पक्ष में किया जाय।

हो के एक दूर के रिश्तेदार को अन्य प्रमुख कर्मियों के साथ उसके पास भेजा गया। उस समय वह एक ऐसे हल्के में था, जिस होकर धनी अफीम बेचनेवालों के झुंड यूनान से हांकाओ आते-जाते थे। हो की सेना लूट-पाट नहीं करती, उनसे टिकस वसूल करती। हो अपने सैनिकों को न तो बलात्कार की ओर प्रवृत्त होने देता, न अफीम पीने देता।

इस डेपुटेशन से हो मिला। तीन सप्ताह तक बातें होती रहीं। हो ज्यादा पढ़ा-लिखा नहीं था—किन्तु, दुनियादारी समझने की शक्ति उसमें कम नहीं थी। क्रान्ति और उसके द्वारा चीन का पुनर्जीवन क्या चीज है—उसको समझते देर नहीं लगी। अपनी सेवाओं को इस शुकार्य में लगाने के लिए वह ललक उठा। किन्तु, वह हर चीज पर ब्यौरेवार बात करता रहा और अपनी सेना की पूरी रजामन्दी लिये बिना राजी नहीं हुआ।

राजी हो जाने पर उसकी फौज को आधुनिक फौजी शिक्षा दी गई और क्रान्ति के सिद्धान्तों का भी चलता ज्ञान दे दिया गया। फौज में वृद्धि भी की गई। यह फौज कुओ-मिन्-तांग का एक अंग समझी जाने लगी।

यह १९२५ की बात है। १९२७ तक हो साम्यवादी पार्टी में शामिल नहीं हुआ था। उसकी ज्यादा सहानुभूति वूहान की गरमदली कुओ-मिन्-तांग की शाखा से ही थी। किन्तु, जब नानचांग के अगस्त-विद्रोह के बाद न केवल साम्य-

वादियों का, वरन् किसानों, मजदूरों, साधारण जनता का घोर दमन किया जाने लगा और जमीन्दारों की हिमायत की जाने लगी, तो हो का खून खौल उठा—गरीब किसान-खान्दान का खून! क्योंकि, उसका खान्दान बड़े गरीब किसानों का था और गरीबी ने ही उसके पिता को इस पेशे में आने को बाध्य किया था।

हो-लुंग ने भी बगावत का झंडा उड़ाया। किन्तु, जैसी कि दूसरे लाल सेनापतियों की हालत हुई, पहले उसे बार-बार हारना पड़ा। आखिर, बातें यहाँ तक आईं कि उसे छिपकर हांगकांग भाग जाना पड़ा, जहाँ से लुकते-छिपते शांघाई पहुँचा और वहाँ से किसी तरह फिर अपने प्रान्त हूनान में आ रहा।

यहीं वह घटना हुई, जिसके बारे में कहा जाता है कि हो ने एक छुरे की मदद से हूनान की सोवियत कायम की।

१६२८ का प्रारम्भ था। हो एक गाँव में छिपा "बड़े भैया की पंचायत" के सदस्यों से सलाह-मशविरा कर रहा था कि वहाँ टैक्स वसूल करनेवाले अफसर सदलबल आ पहुँचे। हो ने इस मौके को जाने नहीं दिया। अपने साथियों को लेकर उनपर धावा बोल दिया और अपने छुरे से उसने टैक्स-कलक्टर को मार डाला और उसके साथियों को घायल किया। फिर, उसके सशस्त्र संरक्षकों पर चढ़ दौड़ा—वे बेचारे घबराकर भागे। उनमें से कितने को मारा और सब-के सब हथियार छीन लिये। इन हथियारों से उसने अपनी पहली किसान-सेना कायम की।

जिस समय १६३५ में वह हूनान की सोवियत भूमि को छोड़कर माव के महा अभियान की राह चला, उसके पास

४०,००० की लाल सेना थी। उसकी इस सेना को कियांग्सी की लाल सेना से भी ज्यादा मुसीबतें उठानी पड़ीं। हजारों पहाड़ों की बर्फीली चोटियों पर गल मरे, हजारों नानकिंग के हवाई बमगोलों के शिकार हो गये। भूखों तड़पकर मर जानेवालों की तायदाद भी कुछ कम नहीं थी। किन्तु, हो-लुंग के व्यक्तित्व में कुछ ऐसा चुम्बक है कि उसके आदमियों ने उसका साथ छोड़ने की अपेक्षा मौत को वरण करना ज्यादा अच्छा समझा। हो का प्रभाव चीन की देहात के कोने-कोने में है—अतः, वह जिस रास्ते से जाता, लोग उसकी मदद करते, रास्ते में बहुत लोग उसकी सेना में भी भरती होते। अन्त में वह तिब्बत की पूर्वीय सीमा के निकट पहुँचा, जहाँ चू-तेह से उसकी भेंट हुई। उस समय उसके पास कुल २०,००० सैनिक बच गये थे—वे भी भूखे पेट, नंगे पैर, फटे हाल। कई महीनों तक चू-तेह के साथ वहीं विश्राम कर फिर दोनों शेन्सी कान्सू के लिए रवाना हुए।

हो-लुंग की उम्र इस समय पचास वर्ष से ज्यादा की है। किन्तु, उसका स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक है। वह काफी लम्बा और तगड़ा है और उसकी ताकत शेर की-सी है। वह कभी थकता नहीं। अपने महा अभियान में वह कितने घायलों को रास्ते में खुद ढोता था। आज की क्या बात, जिस समय वह कुओ-मिन्-तांग की सेना का सेनापति था, तोभी वह बहुत सादगी से रहता था।

वह अपनी व्यक्तिगत चीजों या सुख-सुविधाओं की जरा भी चिन्ता नहीं करता। हाँ, घोड़ों की उसे बड़ी चिन्ता रहती है। वह उन्हें प्यार करता है। एक बार एक बड़े खूबसूरत घोड़े को वह बहुत मानने लगा था। दुश्मन की

सेना ने उस घोड़े को पकड़ लिया। उसे वापस लाने के लिए उसने उस सेना पर चढ़ाई की और घोड़ा वापस लाकर ही दम लिया।

यों तो वह तेज स्वभाव का है, किन्तु, है बड़ा विनयी। जिस समय से वह साम्यवादी पार्टी में शामिल हुआ, वह पार्टी के अनुशासन को बड़ी श्रद्धा से पालन करता है और एक बार भी उसका भंग आज तक नहीं किया। वह आलोचनाओं को आमंत्रित करता और बड़ी सावधानी से सलाहों को सुनता है।

उसकी बहन उसी की तरह है—लम्बी, बड़े-बड़े पैरों वाली। युद्ध में लाल सेना का वह संचालन तक करती है और घायलों को कन्धे पर ढोने से नहीं झिझकती। हो की पत्नी भी ऐसी ही है।

हो की धनियों के प्रति घृणा चीन भर में मशहूर है। कहा जाता है कि धनियों को जब यह मालूम होता कि हो यहाँ से ७०–७५ मील दूर है, तभी वे घर छोड़कर भाग जाते, भले ही नानकिंग की सेना उनकी रक्षा का वचन दे और मुस्तैद हो। उसकी तेज चाल और दुर्दर्ष धावे के सभी कायल हैं।

# शांघाई का विद्रोही

## ( चाउ-एन-लाइ )

सोवियत चीन में चाउ-एन-लाइ बुद्धिजीवी लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। च्यांग-काई-शेक ने उसके सिर पर ८०,००० डालर का इनाम घोषित कर रखा था।

बड़े प्रभावशाली खान्दान का लड़का। बाबा मांचू-राज्य के एक बड़े ओहदेदार। बाप एक प्रतिभाशाली शिक्षक। माँ सुशिक्षिता। चाउ बचपन से ही अपनी योग्यता और साहित्यिक रुचि का परिचय देने लगा। किन्तु, उसके देश की परिस्थिति की आँधी ने उसे उसके मतानुकूल राह से घसीट कर कहाँ पर रख दिया!

पहले एक मिडल स्कूल में पढ़ा, फिर विश्वविद्यालय में नाम लिखाया। यह अमेरिकन पादरियों का विश्वविद्यालय था। वहीं उसने अंगरेजी सीखी। तेज विद्यार्थी होने के कारण उसे प्रायः ही स्कॉलरशिप मिला की। पढ़ ही रहा था कि १६१६ में विद्यार्थियों का विद्रोह शुरू हुआ। चाउ अपने विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों का नेता बना, गिरफ्तार हुआ, जेल में ठूँसा गया। उस समय उस विद्रोह में एक विद्यार्थिनी ने उसका बड़ा साथ दिया था। आज वही उसकी पत्नी और संगिनी है।

जेल से छुटकारा पाकर चाउ फ्रांस गया। महायुद्ध के बाद योरप में साम्यवाद की जो धूम थी उससे प्रभावित हो उसने पेरिस में एक चीनी साम्यवादी पार्टी संगठित की। उसी समय चीन में जो साम्यवादी पार्टी बनी, उसके

संस्थापकों में भी उसकी गिनती की जाती है। दो वर्ष तक पेरिस में पढ़ा, कुछ महीने इंगलैण्ड में रहा और फिर जर्मनी में एक वर्ष तक अध्ययन किया। १९२४ में जब वह चीन लौटा, उसने डा० सन-यात-सेन से कान्तन में भेंट की। डा० सन इसकी योग्यता पहचान गये। थोड़े ही दिनों में वह कान्तन के प्रमुख राजनीतिक पुरुषों में गिना जाने लगा और ज्योंही वाम्पा में सैनिक-विद्यालय खुला, वह उसका सेक्रेटरी बना दिया गया। उस समय उसकी उम्र कुल २६ वर्ष की थी।

वाम्पा-सैनिक-विद्यालय का सेक्रेटरी होना कोई छोटी बात नहीं थी। वह यही सैनिक विद्यालय है, जिससे निकले लोगों ने चीन में क्रान्ति की और जिनमें से बहुत लाल सेना के प्रमुख सेनानायक बने। आज रूस की सोवियत की पूर्वीय सेना के जो अध्यक्ष हैं, वह जनरल ब्लूखर साहब उस विद्यालय के रूसी सलाहकार नं० १ थे। चाउ ब्लूखर के विश्वास-पात्रों में था। उसे इस पद पर देखकर च्यांग-काई-शेक जलता था, किन्तु, यह चाउ की योग्यता और प्रभाव था जिससे बाध्य होकर उसे चुप्पी साधना पड़ता था।

जिस समय १९२५, २६, २७, में कुओ-मिन्-तांग और साम्यवादी-पार्टी के सम्मिलित प्रयत्न से उत्तरी सैनिक अभियान च्यांग-काई-शेक की अध्यक्षता में शुरू किया गया, चाउ को हुक्म दिया गया कि वह शांघाई में जाकर वहाँ विद्रोह कराने की तैयारी करे, जिसमें राष्ट्रीय सेना उसपर अपना कब्जा जमा सके। चाउ २८ वर्ष का नौजवान था, उसे कोई बाजाब्ता सैनिक शिक्षा भी नहीं मिली थी, मजदूरों की स्थिति और मनोदशा से भी वह परिचित नहीं था, क्योंकि, वह धनी बाप का बेटा था और मजदूरों में कभी काम किया नहीं

था, उसे कोई सलाह देनेवाला भी नहीं था। किन्तु, तो भी चाउ हृदय में विश्वास लेकर शांघाई पहुँचा—विश्वास था उसे अपने क्रान्तिकारी निश्चय पर और अपने गहरे साम्यवादी ज्ञान पर।

तीन महीने के अन्दर वहाँ के छः लाख मजदूर एक संगठन-सूत्र में बँध गये और एक आम हड़ताल की घोषणा की गई। हड़ताल तो पूरी रही—किन्तु वह अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकी। क्योंकि, मजदूर निहत्थे थे और उन्हें यह भी मालूम नहीं था कि 'शहर पर कब्जा' कैसे किया जा सकता है। दूसरी हड़ताल हुई, वह भी इसी तरह असफल रही और इधर दमन का दौरदौरा शुरू हुआ—कितने मजदूरों के सर धड़ से अलग कर दिये गये। किन्तु, क्या इससे मजदूर डर सकते थे? जिनके कानों में क्रान्ति का मंत्र पड़ चुका था, इस संघर्ष और दमन ने उनमें और जंगी भाव ला दिये। पाँच हजार मजदूरों की स्वयंसेना तैयार की गई, जिसमें से दो हजार मजदूरों को चुपचोरी से सैनिक शिक्षा भी दी गई। किसी तरह कुछ हथियार भी—खासकर रिवाल्वर—इकट्ठे किये गये और ३०० हथियारबन्द मजदूरों की एक "फौलादी टोली" बना ली गई।

२१ मार्च १९२७ को फिर आम हड़ताल की घोषणा की गई। जितने कल-कारखाने या दूसरी तिजारत या सार्वजनिक काम थे, बन्द हो गये। संगठित और सुशिक्षित मजदूर सड़कों पर मोर्चेबन्दी कर डट गये। उन्होंने पहले थानों पर कब्जा किया, फिर शस्त्रागार पर, तब फौजी पड़ाव पर और इसके बाद तो विजय-ही-विजय! पाँच हजार मजदूर हथियार-बन्द हो गये, छः रेजीमेंट क्रान्तिकारी सेना तैयार हो गई

और "नागरिकों की सरकार" की डुगडुगी शहर भर में बज गई।

आधुनिक चीन के इतिहास में यह अपने ढंग का सर्वथा अनूठा फौजी कब्जा हुआ।

इसके कुछ ही दिन बाद च्यांग-काई-शेक पहुँचा, तो उसने पहले ही से विजय-दुन्दुभी बजती देखी। क्रान्तिकारी मजदूरों की सेना ने उसकी बड़ी खुशी से अगवानी की।

किन्तु, क्या च्यांग-काई-शेक मजदूरों की यह ताकत देख कर खुश हुआ? साम्यवादियों की इस विजय पर क्या वह सचमुच उल्लास में आया? नहीं—एक महीने के बाद ही उसने अपना केंचुल बदला और काला नाग-सा फुफकारने लगा। सबसे पहले उसने शांघाई के साम्यवादी नेताओं और वहाँ के मजदूरों पर ही हाथ साफ करना शुरू किया। एक शांघाई में ही उसने ५००० आदमियों को फाँसी पर लटकाया। चाउ-इन-लाइ की गिरफ्तारी के लिए इनाम की घोषणा की गई और उसके साथियों को पकड़-पकड़कर फाँसी पर झुला दिया गया। चाउ भी गिरफ्तार हो गया और उसे भी फाँसी देने का हुक्म हुआ। किन्तु, चाउ के पहरे पर जो कमान्डर था, वह वाम्पा-विद्यालय का विद्यार्थी रह चुका था। अपने पर खतरा लेकर भी उसने अपने सेक्रेटरी को जान लेकर भागने की सहूलियत कर दी।

चाउ भाग कर वूहान आया और वहाँ से चानचांग गया, जहाँ अगस्त-विद्रोह में उसने मदद की। वहाँ से चलकर वह स्वातान्नो पहुँचा और मजदूरों को संगठित कर उस शहर पर दस दिनों तक लाल झंडा फहराता रहा। किन्तु, जब विदेशी लड़ाकू जहाजों की सहायता से देशी फौज ने बेतरह घेरा डाला, तो वह वहाँ से भी निकल भागा और कान्तन में

आकर सुप्रसिद्ध कान्तन-कम्यून की स्थापना की।

कान्तन-कम्यून के पराजय के बाद चाउ को गुप्त रीति से काम करने पर बाध्य होना पड़ा। १९३१ में यह सुनकर कि कियांग्सी और फुकियन में सोवियत कायम हो गई है—वह वहाँ पहुँचा और प्रधान सेनापति चू-तेह का राजनीतिक सलाहकार बनाया गया। पीछे वह युद्ध-समिति का उपाध्यक्ष भी बना दिया गया।

महा अभियान में शांघाई के इस विद्रोही का बड़ा महत्त्व-पूर्ण हिस्सा रहा है। जब शेन्सी सोवियत में माव अपने साथियों के साथ पहुँचा और वहाँ जमकर अपने आदर्श की सिद्धि में लगा, तो चाउ को पूर्वीय सेना का कमान्डर-इन-चीफ बनाया गया।

चाउ धनी घर का लड़का है, किन्तु, उसने अपने को बिल्कुल साधारण जनता में खपा दिया है। वह दूसरे लाल सेनापतियों की तरह बहुत ही सादगी से रहता है—खाने, पीने, कपड़े, लत्ते की ओर कोई खास अनुरक्ति नहीं है। यद्यपि उसके नाम के साथ सैकड़ों कहानियाँ गुँथी हुई हैं—किन्तु, देखने में अभी वह बिल्कुल छोकरा-सा लगता है। छरहरा बदन, मध्यम ऊँचाई। दाढ़ी बढ़ी हुई, लम्बी—आँखें प्रेमल। कुछ लजीला-सा स्वभाव। व्यक्तित्व में चुम्बकत्व। काफी सुन्दर—अपने कालेज के जमाने में इससे नाटकों में स्त्री-पात्रों का काम लिया जाता था!

किन्तु, इतने पर भी अपने आदर्श के प्रति कितना दृढ़, अपने कर्त्तव्यों के प्रति कितना चौकस!

# सैनिक विद्यालय का अध्यक्ष

## ( लिन-पिआव )

सौ से ऊपर संग्रामों में जिसने नायकत्व किया और दस वर्षों तक जो लगातार युद्ध-भूमि में रहा है, किन्तु, जो न तो आज तक एक बार भी पराजित हुआ और न घायल—तीस वर्ष का वह युवक-शिरोमणि लिन-पिआव है, जो लाल सेना के सैनिक-विद्यालय के अध्यक्ष के पद को सुशोभित करता है और जिसके सिर पर च्यांग-काई-शेक ने एक लाख का इनाम बोल रखा था।

लिन-पिआव का जन्म हुपे प्रान्त में एक कारखानेदार के घर १६०८ में हुआ। उसके पिता की स्थिति भारी टैक्स देते-देते खराब हो चुकी थी, किन्तु, लिन-पिआव ने किसी तरह अपना अध्ययन जारी रखा और वह वाम्पा के सैनिक-विद्यालय में भी प्रवेश पा सका। विद्यालय में वह नामी विद्यार्थी था और रूसी जनरल ब्लूखर और खुद च्यांग-काई-शेक का विशेष कृपा-पात्र बनकर उसने सैनिक और राजनीतिक शिक्षा में बड़ी व्युत्पन्नता प्राप्त की थी। स्नातक होते ही वह कैप्टन बना दिया गया और जब वह कुल १६ वर्ष का था, तो १६२७ में कुओ-मिन्-तांग की चौथी सेना का नामी कर्नल था। उसके चन्द महीनों के बाद ही जब च्यांग-काई-शेक ने गृह-युद्ध शुरू किया, लिन-पिआव अपनी सेना के साथ निकल भागा और हो-लुंग की सेना से आ मिला। नानचांग के विद्रोह में लिन-पिआव का भी हिस्सा था।

१९३२ में लिन-पियाव को पहली लाल सेना का सेनापति बनाया गया, जिसकी ताकत २०००० राइफलों की थी। कुछ ही दिनों में यह लालसेना की सबसे भयंकर टुकड़ी हो गई। लिन की मोर्चाबन्दी-सम्बन्धी चतुराई का ही नतीजा था कि जब-जब नानकिंग की सरकारी सेनायें इसके खिलाफ भेजी गईं, उनकी बड़ी से बड़ी तायदाद होने पर भी उनको हराया और सत्यानाश में मिलाया गया। इसको खबर भर मिलनी चाहिये कि वे लिन की सेना से लड़ रहे हैं, फिर सरकारी सेना के सैनिकों के पैर स्थिर नहीं रह सकते थे—वे भाग ही खड़े होते।

दूसरे अनेक योग्य लाल सेनापतियों की तरह लिन कभी चीन से बाहर नहीं गया और वह सिवा चीनी भाषा के और कोई दूसरी भाषा भी नहीं जानता। किन्तु, कम उम्र में ही वह लाल क्षेत्रों में काफी मशहूर था और उसके लिखे लेख पार्टी के सैनिक मासिकपत्रों "कग-म-क-श" और "युद्ध और क्रान्ति" में ही नहीं छपते हैं, उनके अनुवाद जापानी और रूसी पत्र-पत्रिकाओं में भी छपा करते हैं। "छोटे धावे" के नाम से लाल सेना का जो युद्ध-कौशल आज संसार में प्रसिद्ध हो गया है, उसका पिता लिन को ही समझा जाता है।

इस व्यक्ति की महत्ता उस संस्था से ही प्रकट हो सकती है, जिसका यह अध्यक्ष है।

शायद दुनिया में उच्च सैनिक-शिक्षा की यह एकमात्र संस्था है जिसके क्लास-रूम कंदराएँ हैं, जहाँ कुर्सी और डेस्क के बदले पत्थर और ईंट से लिये जाते हैं, जिसका ब्लैक बोर्ड खुरदरे पत्थर और चिकनी मिट्टी है, जिसकी इमारत पूरी-

की-पूरी बम-प्रूफ है और जहाँ कागज की कमी के कारण दुश्मन-द्वारा गिराये हुए नोटिस की पीठ पर ही लिखाई-पढ़ाई होती है। और, खर्च के लेहाज से भी जो अद्वितीय है—प्रति विद्यार्थी कुल १५ डालर माहवार खर्च है। फिर, इसमें जो विद्यार्थी हैं, क्या उनकी जोड़ के विद्यार्थी संसार में आसानी से मिलेंगे ? उनकी औसत उम्र २७ वर्ष है, किन्तु औसतन आठ वर्ष के युद्ध का अनुभव एक-एक विद्यार्थी को प्राप्त है !

ये कन्दरायें आज से हजारों वर्ष पहले वहाँ के जमींदारों और युद्ध-देवताओं ने बनवाये थे, जिनमें अन्न का अम्बार लगाकर वे बाढ़, चढ़ाई या अकाल के जमाने में निश्चिन्त सो सकते थे। एक-एक गुफायें इतनी दूर तक काटी गई हैं कि उनमें सैकड़ों आदमी मजे में रह सकते हैं। लाल सेना को—जिसके सिर पर च्यांग-काई-शेक के हवाई जहाज़ दिन-रात मँडराते और बम बरसाते रहते—अपने सैनिक विद्यालय के लिए ऐसी बढ़िया इमारत दूसरी जगह कहाँ मिल सकती ?

इस विद्यालय में चार दर्जे हैं और कुल मिलाकर ८०० विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। इसमें चीन का हर नौजवान या नवयुवती भर्ती हो सकते हैं, जिसकी उम्र १६ से २८ वर्ष की हो और जो जापान को अपने देश से भगाने और राष्ट्रीय क्रान्ति के समर्थक हों—वे किसी वर्ग के हों और चाहे उनकी सामाजिक और राजनीतिक धारणायें जो कुछ हों। विद्यार्थी का शरीर स्वस्थ होना चाहिये, उसे कोई छूत की बीमारी न हो और उसमें कोई बुरी आदत न हो।

पहला दर्जा बटालियन, रेजिमेन्ट या डिविजन के कमाण्डरों का है—यानी, इसमें सैनिक अफसरों को ऊँचे दर्जे की शिक्षा दी जाती है। सैनिक शिक्षा के साथ राजनैतिक शिक्षा भी दी जाती है और चार महीने का कोर्स है। लाल सेना के हर अफसर को दो वर्ष तक युद्धभूमि में रहने के बाद चार महीने की शिक्षा लेना अनिवार्य रखा गया है।

दूसरे और तीसरे दर्जे में मिड्ल पास नवयुवकों, बेरोजगार शिक्षकों, स्वयं-सैनिक-दल के अफसरों, और मजदूर एवं किसान-संघ के पदाधिकारियों को सैनिक शिक्षा दी जाती है। पैदल सेना की टुकड़ियों के नायकों को भी इन्हीं दर्जों में शिक्षित किया जाता है। छः महीने के कोर्स इन दोनों दर्जों के हैं।

चौथा दर्जा खासकर सैनिक इंजीनियरों, घुड़सवारों और तोपचियों के लिए है।

इस विद्यालय में भर्ती होने के लिए चीन के सभी हिस्सों से आवेदन-पत्र आते रहते हैं। किन्तु, मुश्किल यह है कि उनका वहाँ तक पहुँचना आसान नहीं। किन्तु, तोभी बड़े-बड़े यत्न से, अधिकारियों को चकमे में रखकर, साहसी नौजवान पहुँचते ही रहते हैं।

इस विद्यालय का सैनिक कोर्स है—जापान से युद्ध होने पर किस युद्ध-प्रणाली से काम लिया जायगा ; चकमे की लड़ाई किसे कहते हैं, स्वयं-सैनिक-दल का संगठन और युद्ध-प्रणाली कैसी और क्या होनी चाहिये—परेड, निशानेबाजी, नकली युद्ध आदि की शिक्षा तो है ही। सैनिक कोर्स के साथ राजनीतिक कोर्स में इन बातों पर प्रकाश डाला जाता है—

राजनीतिक ज्ञान, चीनी क्रान्ति की समस्यायें, प्रजातंत्र के नीति-सम्बन्धी सवाल, लेनिन के सिद्धांत, जनतंत्र का ऐतिहासिक आधार, जापान की राजनीतिक और सामाजिक शक्तियाँ। इन कोर्सों की किताबें तैयार की गई हैं और सोवियत सरकार ने खुद उन्हें छपवाया है।

लिन-पिआव की आत्मा की छाप विद्यालय के जर्रे-जर्रे पर पड़ी हुई है !

---

# स्वरूप

# सोवियत-समाज

मार्क्स और लेनिन ने सोवियत-समाज की जो कल्पना की, उसका रूप चीनी सोवियत में देखना एक व्यर्थ प्रयास होगा। उसके दो कारण हैं—एक तो, अभी चीन में सोवियत को स्थायित्व नहीं प्राप्त हो सका है, अभी तो वह निर्माण के काल में है, जब कि पद-पद पर अपने अस्तित्व के लिए ही उसे भीषण संघर्ष करना पड़ रहा है। दूसरे, चीन के जिस हिस्से में सोवियत कायम है, वहाँ कल-कारखानों का पहले नाम तक नहीं था—जिसे सर्वहारा मजदूर कहते हैं, वहाँ उनकी पैदाइश भी नहीं हुई थी और न उत्पादन में वृद्धि करने के साधन प्राप्त थे। चीन अधिकांश में खेतिहर देश है और वहाँ की सोवियत को किसानों पर ही निर्भर करके एक नया समाज बनाना था।

इसलिए चीन के साम्यवादियों को मार्क्स के इस सुप्रसिद्ध सिद्धान्त-वाक्य—"सबसे योग्यता के अनुसार और सबको आवश्यकता के अनुसार"—को एक तरफ रखकर डा० सन-यात-सेन के 'जो जोते उसकी जमीन" को ही सबसे पहले कार्यरूप में परिणत करना पड़ा। हाँ, उसमें साम्यवादी पुट जरूर रही और जो कोई जरा गहरा देखेगा, वह पायेगा कि वहाँ एक साम्यवादी समाज अंकुर ले रहा है और यदि अनुकूलता मिली तो वह विशाल वट-वृक्ष के रूप में परिणत होकर ही रहेगा।

चीनी सोवियत ने जो आर्थिक नीति अख्तियार की, उसमें चार बातें थीं—जमीन का फिर से बँटवारा, सूदखोरी का अन्त, टैक्सों के बोझ को दूर करना और सुविधा-प्राप्त

समूहों का खात्मा। एक बच्चा भी देख सकता है कि यह अर्थ-नीति प्रमुखतः किसानों से ही सम्बन्ध रखती है।

किन्तु, सिद्धान्ततः तो सोवियत मजदूरों और किसानों की सरकार को कहते हैं। अतः, देहातों में भी एक मजदूर-वर्ग की सृष्टि करने की कोशिशें की गई हैं। देहाती आबादी को कई हिस्सों में बाँटा गया—बड़े जमीन्दार, मध्यम और छोटे जमीन्दार, धनी किसान, मध्यम किसान, गरीब किसान, हरजोता किसान, खेत-मजदूर, कारीगर मजदूर, सर्वहारा मजदूर, और एक पेशेवर समूह—जिसमें शिक्षक, डाक्टर, विशेषज्ञ और देहाती बुद्धिजीवी-वर्ग को रखा गया। ये विभाग आर्थिक ही नहीं, राजनीतिक भी थे और सोवियत के चुनाव में हर-जोता किसान, खेत-मजदूर आदि वर्गों को प्रधानता देकर एक तरह से 'देहाती सर्वहारा' का एकाधिपत्य कायम करने की कोशिश हुई।

ग्राम-सोवियत, जिला-सोवियत, डिविजन-सोवियत, प्रान्त-सोवियत और अन्त में केन्द्रीय सोवियत—सोवियत-सरकार के ये विभाग हैं। ग्राम सोवियत आदि-संस्था है और उसीसे चुनकर ऊपर की सोवियतों में तथा सोवियत-कांग्रेस में प्रतिनिधि जाते हैं। १६ वर्ष की उम्र से ऊपर के सभी बालिगों को मताधिकार प्राप्त है—किन्तु, जैसा कि ऊपर बताया गया है, सबको समान सुविधा नहीं है।

जिला-सोवियत के अन्दर बहुत-सी कमिटियाँ हैं। ज्योंही किसी जिले पर सोवियत-सरकार का कब्जा होता है, एक सार्वजनिक सभा में पहले एक सर्वशक्तिमान अस्थायी कमिटी बना ली जाती है, जो साम्यवादी पार्टी से मिलकर पीछे चुनाव कराती और दूसरे कामों का अंजाम देती है। चुनाव के बाद

जिला-सोवियत अनेक कमिटियाँ बनाती हैं—शिक्षा, को-आपरेटिव, सैनिक शिक्षा, राजनीतिक शिक्षा, ज़मीन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, स्वयंसैनिकों की शिक्षा, रक्षा, लाल सेना की सहायता, किसानों की पारस्परिक सहायता, लाल सेना की जमीन की जुताई-बुआई, आदि हर विषय के लिए अलग-अलग कमिटियाँ बना ली जाती हैं। सोवियत की हर शाखा में ऐसी कमीटियाँ होती हैं और केन्द्रीय-सरकार भी ऐसी कमिटियों के बल पर ही संचालित होती है।

सोवियत-सरकार के इस संगठन के जाल के अलावा साम्यवादी पार्टी का संगठन है, जिसके सदस्य किसानों और मजदूरों, देहातों और शहरों में बड़ी तायदाद में हैं। नौजवान साम्यवादियों की संस्था अलग है और बाल-सेना एवं बालचर का संगठन भी व्यापक है। स्त्रियों के लिए साम्यवादी पार्टी ने अलग संगठन कर रखा है और बालिग किसानों के लिए गरीब-जनता-समिति नाम की संस्था है। पुरानी "बड़े भैया की पंचायत" नामक गुप्त-संस्था को पुनर्जीवित किया गया है और उसे कानूनी रूप दे दिया गया है। किसान-रक्षक-दल और स्वयंसैनिक-दल भी देहात में बहुत ही जड़ जमाये हुए हैं।

इन संस्थाओं और कमिटियों के कामों का संचालन केन्द्रीय-सोवियत-सरकार, साम्यवादी पार्टी और लाल सेना के द्वारा होता है और ये तीनों इस प्रकार आपस में गुँथे-मिले हैं कि देख कर आश्चर्य होता है। हाँ, इन संस्थाओं और कमिटियों का प्रधान अवश्य ही कोई अनुभवी साम्यवादी होता है, बाकी निर्वाचन, सदस्यता या कार्य में पूरी जन-तंत्रात्मक पद्धति बरती जाती है। सोवियत-संगठन का यह मूल उद्देश्य है कि हर मर्द, औरत और बच्चे को किसी-न-किसी संस्था का सदस्य

रहना और कोई-न-कोई खास काम अवश्य करना चाहिये।

सोवियत के कामों में कैसी चौकसी और मुस्तैदी रहती है, इसका सबूत है उसके वे प्रयत्न जिनके द्वारा वहाँ की उपज बढ़ाने की कोशिशें होती हैं। हर ग्राम-सोवियत को आर्डर दिया जाता है कि अपने लोगों से मेहनत के साथ खेती करने को कहे और इन चार बातों पर जरूर खयाल रखे—जो परती जमीनें हैं, उन्हें जोत-कोड़ कर उपजाऊ बनाया जाय; जमीन्दारों से छीनी हुई जो जमीन लाल सेना के खर्च के लिए रखी गई है, उसपर जमकर खेती की जाय; गाँव के गल्ले की पैदावार में जरूर वृद्धि की जाय; और, नई फसलों, फलों और सब्जियों की खेती खासकर रूई की खेती पर खूब ही ध्यान दिया जाय। चूँकि नौजवानों को तो अपनी सोवियत की रक्षा और विकास के लिए लड़ने में ही व्यस्त रहना पड़ता है, अतः स्त्रियों से खासकर निवेदन किया जाता है कि वे खेती-बारी में दिलचस्पी लें—जिनके पैर बड़े हैं, वे रोपनी, कटनी करें; जिनके पैर छोटे हैं वे निकौनी या गोबर जमा करने का काम करें। कहना व्यर्थ है कि उनके इन हुक्मनामों को ग्राम-सोवियतें या वहाँ की नारियाँ सिर-आँखों पर लेकर चला लाती हैं।

क्या इन संगठनों के जाल से वहाँ के किसान ऊबते नहीं? किसान तो संगठन और अनुशासन के दुश्मन होते हैं और सार्वजनिक कामों में उनकी दिलचस्पी तो होती नहीं—फिर चीन के किसान तो बड़े कट्टर और अंधपरम्परा के पूजक हैं। अगर आप ऐसा कहें, तो वहाँ के साम्यवादी आप पर हँस पड़ें। वह कहेंगे—किसान न तो संगठन के दुश्मन होते हैं, न सार्वजनिक कामों से भागते हैं—बशर्ते कि ये

उनके हित में हों, न कि जमींदारों और महाजनों के हित में। चीन के किसान सोवियत-सरकार को हमेशा ही "हमारी सरकार" कहकर पुकारते हैं—यह उनके सोवियत-प्रेम का सबूत है।

दूसरा सबूत यह है कि सभी पुरानी सोवियतों में देहात के अमन-चैन, कानून का पालन, या सार्वजनिक रक्षा का भार किसानों पर ही निर्भर रहता है। लाल सेना तो युद्धभूमि में रहती है। किसानों ने गाँव-रक्षा-मण्डल, किसान-सेवक-दल, स्वयं-सैनिक-दल कायम कर रखे हैं, जो इन कामों के अलावा लड़ाई में लाल सेना की भी पूरी सहायता करते हैं।

किसानों के प्रेम के और भी कारण हैं। जमीन्दारों और टैक्स वसूल करने वालों से किसान तबाह रहते थे। किन्तु, सोवियत ने हर-जोता किसान, गरीब किसान और मध्यवित्त किसान की आर्थिक स्थिति में बिल्कुल परिवर्तन कर दिया है। नये जिलों में एक वर्ष के लिए तो सारे टैक्स उठा दिये जाते हैं, जिसमें किसान जरा साँस ले सकें। पुराने जिलों में जमीन पर एक क्रमिक बढ़ने वाला टैक्स और व्यापार पर मामूली टैक्स लगता है। जमीन के भूखे किसानों और खेत-मजदूरों को जमीन्दारों से लेकर या परती को उपजाऊ बनाकर जमीनें दी जाती हैं। बड़े-बड़े किसानों और जमीन्दारों को उतनी जमीनें छोड़ दी जाती हैं, जितनी पर वे खेती कर सकें और बाकी जमीनें बाँट दी जाती हैं। किन्तु, जहाँ पर जमीन की कमी नहीं होती, वहाँ खेती करने वाले जमीन्दारों या बड़े किसानों की जमीन बिल्कुल ही नहीं छुई जाती है। हाँ, दूर रह कर भाड़ा पर जमीन लगाने वाले जमीन्दारों की जमीन तो जरूर ही जप्त होती है।

और, जमीन्दार की परिभाषा क्या है? जमीन्दार उसे समझा जाता है, जिसकी बड़ी आमदनी मालगुजारी से हो

आती है, न कि अपनी मेहनत से। महाजनों की गिनती भी जमींदारों में ही की जाती है।

जमीन के बँटवारे का मतलब यह नहीं है कि सबको बराबर-बराबर जमीन मिले। उसका मतलब यही है कि सब के पास इतनी जमीन हो कि वे सुख से रह सकें।

सोवियत-सरकार से किसानों को ही सुविधाएँ नहीं हुईं, छोटे-छोटे जमीन्दार या मध्यवित्त किसान भी उससे सन्तुष्ट हैं। नाना तरह के टैक्स उठा दिये जाने के कारण अब वे भी निश्चिन्त हैं। बहुत-से ऐसे जमीन्दार साम्यवादी पार्टी में खुशी-खुशी शामिल हो गये हैं।

सूदखोरी-प्रथा को बिल्कुल उठा दिया गया। किसानों को ऋण-मुक्त किया गया। जहाँ पहले सैकड़े ६० तक सूद लगता था, वहाँ ५ सैकड़े पर सरकारी खजाने से रुपया कर्ज मिलता है। सरकारी कारखानों में हजारों-हजार नये ढंग के खेती के औजार तैयार किये जाते और उन्हें किसानों में वितरण किया जाता है। परती जमीन बोनेवालों को हल, बैल, बीज, सब सरकार देती है। कृषि और पशु-पालन की शिक्षा का प्रबंध किया गया है।

सहयोग-समितियों का तो व्यापक प्रचार हुआ। उत्पादन और वितरण का ही काम उनका नहीं; एक साथ पशु और खेती के औजार रखना, और खेती पर काम करने के लिए मेहनत का पारस्परिक उपयोग करना—यह उसकी खास खूबी होती है। ऐसा करने से बड़े-बड़े रकबे पर तुरन्त खेती शुरू कर दी जाती है और किसानों को मेहनत [illegible] या अलग-अलग काम में [illegible] होने से [illegible] जाती है। [illegible] के कमजोर छिन जाते हैं, तो "[illegible] की कौम" बनाई जाती

और खेतों पर चढ़ाई होती है। इस फौज में सभी किसान, सभी लड़के, सोवियत के सभी अफसर, सभी स्वयं-सैनिक, यहाँ तक कि लाल सेना के सभी सिपाही शामिल होते और खेतों में जाकर भर-दिन डटकर काम करते हैं। हफ्ते में एक दिन इस तरह काम होता और स्वयं माव-से-तुंग भी अपने हाथ में खेती का औजार लेकर खेत में जा डटता है। निस्सन्देह ऐसा करके किसानों में 'सम्मिलित खेती' के लिए भी क्षेत्र तैयार किया जाता है—जिसका साम्यवाद अत्यन्त हिमायती है।

सांस्कृतिक उन्नति के लिए भी कम प्रयत्न नहीं होते। लोगों में साफ-सुन्दर जीवन के लिए रुचि उत्पन्न की जाती है और सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में डट कर लग जाया जाता है। चीन का अभिशाप है अफीम—सोवियत-भूमि में आप न तो पोस्ते का एक पौधा पायँगे और न एक भी अफीम का पिनक्कड़! सरकारी अफसरों और अदालतों में घूसखोरी और अनाचार का नाम भी नहीं है और भिखमंगी और बेकारी को तो सोवियत-भूमि से खदेड़ दिया गया है। स्त्रियों में पैर जकड़ कर छोटा करने या भ्रूण-हत्या करने की सख्त मुमानियत है और बच्चों को गुलाम बनाकर रखना या वेश्या-वृत्ति करना अक्षम्य अपराध है। वेश्याओं का तो वहाँ दर्शन तक नहीं। बहु-विवाह भी रोक दिया गया है। विवाह और तलाक के कानून में संशोधन हुए हैं। शादी में वर-वधू की स्वीकृति ही सर्व-प्रधान है। शादी की उम्र मर्दों के लिए २० और औरतों के लिए १८ वर्ष रखी गई है और दहेज देना कानून से जुर्म करार दिया गया है।

# सोवियत अर्थ-नीति

चीन की सोवियत अर्थ-नीति के दो मुख्य उद्देश्य निश्चित किये गये—लाल सेना की परवरिश और उसे हथियारबन्द करना, तथा गरीब किसानों को तुरत सहायता पहुँचाना। यदि ये उद्देश्य सफल नहीं होते, तो सोवियत-सरकार ताश के महल की तरह एक फूँक में उड़ जाती। इन दोनों उद्देश्यों के कारण शुरू से ही वहाँ के साम्यवादी नेता आर्थिक पुनर्संगठन पर ध्यान देते आ रहे हैं।

किसी देश में—खासकर चीन ऐसे अनौद्योगिक देश में—एकबारगी ही साम्यवादी अर्थनीति का पूरा प्रयोग किया नहीं जा सकता था। अतः, धीरे-धीरे बढ़ा गया। एक सीमा बना दी गई और उसके अन्दर लोगों को व्यक्तिगत उद्योग और कारबार करने की स्वतंत्रता दी गई। एक हद तक जमीन की लेन-देन भी जारी रहने दी गई। किन्तु, सोवियत ने मूल उद्योगों को अपने हाथ में रखा। तेल की खानें, नमक की खानें और कोयले की खानें बिलकुल राष्ट्रीय करार दी गईं और सोवियत सरकार के ही हाथों में चमड़ा, कपड़े, नमक, ऊन, रुई, कागज आदि के अधिकांश व्यापार हैं। कुछ व्यक्तिगत व्यापारी भी हैं, जिनकी संख्या दिन-दिन कम हो रही है।

वहाँ की सहयोग-समितियों पर तो बिलकुल साम्यवादी छाप लगी हुई है और यदि हम यह कहें, कि इन सहयोग-

समितियों के द्वारा ही वहाँ की सोवियत जनता को साम्य-वादी रंग में रँगने की कोशिश कर रही है, तो यह अत्युक्ति नहीं होगी। सहयोग-समितियों की व्याख्या ही यह की गई है—"एक ऐसी संस्था जो व्यक्तिगत पूंजीवाद का मुकाबला करे और एक नई अर्थ-प्रणाली के विकास में सहायक हो।" और, उसके पाँच काम ये बताये गये हैं—"व्यापारियों द्वारा जनता का जो शोषण होता है, उसे रोकना; दुश्मन के आर्थिक घेरों का मुकाबला करना; सोवियत-जिलों की राष्ट्रीय अर्थ-नीति को विकसित करना; जनता के आर्थिक और राजनीतिक स्टैण्डर्ड को बढ़ाना और साम्यवादी पुनर्निर्माण के लिए जमीन तैयार करना।"

खपत, बिक्री, उत्पादन, और कर्ज की सहयोग-समितियाँ गाँवों, जिलों और प्रान्तों में कायम कर ली गई हैं। इनके संचालन के लिए एक खास विभाग है और एक खास अफसर दिन-रात इसी पर ध्यान रखता है। कोशिश की की जाती है कि नीची सतह के आदमियों को इनमें लाया जाय। किसी सहयोग-समिति की सदस्यता के लिए जो शेयर खरीदना लाजिमी है, वह करीब आठ आने से चार आने तक का है। सदस्यों को जो कर्तव्य पालन करने होते हैं; वे उन्हें इस संस्था के आर्थिक और राजनीतिक जीवन के निकटतम ले आते हैं। आपके चाहे जितने शेयर क्यों हों, किन्तु, आपको एक ही वोट देने का अधिकार होगा। प्रबंध-समिति या निरीक्षण-समिति का चुनाव सदस्य ही करते हैं, हाँ, केन्द्रीय समिति में संगठनकर्त्ता और सलाहकार सरकार देती है। हर सहयोग-समिति की पाँच शाखायें होती हैं—व्यापार, प्रचार, संगठन, निरीक्षण और हिसाब।

इन सहयोग-समितियों के निपुण संचालन के लिए तरह-तरह के इनाम दिये जाते हैं और व्यापक प्रचार द्वारा किसानों के इस आन्दोलन की उपयोगिता बताई जाती है। सोवियत-सरकार इन्हें कर्ज देती है और अन्य सदस्यों की तरह उसके कर्ज के भी शेयर रहते हैं और मुनाफे में हिस्से होते हैं।

कियांग्सी, आन्ही और जेचुआन की सोवियतों ने अपनी टकसाल भी खोल रखी थी, जहाँ चाँदी के डालर तथा तांबे के सिक्के ढाले जाते थे। किन्तु, १९३५ में नानकिंग की सरकार ने देशभर की चाँदी को जप्त कर लिया। अतः, जब शेन्सी-कांसू में सोवियत-केन्द्र आया, तो जितनी चाँदी इनके पास बच रही थी, सबको संचित कोष में जमा कर लिया गया और कागज के नोट से ही काम चलाया जाने लगा। नोट कागज या कपड़े पर छपते और इनपर "चीन की क्रान्ति अमर हो", "जापान को रोको", "आपसी झगड़ा बन्द हो" आदि नारे छपे होते। बाहरी व्यापार आदि के लिए चाँदी के सिक्के भी ढलाये जाते। सोवियत के सिक्के नानकिंग-सरकार के हल्कों में भी लिये जाते।

बाहर का व्यापार अधिकांशतः सरकारी व्यापार-समिति के ही द्वारा होता है। सहयोग-समितियाँ या कोई व्यापारी जब बाहर लेनदेन करता है, तो उसे भी सरकारी समिति के ही मारफत कीमत अदा करना होता है। विदेशी विनिमय सरकार द्वारा ही संचालित होता है।

इस विनिमय को बड़ी होशियारी से दुरुस्त रखनेवाला और सरकारी कोष को इस अनवरत युद्ध के समय भी भरा-पूरा रखनेवाला एक ५६-५७ वर्ष का बूढ़ा है—लिन-पाइ-चू

उसका नाम है। सोवियत का कोषाध्यक्ष कभी कुओ-मिन्-तांग का भी कोषाध्यक्ष था। उसकी जीवन-कथा विचित्र है।

हूनान के एक शिक्षक के घर उसका जन्म १८८२ में हुआ। अपने यहाँ कालेज की शिक्षा समाप्तकर वह तोकियो (जापान) पढ़ने गया। जापान में ही उसकी भेंट डा० सन-यात-सेन से हुई और बहुत प्रभावित हो वह उनकी गुप्त-समिति का सदस्य हो गया। फिर जब डा० सन ने कुओ-मिन्-तांग की स्थापना की, तो वह उसका एक सम्माननीय सदस्य बना. किन्तु, १६२२ में जब साम्यवादी पार्टी की स्थापना हुई, तो उसके कार्यक्रम से बहुत प्रभावित हो वह उसका सदस्य बन गया। डा० सन ने तोभी उसे अपने कुओ-मिन्-तांग के प्रबन्ध-विभाग का अध्यक्ष और कोषाध्यक्ष बनाया। वह कान्तन में किसान-मंत्रिमंडल का भी अध्यक्ष था। कुओ-मिन्-तांग की कार्य-समिति में च्यांग-काई-शेक से वह सीनियर था।

जिस समय च्यांग-काई-शेक ने अपने हाथ में सर्वाधिकार लेकर साम्यवादियों का दमन करना शुरू किया, तो लिन् ने उसकी निन्दा की, उसे छोड़कर हांगकांग चला आया, जहाँ से वह रूस गया। रूस की साम्यवादी परिषद् में रहकर उसने चार वर्षों तक अध्ययन किया। चीन लौट कर फिर चुप-चुप कियांग्सी पहुँचा, जहाँ माव ने उसे सोवियत का अर्थसचिव बनाया। उसकी पत्नी मर चुकी है। किन्तु, उसका जवान बेटा और बेटी है—जिसे उसने १६२७ से आज तक नहीं देखा, जब कि अपने महान् पद और सामाजिक प्रतिष्ठा को लात मारकर ४५ की उम्र में उसने नौजवान साम्यवादियों के साथ अपने भाग्य को एक किया।

यह बूढ़ा सोवियत का कोष किस तरह भरा रखता है, उसीके मुँह से सुनिये—

"यह सच है कि हम जनता से कोई टैक्स नहीं लेते। लेकिन, हम शोषक वर्गों से खूब टैक्स वसूल करते हैं—और वह भी ज्यादातर उनके अतिरिक्त सामान और रुपयों की जप्ती द्वारा। यों हम सीधा टैक्स वसूल करते हैं। यह कुओ-मिन्-तांग की टैक्स-प्रणाली से सर्वथा विपरीत है, जिसका अधिकांश बोझ अन्ततः गरीब किसान और मजदूरों पर ही पड़ता है। जनसंख्या के सिर्फ १० सैकड़े से हम टैक्स लेते हैं—जमीन्दारों और महाजनों से। बड़े व्यापारियों से भी हम थोड़ा टैक्स लेते हैं और किसानों से भी हलका टैक्स लेते हैं जो आमदनी के अनुसार ही घटता-बढ़ता है। यह मजे में कहा जा सकता है कि हमने जनता पर लगने वाले टैक्सों को बिल्कुल उठा दिया है।

"हमारी आय का दूसरा जरिया है स्वतः दिया गया दान। लोगों में क्रान्तिकारी और देशभक्ति की भावनायें जोरों में हैं और सोवियत की रक्षा के लिए वे सब कुछ त्याग करने को तैयार रहते हैं। लाल सेना का खर्च ज्यादातर स्वतः दिये गये अन्न, वस्त्र और द्रव्य से ही चलता है। कुछ आमदनी सरकारी व्यापार, लाल सेना की जमीन, सरकारी कारखानों एवं सहयोग-समितियों और बैंकों से भी हो जाती है। लेकिन, हमारी आमदनी का प्रमुख जरिया तो जप्ती ही है।

"कुओ-मिन्-तांग वाले हमारी इस जप्ती को लूट कहते हैं। उन्हें कहने दीजिये। यदि शोषकों से टैक्स लेना लूट है, तो, कुओ-मिन्-तांग जो जनता से टैक्स वसूल करती है, वह क्या लूट नहीं है? फिर हम जो जप्ती करते हैं उसमें और सुफेद

सेना की लूट में कितना फर्क है ? हमारी जब्तियाँ अधिकार-प्राप्त लोगों ही के द्वारा होती हैं, जिनका अर्थ-विभाग से सीधा सम्बन्ध रहता है । जब्त की हुई चीजों की तफसीलवार लिस्ट तैयार की जाती है और उनका उपयोग समाज की भलाई के ही काम में किया जाता है। खानगी लूटपाट की सख्त मुमानियत है। आप किसीसे भी पूछिये—क्या लाल सेना के किसी सैनिक ने कहीं भी लूट-पाट की है ?

"यदि लगातार लड़ाई करना नहीं होता, तो हमने कब न स्वावलम्बी अर्थनीति कायम कर ली होती। हमारा आय-व्यय का चिट्ठा बहुत ही होशियारी से तैयार किया जाता है और हर किफायतसारी पर हम ध्यान रखते हैं। अफसरों पर तो हमारा खर्च कुछ नहीं है—क्योंकि उनमें से हर व्यक्ति क्रान्तिकारी और देशभक्त है और केवल खाने-पीने का प्रबंध ही उनके लिए बस है। हमारा आय-व्यय कितना मुख्तसर है ! आस्ट्रिया के बराबर हमारी सोवियत-भूमि है, किन्तु, हमारा महीने का खर्च ३,२०,००० डालर है। इसमें सामानों के दाम भी शामिल हैं। इस खर्च के लिए ४० से ५० सैकड़े की आमदनी जब्ती से आती है ; १५ से २० सैकड़े की दान से, जिसमें वह चन्दा भी शामिल है, जो हमारी पार्टी के सदस्य नानकिंग सरकार के हल्के से वसूल लाते हैं। बाकी आमदनी व्यापार, आर्थिक निर्माण, लाल सेना की जमीन और सरकारी बैंक के सूद से आती है।"

इस अध्याय के समाप्त करने के पहले यह जान लेना कम मनोरंजक नहीं कि सोवियत के इस अर्थसचिवजी का मुशाहरा कुल पाँच डालर महीना है।

# सोवियत-शिक्षा-पद्धति

माव-से-तुंग का जो गुरु है, वही आज सोवियत का शिक्षा-गुरु है। पुराना, भंखाड़ आदमी। राजतंत्र, प्रजातंत्र और साम्यवादी सोवियत—तीनों के नज्जारे जिसने अपनी आँखों देखे हैं! और उसका यह पुराना अनुभव आज सोवियत के लिए बड़े ही काम का सिद्ध हो रहा है।

हूनान के सुप्रसिद्ध नगर चांग्सा के निकट उसका जन्म १८७६ में हुआ। गरीब का लड़का। बाप ने बड़ी दिक्कत से लिखाया-पढ़ाया। कुछ बड़ा होने पर खुद कमा कर पढ़ने लगा। ग्रेजुएट हुआ, शिक्षक हुआ। माव ही उसका शिष्य नहीं—बहुत-से प्रमुख साम्यवादियों को पढ़ाने का गौरव उसे प्राप्त है। लड़ाई के बाद वह फ्रांस गया और वहाँ पेरिस-विश्व-विद्यालय में तीन वर्षों तक अध्ययन करता रहा। वहाँ से लौट कर उसने १९२३ में चांग-सा में दो विद्यालय खोले और काफी नाम और सम्पत्ति कमाई। १९२७ में वह साम्यवादी बना। उस समय उसकी उम्र ५० वर्ष की थी। वह सोचा करता, क्या साम्यवादी पार्टी में मुझ बूढ़े के लिए भी कोई स्थान हो सकता है! और, जिस दिन वह साम्यवादी पार्टी में दाखिल हुआ, आनन्दातिरेक में खूब रोया। उसने सोचा, अब मैं अपने देश की कुछ यथार्थ सेवा कर सकूँगा!

साम्यवादी पार्टी ने उसे रूस भेजा और वहाँ वह दो वर्ष तक फिर अध्ययन करता रहा और वहाँ से लौटने पर

कियाङ्सी सोवियत की शिक्षा-समिति का वह उपाध्यक्ष बनाया गया, और फिर उसका अध्यक्ष।

जब कियाङ्सी में था, चार वर्षों के अन्दर-ही-अन्दर दस सैकड़े लिखे-पढ़े लोगों की संख्या से बढ़ा कर उसे अस्सी सैकड़े तक कर देना इसी बूढ़े शिक्षक का काम था।

लेकिन शेसीन-कान्सू की हालत अजीब थी। यह देश दुनिया के सबसे अन्धकार देशों में गिना जा सकता है। पढ़े-लिखों की संख्या मुश्किल से पाँच सैकड़े है, किन्तु, यदि सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाय, तो यह प्रदेश और भी पिछड़ा था। अज्ञान इस हद तक कि लोग पानी का स्पर्श करना स्वास्थ्य के लिये हानिप्रद समझते थे। यहाँ के लोग जिन्दगी में दो ही बार स्नान करते, एक बार जब उनका जनम होता, और दूसरी बार जब उनकी शादी होती। हाथ-पैर या मुँह धोना या नाखून और बाल बनाना तो यह जानते नहीं थे। जो ऐसा करता उसे यह घृणा की दृष्टि से देखते।

इसलिए यहाँ की शिक्षा की रफ्तार बहुत ही धीमी रही। हर चीज श्रीगणेशायनमः से ही शुरू करनी पड़ी। सोवियत के पास पढ़ाई-लिखाई के सामानों की भी बड़ी कमी थी। छपाई के लिये प्रेस थे नहीं। लीथोग्राफ से ही काम चलाया जाता। दुश्मन ने कुछ ऐसा जबर्दस्त आर्थिक घेरा डाल रखा था कि कागज तक मँगाना मुश्किल। यहाँ जो कागज बनवाना शुरू किया गया तो उनकी सिफत बहुत ही खराब। लेकिन तो भी, हिम्मत न हारी गई। काम चालू किया गया। सबसे पहले प्रतिभाशील नौजवानों को चुनके उन्हें शिक्षक का काम अच्छी तरह सिखाया गया।

ये शिक्षक गाँवों में जाकर बैठ गये और धीरे-धीरे लोगों को पढ़ाई के पक्ष में करने लगे। किसानों में भी पढ़ाई की रुचि पैदा हुई। अनुभव से यह भी देखा गया कि जैसा वे बाहर से दीख पड़ते हैं, एकदम भोंदू नहीं हैं। वे तुरत पढ़-लिख लेते हैं और यदि तर्क और युक्ति से बताया जाय तो अपनी गंदी आदतें भी छोड़ने को तैयार हैं।

चूँकि सोवियत का अभी स्थापना-काल है और अभी संघर्ष जारी ही है, इसलिये वहाँ की शिक्षा-पद्धति तीन हिस्सों में बाँटी गयी है। पढ़ाई-लिखाई की शिक्षा, सैनिक शिक्षा और सामाजिक शिक्षा। पहली शिक्षा का संचालन सोवियत के द्वारा होता है, दूसरी का लाल सेना द्वारा और तीसरी का साम्यवादी संस्थाओं द्वारा। शिक्षा में सबसे ज्यादा जोर राजनीति पर दिया जाता है। यहाँ तक कि छोटे-छोटे लड़कों को जो अक्षर सिखाये जाते हैं, वे सरल क्रान्तिकारी नारों द्वारा ही। और, उसके बाद लाल सेना और कुओ-मिन्-तांग के संघर्षों की छोटी-छोटी कहानियाँ बतायी जाती हैं। किसानों और जमीन्दारों, मजदूरों और पूँजीवादियों के शाश्वत संघर्षों की कहानियाँ भी साथ-साथ चलती हैं और लाल बाल-सेना और खुद लाल सेना की वीरता की कहानियाँ उन्हें बतायी जाती हैं। अंत में उन्हें बताया जाता है कि किस तरह सोवियत-सरकार इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग बसाना चाहती है और उसके इस उद्देश्य की सफलता की कितनी बड़ी संभावना है।

थोड़े ही दिनों के अन्दर सोवियत ने सैकड़ों प्रायमरी स्कूल कायम कर दिये हैं। शिक्षकों के लिये स्कूल, खेतीबारी के लिये स्कूल, बुनाई सिखाने के स्कूल भी कायम हो गये

हैं। मजदूर-संघ अपने स्कूल अलग चलाते हैं और साम्य-वादी पार्टी के राजनीतिक स्कूल हैं जहाँ पर कार्यकर्त्ताओं को छः महीने रखकर उन्हें पूरा राजनीतिक ज्ञान दे दिया जाता है।

इसमें कोई शक नहीं कि जिस परिस्थिति में सोवियत-सरकार है, सैनिक शिक्षा पर सबसे अधिक जोर दिया जाता है। इन दो वर्षों के अन्दर ही इसमें काफी सफलता मिली है। लाल सेना के सैनिक विद्यालय और घुड़सवार और पैदल सेना के स्कूल की चर्चा अलग हो ही चुकी है। इनके अतिरिक्त एक रेडियो स्कूल है जहाँ बेतार के तार के संवादों के भेजने और लेने की पूरी पटुता सिखा दी जाती है। एक मेडिकल स्कूल भी कायम हो गया है जिसमें डाक्टरों और धाइयों को शिक्षित किया जाता है।

एक इंजीनियरिंग स्कूल है जहाँ विद्यार्थियों को औज़ार बनाने की प्रारम्भिक शिक्षायें मिल जाती हैं।

सोवियत की ही तरह इन संस्थाओं का निर्माण भी अस्थायी तौर पर ही हुआ है और सोवियत के नेता उस शुभ दिन की प्रतीक्षा में हैं जब वे अपनी इन संस्थाओं के द्वारा अपने क्षेत्र में कमाल कर सकेंगे। इन शिक्षण-संस्थाओं के जो शिक्षक हैं, उनमें कोई-कोई तो ऐसे हैं जिन्हें मामूली शिक्षा भी नहीं मिली है। किन्तु, अपने अनुभव के बल पर अपने विषयों में उन्होंने ऐसी व्युत्पन्नता प्राप्त कर ली है कि उन्हें उस स्थान पर रखकर पछताना नहीं पड़ा है। इन शिक्षण-संस्थाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ ज्ञान का सामूहिक उपयोग होता है। जो जिस चीज का विशेषज्ञ है वह अपना ज्ञान अपने साथियों में रत्ती-रत्ती बाँट देता है।

सामाजिक शिक्षा का मूल उद्देश्य भी मुख्यतः राजनीतिक ही है। न समय है, न ऐसी परिस्थिति कि इन किसानों को साहित्य पढ़ाया जाय या पुष्पों का चमन दिखलाया जाय। साम्यवादी तो ठोस आदमी होते हैं। वे अपनी पाठ्य-पुस्तकें इस तरह तैयार करते हैं कि उनका एक-एक अक्षर पढ़ना खुद साम्यवाद के सिद्धान्त को मुखाग्र करना हो। आप किसी स्कूल के निकट जायँ तो आप सुनेंगे :—

'यह क्या है?'

'यह लाल झंडा है।'

'यह क्या है?'

'यह एक गरीब आदमी है?'

'यह लाल झंडा क्या है?'

'यह लाल सेना का झंडा है।'

'लाल सेना क्या है?'

'लाल सेना गरीबों की सेना है।'

इसी तरह बढ़ते-बढ़ते वे पाँच-छः सौ अक्षरों को सीख लेते हैं और उनके साधारण कामकाज के लिए यह काफी होता है। कहने को आप इसे भद्दा प्रचार कह सकते हैं, किन्तु, जब इन किताबों को किसान या उनके लड़के-लड़कियाँ समाप्त कर लेती हैं तो वे केवल अपने कामकाज ही के लायक नहीं हो जाते, वरन् यह भी उन्हें मालूम हो जाता है कि उन्हें किसने यह शिक्षा दी है और उसका क्या उद्देश्य है। फिर एक बात और भी तो सोचिये—'यह बिल्ली है, यह चूहा है, बिल्ली क्या कर रही है, वह चूहे को खा रही है' इस पद्धति की जो पढ़ाई आज सभ्य संसार में जारी है उससे तो यह कहीं सच्ची और यथार्थवादी शिक्षा है।

चीन के अक्षर बहुत ही झंझटपूर्ण हैं। वे न जल्दी सीखे जा सकते हैं और सीखने पर भी तुरत भूले जा सकते हैं। साधारण जनता की अशिक्षा को दूर करने के लिये उनमें संशोधन करना आवश्यक है। सोवियत ने इस चीज को महसूस किया और एक नये ढंग के अक्षर तैयार किये गये हैं जिनका आधार रोमन लिपि है। पूरी वर्णमाला में २८ अक्षर हैं और उनका दावा है कि इसके द्वारा वे चीन के सभी उच्चारणों को लिख सकते हैं। उन्होंने इस लिपि में एक छोटा-सा शब्द-कोष छाप रखा है जिसमें साधारण व्यवहार के सभी चीनी शब्द आ गये हैं। इसके तैयार करने में उस बूढ़े शिक्षक का बहुत बड़ा हाथ है। वह उसके आधार पर शिक्षा देने का प्रयोग कर रहा है। और, उसकी उमीद है, इस प्रयोग के सफल होते ही तुरत-से-तुरत सोवियत चीन से अशिक्षा को मार भगाया जा सकेगा।

---

# उद्योगधंधे और मजदूर

जिस समय सोवियत-सरकार का हेड क्वार्टर कियांग्सी में था, दुश्मनों द्वारा नाना तरह की कठिनाइयाँ डाले जाने और किसी सामुद्रिक बन्दरगाह या प्रधान औद्योगिक केन्द्र के अभाव के बावजूद सोवियत ने उद्योग-धंधे में बड़ी तरक्की दिखलाई थी। उसके हाथ में कीमती धातुओं की खानें थीं, कपड़े बुनने के कारखाने थे, एक केन्द्रीय सोवियत-छापाखाना था जिसमें ८०० मजदूर काम करते थे और मशीन की ढलाई के कारखाने भी थे। अपनी जरूरतों को पूरा करने के बाद उनका विदेशी व्यापार सवा करोड़ डालर के लगभग का था। दस्तकारी के काम और ग्राम-उद्योग को भी खूब तरक्की हुई थी—जो सहयोग-समितियों के प्रसाद थे। १९३३ में ऐसी सहयोग-समितियाँ कियांग्सी में १,४२३ थीं।

किन्तु, नये केन्द्र शेन्सी-कान्सू की भौगोलिक और ऐतिहासिक परिस्थिति विचित्र थी। सैकड़ों मील चारों ओर चरागाह-ही-चरागाह, जहाँ के लोग अब भी गुफाओं में रहते। यातायात के साधन नहीं। बिजली की कौन बात चिराग की जगह लोग जानवर की अँतड़ियाँ जलाकर रोशनी करते। ऐसी जगह में आधुनिक उद्योग-धंधे का सपना भी नहीं देखा जा सकता था। किन्तु, ये स्वप्नदर्शी साम्यवादी जो न करें—असम्भव को सम्भव बनाना तो इनका काम ही है।

जिस समय इन्होंने कियांग्सी छोड़ा, जैसा कि लिख

जा चुका है, इन्होंने अपनी मशीनें भी नहीं छोड़ीं। इन मशीनों को छः हजार मील तक ये ढोते लाये और यहाँ आते ही उद्योग धंधे को जारी कर दिया। थोड़े ही दिनों के अन्दर कपड़े, वर्दियाँ, जूते और कागज के कारखाने पाव-पेन और होलीन्वान ( कांग्सू ) में, कम्बलों के कारखाने सिंगपीन में, खानें यंग-पिंग में ( जहाँ का कोयला चीन भर में सबसे सस्ता समझा जाता है ) और ऊनी और सूती कपड़ों के कारखाने तो प्रायः हर जिलों में कायम कर लिये। सोवियत-सरकार का सबसे बड़ा उद्योग तो नमक का है जो चीन की बड़ी दीवाल के नजदीक, नमक की झील के किनारे, येन-चीह में है। यहाँ का नमक चीन भर में सबसे बढ़िया और सस्ता होता है और इसके जरिये मंगोलों से भी इनकी दोस्ती हो गई है, जिन्हें पहले नमक बहुत मुश्किल से कड़े दाम पर मिलता था। यंग-पिंग और येन-चांग में तेल की खानें हैं, जहाँ पर पेट्रोल, पाराफिन, वैसलीन, मोम, मोमबत्ती और दूसरी चीजों के कारखाने खुल गये हैं। ये तेल की खानें चीन की अकेली खानें हैं और इनपर एक अमेरिका की कम्पनी का ठीका था। किन्तु, लाल सेना ने इस क्षेत्र पर कब्जा कर उसे सोवियत की सम्पत्ति बना डाली। सोवियत ने और दो नये कुएँ इसपर धँसाये और उसका उत्पादन तीन महीने के अन्दर सैकड़े ४० बढ़ गया है।

अब यह कोशिश की जा रही है कि जहाँ अफीम उपजाई जाती थी, उन रकबों में रूई की खेती की जाय। बुनाई सीखने के लिए एक स्कूल भी खोला गया है, जहाँ ज्यादातर स्त्रियों को बुनना सिखाया जाता है। तीन महीने का कोर्स है। रोजाना तीन घंटे साधारण ज्ञान की शिक्षा दी जाती है और

पाँच घंटे कताई-बुनाई की। शिक्षा समाप्त होने पर विद्यार्थियों को जिलों के केन्द्रों में भेज दिया जाता है, जहाँ वे कपड़े के कारखाने खोलते हैं। यह उनकी उमीद थी कि दो वर्षों में ही कपड़े के बारे में उनकी सोवियत-भूमि स्वतंत्र हो जायगी।

सोवियत-भूमि का सबसे बड़ा उद्योग-केन्द्र वू-ची-चेन है, जहाँ लाल सेना के लिए अस्त्र-शस्त्र तैयार होते हैं और जहाँ कपड़े, वर्दियाँ, जूते और मोजे के कारखानों के अतिरिक्त दवा तैयार करने की एक रसायनशाला भी है।

अस्त्र-शस्त्र का कारखाना एक पहाड़ के नीचे है और पहाड़ में गुफायें बनाकर उसीमें मशीनें बैठाई गई हैं। चाहे जितने बम बरसाये जायँ, इस कारखाने का कोई नुकसान नहीं किया जा सकता। हाथ का बम, खाई की तोप, बारूद, पिस्तौल, गोलियाँ, छुरें और कुछ खेती के औजार भी यहाँ बनाये जाते हैं। राइफल, मशीनगन, आप-से-आप छूटनेवाली राइफल और दूसरे छोटे-छोटे अस्त्र-शस्त्र भी यहाँ बनते हैं। किन्तु, ये अच्छे नहीं बनते, इसलिए स्वयं-सेना-दल को ही इनसे लैस किया जाता है, लाल सेना के हथियार तो ज्यादातर दुश्मनों से छीने हुए ही होते हैं।

इस कारखाने का संचालक हो-सी-यांग २६ वर्ष का एक युवक है। इसके पहले वह मुकदन के शस्त्रागार का मिस्त्री था। १९३१ में वह शांघाई आया और साम्यवादी पार्टी का सदस्य बना। इस कारखाने के बहुत-से आदमी ऐसे ही हैं, जिन्होंने चीनी, जापानी, अँगरेजी या अमेरिकन कारखानों में नाम कमाया था और आज अपने उज्ज्वल भविष्य पर लात मारकर एक नई दुनिया बसाने की धुन में, यहाँ डटे पड़े हैं।

कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों की हालत बड़ी ही

अच्छी है। यों तो वह समझते ही हैं कि यह राज्य ही उनका और उनके लिए है, अतः सब प्रकार का बलिदान करके भी उन्हें इसके उद्योग-धंधों में सहायता पहुँचाना है—किन्तु, उन्हें अच्छी तरह रखने की ओर भी सोवियत-सरकार कम ध्यान नहीं देती। कारखानों के मजदूरों को १० से १५ डालर तक का वेतन मिलता है और उनके रहने के मकान का इन्तजाम सरकार करती है। घायल होने पर मुफ्त चिकित्सा ही नहीं, न्हें मुआवजा भी मिलता है। मजदूरिनों को प्रसव के पहले और बाद चार महीने की सवेतन छुट्टी मिलती है और उनके बच्चों के लिए 'शिशु-भवन' भी बनाये गये हैं। प्रौविडेन्ट फंड का प्रबंध भी मजदूरों के लिए है—वेतन का सैकड़े दस काट कर उतना ही सरकारी खजाने से मिलाकर उनके नाम पर जमा रहता है, जो उन्हें वक्त जरूरत पर दिया जाता है। शिक्षा और मनोरंजन के लिए भी कारखाने की ओर से काफी इन्तजाम रहता है। क्लब और स्कूलों का सुन्दर प्रबन्ध होता है। दिन में आठ घंटे काम करना पड़ता है और ६ दिन का सप्ताह माना जाता है।

कारखानों में स्त्रियाँ भी काम करती हैं। क-ची-चेन के हथियार बनाने और वर्दियाँ तैयार करने के कारखानों को छोड़ कर और जितने कारखाने हैं, उनमें ज्यादातर स्त्रियाँ ही काम करती हैं, विशेषतः नवयुवतियाँ जिनकी उम्र १८ से २५ तक की है। उनके बाल कटे-छँटे होते हैं और उनमें से कई ने लाल सैनिकों से शादी कर रखी है। पति युद्धभूमि में लड़ रहे—पत्नी कारखाने में काम कर रहीं—दोनों सोवियत की सेवा में मस्त। चीनी सोवियत का नारा है—बराबर काम, बराबर मजदूरी। अतः, जो स्त्रियाँ पुरुषों के बराबर काम करती हैं,

उन्हें स्त्री होने की वजह से ही कम मुशाहरा नहीं मिलता। इन स्त्री-मजदूरों की जो संचालिका है, वह मास्को से शिक्षा पाकर लौटी है और सोवियत की एक प्रमुख कर्मिणी है।

मजदूरों के अपने संघ हैं। उन संघों को सरकार मंजूर ही नहीं करती, सब तरह मदद पहुँचाती है। मजदूरों में संगठित जीवन के प्रति प्रेम हो, इसके लिए कुछ भी उठा नहीं रखा जाता।

औद्योगिक विकसित देशों के मजदूरों को देखते चीनी सोवियत के इन मजदूरों की आर्थिक स्थिति या सांस्कृतिक विकास कुछ अच्छा नहीं, किन्तु जरा कल्पना कीजिये, आप कहाँ की बात कर रहे हैं और किस स्थिति की। चीन में ही अभी ऐसे कारखानों की भरमार है जहाँ मजदूरों को गुलाम की स्थिति में रखा जाता है और उनसे तेरह-चौदह घंटे काम लेना तो मामूली बात है। काम करते-करते वे थककर गिर जाते और मशीन के निकट ही जो चटाई बिछी होती है, उस पर सो जाते हैं। रेशम के कारखानों में काम करनेवाली छोटी-छोटी लड़कियाँ और कपड़ों के कारखानों में काम करनेवाली युवतियाँ तो एक तरह से कारखाने में कैद होती हैं—पाँच-पाँच वर्षों तक वे सशस्त्र पहरे से बाहर नहीं निकलने पातीं। शांघाई में १९३५ में २९००० ऐसी लाशें पाई गई थीं, जो भूख के मारे मर गये थे या नदियों में बाल-बच्चों को डुबोकर खुद डूब मरे थे। शांघाई एक प्रथम दर्जे का औद्योगिक शहर है—ये बेचारे मजदूर या उनकी संतान ही तो वहाँ होंगे।

इसके विपरीत जरा वू-ची-येन के मजदूरों की हालत देखिये। स्वस्थ, आनन्दी—स्वाधीनता के वायुमंडल में पले, आत्मसम्मान और आशा से पुलके। यह जानते हैं कि कोई

उनका शोषण नहीं कर रहा—वे अपने लिए काम कर रहे हैं। वे अपने को क्रान्तिकारी कहते हैं और अपने इस नाम की सार्थकता के लिए प्रति दिन दो घंटे बड़ी गम्भीरता से पढ़ते, राजनीतिक व्याख्यानों को बिला नागा सुनते, अपनी नाटक-मण्डलियों में शामिल होते और मजदूरों के भिन्न-भिन्न संघों में जो प्रतियोगितायें खेलकूद, साहित्य, सार्वजनिक स्वास्थ्य, दीवाल के अखबार और कारखाने की उन्नति के लिए होती हैं, उनमें दिल खोलकर हिस्सा बँटाते हैं।

मजदूरों में सोवियत के कारखानों के लिए कितना प्रेम है, इसका सुबूत है चू-से-चीह। यह आदमी वहाँ का इञ्जीनियर है। कभी वह सुप्रसिद्ध ऐंडर्सन मायर कम्पनी में इञ्जीनियर और उसके बाद खानगी इञ्जीनियर के रूप में दस हजार डालर सालाना कमाता था। वह जर्मन और अङ्गरेजी भाषा जानता है और उसकी लिखी किताबें इञ्जीनियरिंग की पाठ्य-पुस्तक के रूपमें चीन में पढ़ाई जाती है। किन्तु, सब छोड़-छाड़ कर वह साम्यवादी बना। जब सोवियत सरकार के कारखानों की बात सुनी, उसने अपने को सुपुर्द कर दिया। सोवियत ने भी उसे सम्मान पूर्वक चीफ इञ्जीनियर बना दिया है। वह बड़ा गम्भीर आदमी है। जब एक अमेरिकन सज्जन ने उससे पूछा—कहिये, यहाँ आकर आपने कैसा पाया, तो उसने जवाब दिया—"और सब तो ठीक है, किन्तु, यहाँ के मजदूर गाने में बहुत समय बर्बाद करते हैं—उफ, ये कितना गाते हैं!"

गम्भीर इञ्जीनियर की झुंझलाहट ठीक—किन्तु, यह सोवियत-उद्योग-धन्धे की खूबी है कि मजदूर इतना प्रसन्न रहते हैं!

# किसानों से बातचीत

एक अमेरिकन यात्री लिखता है—

मैं पाव-एन से आगे बढ़ा और कान्सू की सीमा पर पहुँचा। इस अर्से में मुझे किसानों के घर में ठहरने और उनकी चटाई पर सोने का मौका मिला। वे बहुत गरीब थे, किन्तु, उनकी अतिथि-सेवा की भावना थी सर्वथा सराहनीय। मुझे आदर से रखते और खिलाते-पिलाते, किन्तु, देने पर भी कुछ नहीं लेते। मेरे लिए कभी-कभी मुर्गियाँ तक हलाल की जातीं। एक बार एक स्त्री बातें कर रही थी—"हमें ऐसी कोशिश करनी चाहिये कि इस विदेशी के दिल में यह भाव न उठे कि साम्यवादी लोग शिष्टाचार तक नहीं जानते।"

एक रात हम कान्सू की सीमा पर, शेन्सी से उत्तर एक गाँव में ठहरे। मेरा काफी सत्कार हुआ। मेरे ऐसे गोरे चमड़े और इस सूरत-शकल का आदमी उन्होंने कभी नहीं देखा था। लड़के तो डर भी गये। किन्तु, बड़े-बूढ़े बड़ी तायदाद में रात को मुझे घेर कर बैठ गये और गप्पें करने लगे। वे पूछने लगे—तुम्हारे देश में कौन-कौन अन्न उपजते हैं, गाय और घोड़े होते हैं या नहीं, गोबर को खाद की तरह काम में लाते हो कि नहीं? क्या तुम्हारे देश में धनी और गरीब दोनों हैं? तुम्हारे यहाँ साम्यवादी पार्टी और लाल सेना है? जब मैंने उन्हें बतलाया कि हमारे देश में साम्यवादी पार्टी तो है, किन्तु, लाल सेना नहीं, तो उन्हें बड़ा कुतूहल हुआ!

इसके बाद मैंने कुछ पूछना शुरू किया। सबसे पहले मैंने लाल सेना के बारे में पूछा। एक ने तुरत कहा—उनके घोड़े बहुत अन्न खाते हैं। मालूम हुआ, हाल ही यहाँ लाल घुड़-सवार सेना आई थी। मेरे साथी ने उस आदमी से पूछा—क्या उन्होंने अन्न के दाम नहीं दिये? जवाब मिला—दाम क्यों नहीं दिये, किन्तु, हमारी तरफ अन्न कम उपजा जो हमारे लिए ही काफी था। एक बूढ़े ने कहा—और उनके दिये रुपये से अफीम कहाँ मिलती है? इसपर नौजवान उस पर बिगड़ पड़े। बोले—अफीम नहीं मिलती, लेकिन, और सब चीजें तो सहयोग-समिति से मिलती हैं न? अन्न, कपड़े, तेल, मोमबत्ती, सूई, दियासलाई, नमक—आपको क्या-क्या चाहिये?

बूढ़े ने तमक कर कहा—एक आदमी को छः फीट कपड़े से ज्यादा कहाँ मिलते हैं? दूसरे ने मुँह लगे कहा—आप नहीं जानते बाबा, कपड़ों की अब कमी नहीं रही। किन्तु, तीसरे ने कहना शुरू किया—

मान लीजिये, आपको काफी कपड़े नहीं मिलते, अफीम नहीं मिलती, लेकिन, क्या यह बात ठीक नहीं है कि अब हमें टैक्स देना नहीं पड़ता। अब न तो महाजन के तकाजे होते हैं और न जमीन्दारों की लाठी बरसती है। हमारे घर, हमारी जमीन को कोई छीन नहीं सकता। यह लाल सेना तो हमारी सेना है, हमारे लिए, किसानों और मजदूरों के लिए लड़ती है, हमें जापान से बचाती है, कुओ-मिन-तांग से बचाती है। उसने दाम दिये भी, किन्तु, क्या सुफेद सेना कभी कुछ देती है?

सभी एक बार चिल्ला उठे—नहीं, एक कौड़ी नहीं। हम दोनों सेनाओं में लाल सेना ही पसंद करेंगे।

"आप लोग लाल सेना को क्यों पसन्द करते हैं,"—मैंने पूछा।

अब वही बूढ़ा, जिसने अफीम न मिलने की शिकायत की थी, कहने लगा—

सुफेद सेना के आने पर क्या होता है? वे आते ही यह लाओ, वह लाओ की माँग की झड़ी लगा देते हैं। किन्तु, दाम देने का नाम तक नहीं लेते। अगर हम नहीं दें, तो साम्यवादी कहकर हमें गिरफ्तार कर लिया जाता है। हम उन्हें चीजें इसी तरह दे दिया करें, तो फिर, हम टैक्स कहाँ से देंगे? चाहे हम जितनी कोशिश करें, टैक्स तो दे नहीं सकते। नतीजा क्या होता है? हमारे पशु खोल लेते और उसे बेच डालते हैं। पारसाल जब लाल सेना यहाँ नहीं थी, तो सुफेद सेना आ धमकी और मेरे दो खच्चर और चार सूअर ले गई। खच्चरों में प्रत्येक का दाम ३० डालर मिलता और प्रत्येक सूअर का दो डालर। लेकिन, उन्होंने क्या दिया? उन्होंने बतलाया कि तुम्हारे पास ८० डालर बाकी हैं, जिसमें तुम्हारे पशुओं के दाम से ४० ही डालर मिले हैं। उन्होंने ४० डालर की और माँग पेश की। मैं कहाँ से देता? चोरी करता? उन्होंने सलाह दी कि अपनी बेटी बेच लो—मैं सच कह रहा हूँ। हममें से कई को ऐसा करना भी पड़ा। जिनके पास न पशु थे, न बेटी, उन्हें जेल जाना पड़ा और उनमें से बहुत जाड़े से ठिठुर मरे।

मैंने उस बूढ़े से जानना चाहा कि उसके पास कितनी जमीन है और उसकी क्या कीमत है। किन्तु, वह ठीक-ठीक बता नहीं सका। बार-बार पूछने पर खीझ कर उसने कहा—

मेरी जमीन, मेरा घर, मेरे औजार और मेरे पशु—सब लीजिये, और मुझे १०० डालर ही दीजिये।

और तुम्हें टैक्स कितना देना पड़ता है?

४० डालर।

यह तो लाल सेना के पहले लगता था न?

हाँ, अब कहाँ टैक्स लगता है। किन्तु, पारसाल नहीं लगेगा, कौन जाने? जब लाल सेना आती है, सुफेद आ धमकती है। एक वर्ष लाल, दूसरे वर्ष सुफेद। जब सुफेद आती है, कहती है, तुम लाल डाकू हो। जब लाल आती है, कहती है, तुम क्रान्ति-विरोधी हो।

किन्तु, एक फर्क तो है दादा—एक नौजवान ने कहा—जब हमारा पड़ोसी कह देता है कि हमने सुफेद सेना को मदद नहीं पहुँचाई है, तो लाल सेना इसे मान लेती है। किन्तु, चाहे सैकड़ों ईमानदार आदमी कसम खायँ, सुफेद सेना को विश्वास हो नहीं सकता, जब तक कि कोई जमीन्दार गवाही न दे।

बूढ़े ने सिर हिला कर हामी भरी और बतलाया कि पार-साल एक किसान का पूरा परिवार इसीलिए कत्ल कर डाला गया कि उसने यह नहीं बताया कि लाल सेना किस ओर गई है, या कहाँ छिपो है। उसकी यह गत देख हमलोग गाँव छोड़कर जो भागे, सो लाल सेना के लौटने पर ही लौटे हैं।

अगली बार सुफेद सेना आ जाय, तो क्या फिर आप लोग भाग जायँगे?—मैंने पूछा।

"क्या मरना है, जो नहीं भागेंगे।"—एक अधवयस ने

कहा, जिसके बाल लम्बे थे, लेकिन दाँत बहुत ही खूबसूरत।

उसके बाद वह अपने गाँव का अपराध गिनाने लगा। हमलोग 'गरीबों के संघ' में शामिल हुए हैं, हमलोगों ने जिला-सोवियत के लिए वोट दिये हैं, हमलोगों ने लाल सेना को बता दिया कि सुफेद सेना किधर गई है, हममें से दो आदमी के लड़के लाल सेना में भर्ती हुए हैं और एक की दो लड़कियाँ परिचारिका-विद्यालय में शिक्षा पा रही हैं। क्या इतने अपराध के बाद भी सुफेद सेना हमें जीता छोड़ेगी?—एक एक को गोली मार देगी।

इतने ही में एक नौजवान खड़ा हुआ जिसकी उम्र १८ से ज्यादा तो हो नहीं सकती। वह बोला—नाना साहब, आप यह क्या बोल रहे हैं? क्या ये सब अपराध हैं? ये तो देश-भक्ति के काम हैं। और, हमने जान-बूझ कर किया है। क्यों न करें? कहिये, क्या इसके पहले हमारे गाँव में निश्शुल्क-विद्यालय था? क्या हमें दुनिया के समाचार घर बैठे बिना तार-के-तार से मिल जाया करते थे? संसार गोल है, यह हमें किसने बतलाया? यह शिकायत की जाती है कि सहयोग-समिति में कपड़ों की कमी है—किन्तु. इसके पहले सहयोग-समिति क्या चीज है, हमने जाना भी था? फिर, यह आपकी जमीन—क्या याद नहीं कि कल तक यह जमीन्दार वांग के हाथों बड़ी रकम में रेहन थी? तीन वर्ष हुए, मेरी तीन बहनें भूखों तड़प कर मर गईं! क्या यह सच नहीं है कि लाल सेना के आने के बाद हमारे यहाँ अन्न की कमी नहीं? आप बूढ़े हैं, आप जो कहें, किन्तु, हम नौजवान तो ऐसे छोड़ नहीं सकते। हमने जिन्दगी में पहली बार लिखना-पढ़ना सीखा है, राइफल लेकर लड़ना

सीखा है। हम देश-द्रोहियों और जापानियों का नाम-निशान नहीं रहने देंगे।

नौजवान का चेहरा तमतमा रहा था। उसकी बातों का समर्थन चारों ओर से हो रहा था। सबके चेहरे पर उल्लास था।

बातें होते-होते नौ बज गये। लोग एक-एक कर जाने लगे। सबसे पीछे एक बूढ़ा उठा। वह धीरे-धीरे मेरे निकट आया और फुस-फुसाया—प्यारे साथी, क्या आपके पास थोड़ी अफीम होगी—जरा मेहरबानी कीजिये। निराशा में ही उसे लौटना पड़ा। किन्तु, उसके जाने के बाद मेरे मेजबाँ ने कहा—आप यकीन करेंगे, यह आदमी यहाँ के 'गरीब-संघ' का सभापति है और अफीम के लिए व्याकुल होकर भिखमंगी कर रहा है? उहुँ, यहाँ जोरों से शिक्षा का प्रचार करना पड़ेगा!

## लाल योद्धा

लाल सैनिकों को च्यांग-काई-शेक की सरकार ने बहुत दिनों तक 'लाल डाकू' के नाम से दुनिया में मशहूर कर रखा था—जरा हम देखें तो, कि वे यथार्थतः कैसे जीव हैं।

लाल सेना किसान और मजदूर-श्रेणी के नौजवानों से बनी है, जो नौजवान ऐसा विश्वास रखते हैं कि वे अपने घर, अपनी जमीन और अपने देश के लिए लड़ रहे हैं।

पहली मोर्चा-सेना में जाँच की गई, तो मालूम हुआ था, उसमें ५८ सैकड़े किसानों से आये हैं, ३८ सैकड़े मजदूरों और खेत-मजदूरों से और कुल चार सैकड़े छुटभैये बाबू-दल से—यानी व्यापारी, बुद्धिजीवी, छोटे जमीन्दार से। इनमें सैकड़े ५०, जिसमें सेनापति भी शामिल हैं, साम्यवादी पार्टी या साम्यवादी-युवक-संघ के सदस्य हैं।

सैनिकों की औसत उम्र १९ वर्ष की है—यह सुनने में अजीब मालूम पड़ता है, किन्तु, इससे भी अजीब यह बात है कि इनमें से बहुतों ने ७ से १० वर्ष तक लड़ाई लड़ी है। जो 'पुराने' लाल सैनिक समझे जाते हैं, उनकी औसत उम्र पच्चीस से पार नहीं जाती। बात यों है कि इनमें से अधिकांश ने १५,१६ वर्ष की उम्र में ही बाल-सेना में नाम लिखाया था और बाद में वे लाल सेना में ले लिये गये।

इन सैनिकों में ६० से ७० सैकड़े तक पढ़े-लिखे हैं—यानी चिट्ठी लिख-पढ़ लेते, अपनी पाठ्य-पुस्तकें पढ़ लेते और पोस्टर

और पर्चे भी पढ़-लिख लेते हैं। यदि सुफेद सेना से या वहाँ के किसानों से तुलना की जाय, तो पढ़ाई का यह औसत आश्चर्यजनक मालूम पड़े। ज्योंही लाल सेना में वे भर्ती होते हैं, उन्हें पढ़ना-लिखना शुरू करा दिया जाता है और इसमें तुरत तरक्की करने के लिए तरह-तरह के इनाम दिये जाते हैं।

लाल सैनिकों को, उनके सेनापतियों की ही तरह, कोई मुशाहरा नहीं मिलता। इसके बदले उन्हें जमीन मिलती है। जमीन पर या तो उनके घरवाले खेती करते हैं, या ग्राम-सोवियत अपनी तरफ से खेती करके उसकी उपज उनके परिवार को दे देती है। यदि सैनिक किसी दूसरे प्रान्त के हुए, तो जमीन्दारों से जप्त की हुई 'सार्वजनिक जमीन' की खेती से जो पैदावार होती है, उससे उनका मुशाहरा चुकाया जाता है। 'सार्वजनिक जमीन' की खेती करने के लिए कोई खर्च नहीं पड़ता—गाँववाले मुफ्त ही उसकी खेती कर देते हैं, क्योंकि, वे जानते हैं कि लाल सेना पर ही उनकी सब उन्नति निर्भर है।

अफसरों की औसत उम्र २४ वर्ष की है और औसतन आठ वर्ष की लड़ाई का उन्हें अनुभव है। अफसर सब पढ़े-लिखे हैं। तिहाई अफसर कुओं-मिन्-तांग से भाग कर आये हैं। वाम्पा के सैनिक-विद्यालय और मास्को के लाल-सैनिक-विद्यालय के ग्रेजुयेट तथा फ्रांस, जर्मनी, इंगलैण्ड और अमेरिका से सैनिक-शिक्षा पाये अफसरों की भी कमी नहीं है।

लाल सैनिक अपने को सैनिक नहीं कहते, 'योद्धा' कहते हैं।

आधे से अधिक सैनिक और अफसर अविवाहित हैं। जो विवाहित हैं, उन्हें भी अपनी पत्नी और परिवार को घर पर

छोड़ आना पड़ा है। गौर से छानबीन करने पर मालूम किया गया है कि उनमें से आधे से अधिक तो अखंड ब्रह्मचारी हैं।

लाल सैनिक औरतों को सम्मान की नज़र से देखते हैं। छावनी में जो लड़कियाँ नर्स या दूसरी हैसियत से रहती हैं, या अफसरों की जो पत्नियाँ या बेटियाँ हैं, उनकी ओर कोई दुर्भावना की आँख भी नहीं उठाता। छावनी के पड़ोस की या रास्ते की किसान-लड़कियों या स्त्रियों से उनका व्यवहार माँ-बहनों-सा होता है। किसान लाल सैनिकों की सदाशयता और नैतिकता के पूरे कायल होते हैं। बलात्कार या दुर्व्यवहार की कोई भी शिकायत नहीं—हाँ, एकाध अपनी 'प्रियतमा' की चर्चा करते हैं, जो न जाने पीछे कहाँ छूट गई। नशा से परहेज—लाल सेना के आठ नियमों में एक है। न वे शराब पीते, न सिगरेट फूँकते। इसके लिए कोई सजा नहीं है—किन्तु, सेना के "दीवाल-अखबार" के काले कालमों में आदतन सिगरेट पीनेवालों की भर्त्सना छपती है। शराब पीने की तो कोई चर्चा तक नहीं होती।

लाल सैनिकों को जिस परिस्थिति, जिस दौड़-धूप और जिस हड्डी-तोड़ मेहनत में रहना पड़ता है, उसके लिए संयम का जीवन एकान्त आवश्यक है। उन्हें ऐशोइशरत के लिए फ़ुर्सत कहाँ। सेनापति पेंग ने कहा था—आठ वर्षों से मैंने अपनी स्त्री का मुँह तक नहीं देखा।

लाल सेना के अफसरों में घायलों की संख्या बहुत अधिक पाई जाती है। अफसर अपनी सेना के साथ-साथ जाते हैं। 'आओ, भाइयो' यह उनकी पुकार है, न कि 'जाओ, भाइयो—' जैसा कि दूसरी सेना में होता है। नानकिंग के पहले-दूसरे धावे में तो आधे अफसर घायल हो गये थे। पीछे देखा गया

कि अनुभवी सेना-नायकों को बचाना जरूरी है। तोभी सैकड़े २३ तो घायल अफसरों का औसत है ही। आप लाल जिलों में जाइये। पाइयेगा—बीस-पचीस के सिन वाले नौजवान, किन्तु किसी का एक हाथ गायब, किसी का एक पैर गायब किसी की उँगली ही नहीं, तो किसी के सर में भद्दा गड्ढा। किन्तु, वे कितने प्रसन्न—क्रान्ति की आखिरी विजय पर उनमें कितना अधिक विश्वास!

लाल सेना में चीन के प्रत्येक प्रान्त के नौजवान हैं—इस तरह सही यथार्थ में राष्ट्रीय सेना है। इन नौजवानों ने यात्रायें भी कम नहीं की हैं। ऐसे लोग हैं—जो अठारह प्रान्तों की सीमायें लाँघ आये हैं। चीन के भूगोल का ज्ञान इनसे बढ़कर किसे होगा? महा अभियान के समय पुराने नक्शे बेकार साबित हुए—वे गलत थे। इनके नक्शा-नवीसों ने फिर से नये नक्शे बनाये। पहली मोर्चा-सेना के तीस हजार आदमियों में एक तिहाई सैनिक दक्षिण जिलों—कियांग्सी, फुकियन, हूनान और क्वांग्चाव के थे और लगभग ४० सैकड़े पश्चिमी प्रान्तों—जेचुआन, शेन्सी और कान्सू के। मियाव और लोलो ऐसे जंगली लोगों की तायदाद भी उस सेना में कम नहीं थी।

सबसे बड़े कमान्डर से लेकर साधारण सैनिक तक की पोशाक और भोजन एक तरह का रहता है। अफसरों को घोड़े या खच्चर इस्तेमाल करने का हक है। उनके रहने के मकान भी एक-से होते हैं और अफसर और सैनिक बहुत स्वच्छन्दता से आपस में मिलते-जुलते हैं।

सैनिकों की बन्दूकों में सैकड़े अस्सी और कारतूसों में सैकड़े सत्तर दुश्मन से छीने गये हैं। नानकिंग सरकार

इङ्गलैण्ड, जेकोस्लोवाकिया, जर्मनी या अमेरिका से जो मशीनगनें, रायफलें, पिस्तौल और पहाड़ी तोपें नये-से-नये डिजाइन की खरीदती है, वे थोड़े ही दिनों के बाद लाल सैनिकों के हाथों की शोभा बढ़ाती हैं। जो लोग यह सोचते हैं कि उन्हें रूस से हथियार मिलते हैं, वे गलती करते हैं। रूस और सोवियत-भूमि के बीच अलंघ्य और अभेद्य दीवार खड़ी है—भौगोलिक और दुश्मन की सेना के घेरे की।

लाल सेना के अफसरों का मुशाहरा भी ज्यादा नहीं होता। उत्तर-पश्चिम की इस सोवियत-भूमि का आकार इङ्गलैण्ड के बराबर है, किन्तु, उसका बजट कुल २,२०,००० का है—जिसमें ६० सैकड़े सेना में खर्च होता है—और सेना की संख्या उस समय ४०,००० थी—यानी एक सैनिक पर मय अस्त्र-शस्त्र के कुल ५ रुपये का खर्चा।

इन सैनिकों के रहने के लिए मकान होते हैं—पर्वत की गुफायें, जमीन्दारों के लम्बे अस्तबल, लकड़ी और मिट्टी के बनाये गये बैरक, या सुफेद अफसरों के छोड़े हुए घर। कठोर 'कांग' पर ये सोते हैं—उसपर पुआल की चटाई तक नहीं होती—बस, एक सूती कम्बल डाल दिया और रम गये। टेबुल या डेस्क कहीं शायद दीख पड़े—कुर्सी की जगह ईंट के ऊँचे चबूतरे बना लिये जाते हैं।

सेना की हर टुकड़ी के पास अपना रसोइया होता है। खाना सादा पकता है। चाय, काफी, मिठाई, केक या हरी तरकारी शायद ही कभी मिलती हो। गरम पानी ही दूध और चाय की जगह पिया जाता है।

सैनिकों का जीवन बहुत ही सख्त होता है। जब लड़ाई पर रहे, तब तो जिन्दगी और मौत की ही आँख-मिचौनी

रही। शान्ति के समय भी वे बैठे-ठाले नहीं रहते। सुबह उठकर एक घंटा कसरत, जलपान; दो घंटे सैनिक ड्रिल; दो घंटे राजनीतिक व्याख्यान और बहस; दिन का भोजन; दो घंटे पाठ्य-पुस्तकों का अध्ययन; दो घंटे खेल-कूद; रात का भोजन; संगीत और दस्ते की मीटिंग—यह होती है उनकी दिनचर्य्या। ऊँचा कूदना, लम्बा कूदना, दीवाल तड़पना, रस्सा तड़पना, बम फेंकना और निशाना लगाना—इनके लिए प्रतियोगितायें होती हैं। पहाड़ों पर तेजी से चढ़ने के लिए भी इनाम बँटते हैं। इन कामों में सैनिकों के दिन बड़ी व्यस्तता में कटते हैं।

हर लाल सेना के अन्दर एक 'लेनिन क्लब' होता है, जिसे सैनिकों के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का केन्द्र समझिये। इस क्लब में लेनिन और मार्क्स की हाथ की बनी तस्वीरें टँगी होती हैं। एक कोने में नकली लड़ाइयों के मिट्टी के नमूने होते हैं। एक कोने में नक्शे और तालिकायें टँगी होती हैं। सैनिकों के लिए आदर्श पुस्तकालय भी इसी में रखा जाता है और "दीवाल का अखबार" भी इसी के एक कोने में होता है। क्लब में रेडियो लगा होता है, जिससे देश-विदेश की खबरें आती रहती हैं। मनोरंजन के समान, ग्रामोफोन, घरेलू खेल, संगीत आदि का भी यही केन्द्र है। राजनीतिक वार्तालाप और अध्ययन-मंडली का संचालन भी इसी क्लब द्वारा होता है।

---

# लाल बाल-सेना

"मेरा परिवार चांगचाव के निकट, फ़ूकियन में, रहता था। मैं पहाड़ पर जाता और लकड़ी काटता। जाड़े में पेड़ों के छाल इकट्ठा करता। मेरे गाँव के लोग कभी-कभी लाल सेना की चर्चा करते। वे कहते, लाल सेना गरीबों की मदद करती है। मुझे यह सुनकर खुशी होती। मेरा परिवार गरीब था। हम छः आदमी थे—माँ, बाप, हम चार भाई। हमारी अपनी जमीन नहीं थी। मालगुजारी में ही खेती की आधी उपज चली जाती। जाड़े में हम पेड़ की छाल उबाल कर उसका रस पीते। मैं सदा भूख से कुलबुलाया करता।

"एक साल लाल सेना चांगचाव के निकट आई। मैं पहाड़ पार कर उनकी छावनी में गया और उनसे कहा कि हमलोग बहुत गरीब हैं, हमारी मदद कीजिये। उन्होंने मुझे स्कूल में पढ़ने को भेज दिया और मुझे जिन्दगी में पहली बार, भर पेट, छक कर खाने का मौका मिला। कुछ महीनों में ही उन्होंने चांगचाव पर कब्जा किया और फिर मेरे गाँव में गये। जमीन्दारों और महाजनों को गाँव से खदेड़ दिया गया। मेरे परिवार को जमीन दी गई, जिसके लिए कोई टैक्स नहीं लगता। मेरा परिवार बहुत खुश हुआ और मुझ पर उमंग करने लगे। मेरे दो भाइयों ने लाल सेना में नाम लिखाया और मैं बाल-सेना में भर्ती किया गया।"

"यह कितने दिनों की बात है ?"

"चार वर्ष पहले की—उस समय मैं कुल ग्यारह वर्षों का था !"

यह कथा है, बाल-सेना के एक सीनियर मेम्बर की। टेनिस का जूता, भूरी वर्दी और कुछ मटमैली भूरी टोपी—जिसपर लाल तारे का निशान जगमग करता ! चेहरा गुलाबी, आँखें चमकतीं। बिगुल बजाने का गौरवपूर्ण काम उसे दिया गया था और महान अभियान के छ हजार मील की यात्रा तय करने का इसे भी गौरव प्राप्त था ! उत्साह और अथक परिश्रम की यह मूर्त्ति मालूम होता था।

और ऐसे-ऐसे बच्चे एक-दो, या सौ दो सौ नहीं, चालीस हजार हैं, जिन्हें साम्यवादी-युवक-संघ ने बाल-सेना के रूप में संगठित और सुशिक्षित कर रखा है। लाल सेना की हर छावनी में इन बच्चों की "आदर्श-टुकड़ी" जरूर रहती है। वे प्रायः ११ से १६ वर्ष के होते हैं और चीन के हर हिस्से से वे आये हैं। बहुतों ने तो महा अभियान की कठिनाइयों को भी बर्दाश्त किया है।

उनसे अर्दली, रसोई परोसनेवाला, बिगुलची, खुफिया, रेडियो-संचालक, भिस्ती, प्रचारक, अभिनेता, नर्स, सेक्रेटरी और शिक्षक का भी काम लिया जाता है। दीवाल पर संसार का नक्शा टाँग कर नये रंगरूटों को भौगोलिक ज्ञान पर लेक्चर सुनाते भी आप उन्हें देख सकते हैं। लाल नाटक-मंडलियाँ तो बिना उनकी सहायता के चल न सकें—गाने, नाचने, नकल उतारने में उन्हें कमाल हासिल।

उन्हें जो वर्दियाँ दी जाती हैं, वे उनके शरीर से बड़ी होती

हैं। कोट की बाहें हाथ से निकल कर लटकती होतीं, लम्बाई जमीन चूमती। सर्दी के मारे नाक से नेटा बहता रहता।

रूखा-सूखा सैनिक-जीवन। इधर-उधर दौड़ते रहना। इनमें सैकड़ों गोलियों के शिकार हुए—सैकड़ों बीमारियों के आहार बने। कितने गिरफ्तार कर नारकीय जेलों में सड़ा दिये गये। किन्तु, तो भी वे डटे हैं। लाल सेना और सोवियत से उन्हें कितनी प्रीति है!

क्यों?—क्योंकि वे समझते हैं, दुनिया उनकी है। आज भी उनकी हालत पहले से अच्छी है। उन्हें खाने-पीने का कष्ट नहीं है। प्रत्येक को एक-एक कम्बल भी मिला है। नायकों को पिस्तौल भी दिया गया है। लाल सेना का चिह्न उन्हें भी लगाने को मिलता है। उन्हें इज्जत की निगाह से देखा जाता है। कोई उन्हें डाँट नहीं सकता, न दबा सकता है। उन्हें जवानों के बराबर ही सभी अधिकार प्राप्त हैं।

उनकी वीरता की कितनी ही कहानियाँ हैं। हम बच्चे हैं, इसलिए हमें कुछ सुविधा चाहिये, यह माँग उन्होंने कभी नहीं की। जवानों की तरह ही मोर्चों पर डट कर लड़ते भी हैं। जिस समय कियांग्सी छोड़कर पूरी लाल सेना ने महा अभियान किया, वहाँ की बाल-सेना स्वयं-सैनिक-दल से मिलकर लड़ती रही। धावे के समय संगीनों की मार भी उसने की, जिसे देखकर नानकिंग की सेना के सैनिक कुतूहल से हँसते और कहते—अरे बच्चो, जरा अपनी उम्र भी देखो, संगीन के साथ तुम्हें भी पकड़ कर हम खाई में फेंक सकते हैं।

उन्हें पूरी स्वाधीनता प्राप्त है और इस स्वाधीनता की रक्षा के लिए उनकी अपनी संस्थाएँ हैं। खेल-कूद के अलावा

पढ़ने-लिखने की शिक्षा भी उन्हें मिलती है और साम्यवादी नारों के अर्थ और महत्व तो उन्हें खासकर सिखलाया जाता है।

उनमें से बहुत बच्चे तो धनियों के गुलाम की तरह रह चुके हैं। दिन-रात खटते और पाखाना तक साफ करते थे। आज उनका जीवन कितना आनन्दी है।

एक से पूछा गया—दोस्त, आखिर यह जिन्दगी कुछ कठिन तो जरूर है?

"कठिनाई किसे कहते हैं? साथियों के बीच काम करने में कठिनाई कहाँ? फिर, हमें तो अपने उद्देश्य पर ध्यान देना है।"

यह बच्चे की बोली है, या बूढ़े की?

कियांग्सी से आये एक लड़के से एक ने पूछा—यह कान्सू कैसा लगता है, कियांग्सी से अच्छा, या बुरा?

"कियांग्सी अच्छा था, किन्तु, कान्सू भी अच्छा है। जहाँ क्रान्ति है, वही जगह अच्छी। खाने-सोने की सुविधा क्या चीज है? असल बात तो है—क्रान्ति!"

प्रश्न करने वाले ने सोचा, यह जवाब क्या है—सिखाई-पढ़ाई चीज़ है। किन्तु, दूसरे दिन उसने देखा, लाल सेना की एक सभा में वह बच्चा धुआँधार व्याख्यान दे रहा है और राजनीति की समस्याओं को बड़े सादे ढंग से समझाता जा रहा है। वह बाल-सेना का सबसे अच्छा वक्ता समझा जाता था।

इस बालसेना का एक कर्तव्य होता है मोर्चे की तरफ जानेवाले सभी सैनिकों की जाँच-पड़ताल करना और जिनके पास 'पास' हो, उन्हें ही उस ओर बढ़ने देना। वे अपने इस कर्तव्य को बड़ी चौकसी से पालन करते हैं और उन्हें धपले में डालना या धोखे में रखना, कोई साधारण बात

नहीं है। सेनापति पेंग-तेह-ह्वाइ ने अपनी कहानी बताई थी। एक बार वह बाहर से मोर्चे की ओर जा रहे थे कि बालसेना के एक सैनिक ने उन्हें टोका, 'पास' की मांग की और न देने पर लौट जाने को कहा और जिद करने पर गिरफ्तार करने की भी धमकी दी—

"लेकिन मेरा नाम पेंग-तेह-ह्वाइ है—ये 'पास' तो मैंने ही लोगों को दिये हैं।"

"कोई मुजायका नहीं कि आप स्वयं सेनापति चू-तेह हों", उस बच्चे ने बिगड़ कर कहा, "किन्तु जब तक आप 'पास' नहीं दिखाते, मैं आप को आगे बढ़ने नहीं देता।" यही नहीं, उस लड़के ने सहायता के लिए सिगनल किया और उसके बहुत-से साथियों ने आकर पेंग को घेर लिया।

आखिर पेंग को हारकर वहीं खुद अपने नाम का 'पास' लिखना और उसपर दस्तखत करना पड़ा—तब कहीं उन्हें आगे बढ़ने दिया गया।

इन बच्चों का उत्साह देखकर जवानों की कौन बात, बूढ़ों में भी नया खून दौड़ जाता है। प्रसन्नता और आशा के तो ये प्रतीक ही हैं। भर दिन के थके माँदे हों, किन्तु, "कहिये, क्या हाल है" यह पूछते ही जवाब मिलता है, "मस्त हूँ, अपनी कहिये।" धैर्यवान, परिश्रमी, चमकीले, सीखने को उत्सुक। उन्हें देखकर कोई भी कह सकता है—चीन के अच्छे दिन आने वाले हैं, उसका भविष्य उसके सुदूर भूत की तरह ही महान है।

---

# लाल रंगमंच

चीन में साम्यवाद के प्रचार के लिए जैसा और जिस सफलता के साथ रंगमंच का उपयोग किया गया है, वह एक अभूतपूर्व चीज है। चीन पाश्चात्य नजरों में एक पिछड़ा हुआ देश है—मुख्यतः किसानों का देश। शिक्षा का महा अभाव। ऐसी हालत में कोई ऐसा साधन निकालना था जिसके द्वारा अपढ़, अशिक्षित, असंस्कृत किसानों में साम्यवाद के सिद्धान्तों का व्यापाक प्रचार हो सके। चीनी सोवियत के कर्णधारों ने वह साधन रंगमंच को ही बनाया। १९३१ में जिस समय कियाङ्सी में सोवियत की स्थापना हो चुकी थी, लाल रंग-मंच का जन्म हुआ। ज्यूचिन के सुप्रसिद्ध गोर्की विद्यालय में एक हजार विद्यार्थी भिन्न-भिन्न सोवियत प्रदेशों से बुलाये गये और उन्हें इस विषय की पूरी शिक्षा देकर साठ नाटक-मंडलियाँ कायम की गईं। ये नाटक-मंडलियाँ इस गाँव से उस गाँव जातीं और अपने मनोरंजक कार्यक्रम से किसानों के मन को स्वभावतः ही अपनी ओर खींचतीं। थोड़े ही दिनों में इनकी धूम मच गई और गाँवों से इतने निमंत्रण आने लगे कि सब का पूरा किया जाना मुश्किल-सा हो गया। गाँववाले ही उनके सामान ढोकर ले जाते, उनके खाने और रहने का इन्तजाम करते।

उत्तर-पश्चिम में सोवियत कायम होने के बहुत पहले ही कियाँगसी की यह हवा वहाँ पहुँच चुकी थी और शेन्सी

सोवियत में ऐसी नाटक-मंडलियाँ कायम हो चुकी थीं। महा अभियान के बाद जब कियांग्सी की सोवियत यहाँ पहुँची तो लाल सेना और कल-कारखानों के सामान आदि के साथ, नाटक-मंडलियाँ भी पहुँचीं और फिर तो समूचे शेन्सी और कान्सू के रकबे में इनका जाल-सा बुन गया। लाल सेना की हर टुकड़ी के साथ एक नाटक-मंडली होती है। हर जिला सोवियत के अधीन कितनी ही नाटक मंडलियाँ होती हैं। ग्राम-सोवियतें भी अपनी अलग-अलग नाटक-मंडलियाँ कायम करने में परस्पर प्रतिस्पर्द्धा करती हैं।

इन नाटक-मंडलियों का प्रोग्राम बड़ा ही आकर्षक होता है। मुख्य नाटक के अलावा प्रतिदिन प्रमुख समाचारों के दृश्य भी दिखलाये जाते हैं और सैनिक, राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं को नाटक का रूप दिया जाता है। लोगों के मन में उठनेवाली शंकाओं और प्रश्नों का जवाब हँसी-मजाक में ही बता दिया जाता है, जो किसानों के सीधे दिमाग में जाकर बैठ जाता है। जब लाल सेना किसी नये क्षेत्र पर कब्जा करती है तो यह इन नाटक-मंडलियों का काम होता है कि वे जनता के डर को दूर करें, उन्हें साम्य-वादी प्रोग्राम का अन्दाजा प्रारम्भिक रूप में दें, उनमें क्रान्ति-कारी भावनायें भरें और उनके हृदय को जीतें।

कियाँग्सी से जो अनुभवी अभिनेता आये, वे अब शिक्षक बन गये हैं और उनकी देख-रेख और शिक्षा-दीक्षा में नये-नये स्थानीय अभिनेता पैदा हो रहे हैं। उन्हें केवल खाना-कपड़ा और थोड़ा-सा सफर-खर्च मिलता है। लेकिन उन्हें रोज अध्ययन करना होता है। उनका विश्वास है कि वे अपने देश और देशवासियों की एक बहुत बड़ी खिदमत कर रहे

हैं। जहाँ जगह मिलती है, सो जाते हैं ; जो मिलता है, खा लेते हैं और इस गाँव से उस गाँव पैदल ही चलते हैं। भौतिक सुख-सुविधा के ख्याल से वे निस्संदेह ही संसार भर के अभिनेताओं में कम पानेवाले हैं, लेकिन इनके ऐसी जिन्दा-दिली और हँसी-खुशी तो शायद ही कहीं मिले।

नाटक के जो सामान, पर्दे-पोशाक वगैरह होते हैं, वे बहुत ही सादे और सस्ते होते हैं। लेकिन उन्हें कुछ इस ढंग से सजा दिया जाता है कि वे काफी आकर्षक दीखते हैं।

नाटक और गाने कुछ सरकारी अफसर भी लिख लेते हैं, किन्तु वे ज्यादातर सोवियत के प्रचार-विभाग के कलाकार—कहानीलेखक और नाट्यकार—ही द्वारा तैयार किये जाते हैं। इन नाटकों में से ज्यादातर चेन-फाँग-की-वू नामक एक महान साहित्यिक के लिखे होते हैं, जो तीन बरस पहले साम्यवादी पार्टी में शामिल हुए हैं। श्रीमती तिंग लिंग के नाटक इधर बहुत खेले जा रहे हैं। श्रीमती जी चीन की सबसे प्रसिद्ध लेखिका हैं और आजकल लाल सेना के साथ रहती हैं।

× × × ×

आज सनीचर का दिन है और सूरज डूबने में दो-तीन घंटे बाकी हैं। समूचा पाव-आन शहर आज एक ओर जाता दीख पड़ता है। सिपाही, सैनिक, स्त्रियाँ, लड़कियाँ, क्रर्क, अफ़सर सब-के-सब एक तरफ चले जा रहे हैं। वह जगह है—यहाँ का नाटक-घर।

टिकट की झंझट नहीं ; और न सीटों में नीच-ऊँच का भेद-भाव। यह हैं सोवियत की केन्द्रीय समिति के सेक्रेटरी लो-फू; यह हैं सैनिक विद्यालय के अध्यक्ष लिन-पिआव, यह हैं

अर्थसचिव लिन-पाइ-च्यू और यह हैं सोवियत सरकार के अध्यक्ष माव-से-तुंग। ये सब इस बड़ी भीड़ में अलग-अलग छिटपुट बैठे हैं।

स्टेज के सामने एक बड़ा लाल रेशमी पर्दा लटका हुआ है जिसपर साफ-साफ हरफों में लिखा हुआ है, "जनता की जापान-विरोधी नाटक मंडली"।

तीन घंटे का खेल। इसके अन्दर कई छोटे-छोटे एकांकी नाटक, नाच, गाने, मूक-नाट्य। उनके दो ही मुख्य आशय—जापान-विरोध और क्रान्ति। कला को प्रचार ने दबाव रखा है सही, किन्तु एक जीती-जागती-सी चीज है, जिसमें विनोद को पूरी पुट मिली हुई। दर्शकों और अभिनेताओं में एक अजीब एकाग्रता-मालूम होती, वे सुन नहीं रहे हैं—पी रहे हैं। चीन के दर्शकों की रुचि अजीब होती है। वे नाटक-घरों में देखते कम हैं, वहाँ फल खाते, गप्प उड़ाते और तौलिया उछाला करते हैं। किन्तु यहाँ की यह तल्लीनता। मालूम होता है, नाटक में सभी घुलमिल गये हैं।

पहला एकांकी नाटक—नाम उसका 'लड़ाई'। मंचूरिया का एक गाँव। १६३१ में जापानी सैनिकों की एक टोली आती है और नपुंसक चीनी सैनिकों को मार भगाती है। दूसरा दृश्य। एक किसान के घर में जापानी अफसर मौज उड़ा रहे चीनी किसानों को कुर्सी की तरह बना कर उनपर वे बैठे हैं और नशे में बेहोश उनकी स्त्रियों से प्रेमालाप कर रहे हैं। तीसरा दृश्य। एक जापानी फेरीवाला अफीम बेच रहा है और हर किसान को उसके खरीदने के लिए मजबूर करता है। एक नौजवान खरीदने से इन्कार करता है। बातचीत शुरू होती है—"तुम अफीम नहीं खरीदोगे? तुम मंचुकाओ के

स्वास्थ्य के नियम का पालन नहीं करोगे ? ओह, तुम जापान-विरोधी हो, तुम लाल डाकू हो।" उस नौजवान को फाँसी लगा दी जाती है।

आगे का दृश्य। एक बाजार। दूकानदार अपने सौदे-सुलफे बेच रहे हैं। अचानक जापानी सिपाही पहुँच जाते हैं—जापान-विरोधी लाल डाकुओं की तलाश में। वे सबसे उनका पासपोर्ट माँगने लगते हैं। जो बेचारे अपना पासपोर्ट घर पर छोड़ आये, सब के सब गोली से उड़ा दिये जाते हैं। इसके बाद दो जापानी अफसर एक फेरीवाले की दुकान पर आते हैं—कुछ चीजें लेते हैं। जब वह दाम माँगता है, गुर्राते हैं—"तुम मुझसे दाम माँगते हो ? क्यों ? तुम्हें मालूम नहीं कि च्यांग-काई-शेक ने हमें मंचूरिया, जेहाल, चहार और क्या-क्या न दे दिये, किन्तु उसने एक भी पैसा माँगा और तुम्हें दाम चाहिये ?" उसकी भी वही गत होती है।

नाटक के आखिरी हिस्से में ग्रामीणों में एक अजीब असन्तोष और सनसनी फैल जाती है। व्यापारी उठ खड़े होते हैं और अपने छाता फेंकने लगते हैं। किसान दौड़ते हैं और अपने बर्छे उछालने लगते हैं। स्त्रियाँ और बच्चे भी अपनी छुरियाँ निकालते हैं और सभी कसम खाते हैं कि हम आखिरी दम तक इनका सामना करेंगे—इन जापानी राक्षसों को भगाकर ही छोड़ेंगे।

समूचा नाटक हास्य-विनोद और स्थानीय कहावतों से भरा। हँसी के फव्वारों के बीच-बीच में जापानियों के प्रति घृणा और विद्रोह के भाव की वर्षा। दर्शकों में काफी उत्तेजना। यह केवल नाटक नहीं, प्रचार भी नहीं—यह तो स्पष्ट सत्य है। एक दर्शक उठ खड़ा होता है और नारे लगाता है—

जापानी डाकुओं का नाश हो ! चीन के हत्यारों का क्षय हो ! अपने घर के रक्षा के लिए लड़ते चलो, वीरो ! नारे को दर्शकों ने दुहराना शुरू किया—ध्वनि-प्रतिध्वनि से दिशायें गूँज उठीं।

इसके बाद ही "फसल का नाच" शुरू होता है। करीब एक दर्जन लड़कियाँ—खाली पैर, किसानों का पाजामा और कोट पहने, सिर पर रेशमी चादर बाँधे। संलग्नता और भव्यता टपकती। इनमें से दो लड़कियाँ कियांग्सी से आई हैं—महा अभियान के साथ लाखों कष्ट भोगते।

दूसरा नाच "संयुक्त मोर्चे का नाच" के नाम से मशहूर है। नाच में ही बताया जाता है कि किस तरह चीन की सम्पूर्ण जनता जापान के विरुद्ध उठ खड़ी होती है। पहले उजली गंजी और टोपी पहने नाविक आते हैं, तब घुड़सवार, फिर हवाई जहाजी और पैदल सेना, अन्त में जल सेना। इनका मूक अभिनय दर्शनीय। चीन के अभिनेता मूक अभिनय में अपना जोड़ संसार में नहीं रखते। इसके बाद "मशीन का नाच" होता है। बच्चे अपने हाथ, पाँव और सर को इस तरह संचालित करते कि चक्के का चलना, डायनेमो का शब्द होना आदि मशीन के सभी काम मूर्तिमान हो जाते हैं। मालूम होता, मानो चीन में मशीन-युग आ पहुँचा।

बीच-बीच में दर्शकों में से किसी या किन्हीं का गाना-बजाना होता है। आधे दर्जन देहाती लड़कियाँ ग्रामगीत गाती हैं। एक किसान इनके गीत में अपनी देहाती सारंगी बजाता है। एक लाल सैनिक हारमोनियम पर एक दक्षिणी गीत गाता है।

अब दूसरा एकांकी नाटक शुरू होता है।

एक सामाजिक किन्तु क्रान्तिकारी कहानी। एक मुनीब है, जो अपने जमीन्दार की स्त्री के प्रेम में फँस जाता है। नाटक के बाद फिर कुछ नाच। तब "जीवित अखबार" की बारी आती है—प्रमुख समाचारों को नाटकीय ढंग से बताया जाता है। अन्त में लड़के साम्यवादियों के अन्तर्राष्ट्रीय गीत गाते हैं। सभी देशों के झंडे एक साथ बँधे हैं, जिनके चारों ओर लड़के बैठे हुए हैं। गीत गाते हुए वे धीरे-धीरे उठते हैं, तनकर खड़े हो जाते हैं, एक ओर इनके घूँसे तनते हैं, दूसरी ओर गाना समाप्त होता है।

यह है इस नाटक-मण्डली के एक दिन के नाटक का प्रोग्राम।

× × × ×

सोवियत के इस लाल रंगमंच के संचालन का सूत्र एक ३० वर्षीया युवती के हाथों में है। उसका नाम है कुमारी वी। आज दस वर्षों से वह लगातार साम्यवादी पार्टी का काम करती आई है। फ्रांस और रूस जाकर, पार्टी की ओर से, उसने शिक्षा भी प्राप्त की है। कियांग्सी में वह रंगमंच की सहकारी अध्यक्ष थी, किन्तु, अब इस उत्तर-पश्चिम में वह प्रधान अध्यक्ष है। महा अभियान में वह साथ रही है और उस ६०० मील की यात्रा के सभी सुख-दुखों को सानन्द भोग चुकी है।

# सोवियत और मुसलमान

चीन में मुसलमानों की संख्या एक करोड़ बताई जाती है और उनमें से आधा शेन्सी, कांन्सू, निंगसिया, जेचुआन और सिकियांग में रहते हैं। बहुत-से जिलों में—खास कर कान्सू और चिंघाई में—वे बहुमत में हैं और कई हिस्सों में तो चीनियों से उनकी तायदाद दस गुनी तक है। जहाँ जैसी तायदाद है, वहाँ वैसी ही उनकी धार्मिक कट्टरता है। उत्तरी कांसू और दक्षिणी निंगसिया का क्षेत्र तो बिल्कुल मुसलमानी देश सा ऐसा लगता है।

मजहब ही वह धुरी है, जिसपर उनकी संस्कृति, राजनीति और अर्थनीति चक्कर लगाती है। अमीर और मुल्ला—ये ही दो वर्ग हैं, जिनके हाथ में इनका भाग्य-सूत्र है। कुरान के कुछ सूत्र याद रखना और तुर्की या अरबी भाषा जानना तो यहाँ के लिए महामंत्र है। बढ़िया हालत में रखी जानेवाली मस्जिदों में वे नमाज पढ़ते हैं, मुसलमानी पर्व और त्योहारों को मनाते हैं, मुसलमानी रीति पर शादी-श्राद्ध करते हैं। सूअर या कुत्ते के नाम से ही घृणा करते हैं। मक्का जाना जीवन की चरम साधना है। वे चीन को मातृभूमि नहीं समझते, टर्की की ओर ही ध्यान रखते और पान-इस्लाम के नाम से ही आह्लादित हो उठते हैं।

किन्तु, उनपर चीनी प्रभाव भी कुछ कम नहीं। उनकी पोशाक चीनियों की तरह की होती है—सिर। झब्बेदार फेज

टोपी के। अपने दैनिक जीवन-व्यवहार में चीनी भाषाओं का ही प्रयोग करते हैं। तुर्की सूरत-शकल सदियों के रक्त-मिश्रण से दुर्लभ हो गई है, उनका रूप-रंग चीनियों की तरह ही होता है। जो चीनी उनसे शादी-ब्याह करते, उन्हें मुसल-मानी मजहब स्वीकार करना पड़ता है।

चीन के मुसलमानों में इस समय तीन दल हैं—पुराना, नया और आधुनिक दल। आधुनिक दल विज्ञान को अप-नाना और मुल्लों का तिरस्कार करना पसंद करता है। बाकी दोनों दल इस दल से संयुक्त मोर्चा लेते हैं। उत्तर-पश्चिम में मुसलमानों के जो चार अमीर थे, वे आधुनिक दल के ही।

उनमें हुंग-कुई सबसे बड़ा अमीर था। निंगसिया शहर के ६० सैकड़े सम्पत्ति का मालिक। उसके हरम में बीवियों की भरमार। इस पर भी उसे नई बीवी का शौक चर्राया। चारों ओर से तस्वीरें मँगाई जाने लगीं—सबसे अच्छी सूरत पर पचास हजार डालर ईनाम बोला गया। फिर, हवाई जहाज पर चढ़कर शांघाई पहुँचा और वहाँ से एक ईसाई मेम को लाकर अपनी हरम में दाखिल किया।

एक अमीर के पास इतना पैसा कि वह नई बीबी ढूँढ़ने में ५० हज़ार डालर खर्च करे—तो गरीब की हालत खराब होनी ही थी। आखिर ये रुपये आये कहाँ से ?

किसान तबाह, मजदूर फटे-हाल। टैक्स का बोझ जनता की कमर तोड़ रहा। खरीद-बिक्री पर टैक्स, घरेलू जानवर पर टैक्स, ऊँट पर टैक्स, नमक पर टैक्स, अफीम, भेंड़, सौदागर, कबूतर, जमीन, नाव, सिंचाई, मील का पत्थर, घर, लकड़ी, चक्की, उत्सव, तम्बाकू, शादी, तरकारी—कोई चीज़ नहीं बची, जिसपर टैक्स नहीं वसूल किया जाता। घर,

सबसे बढ़कर बात तो यह थी कि हर किसान-परिवार को अपने एक नौजवान को उसकी सेना के लिए देना पड़ता। अगर घर में नौजवान नहीं हो, तो, १५० डालर बदले में। सैनिकों को कोई मुशाहरा नहीं दिया जाता, उल्टे उन्हें अपने घर से खाना और कपड़ा लाना पड़ता। इस तरह उसने चालीस हजार सैनिक एकत्र कर रखे थे।

नाना तरह के टैक्स और कर्ज से तबाह किसान अपनी जमीन मिट्टी के मोल बेचते, जिसे उसके अफसर या महाजन खरीदते। बहुत-सी जमीन तो उजाड़ पड़ी। खेत-मजदूरों को मुश्किल से कुछ दिया जाता।

सबसे बढ़ कर इधर अमीर ने जापानियों से रब्त-जब्त बढ़ाना शुरू किया था। निंगसिया शहर में जापानी दूतावास ही नहीं, जापानी हवाई जहाज का अड्डा भी बन चुका था।

इसी स्थिति में कियांग्सी की लाल सेना और सोवियत-सरकार शेन्सी-कांसू पहुँची और दूरदर्शी साम्यवादियों को यह मालूम करते देर नहीं लगी कि उनकी सफलता का सारा दारमदार इस बात पर है कि मुसलमान जनता के दिल को वे कहाँ तक अपनी ओर आकृष्ट कर पाते हैं। उन्होंने १९३६ में ही मुसलमानों के बारे में अपनी यह नीति घोषित की—

१. जितनी तरह के सर-टैक्स हैं, उन्हें उठा देना।

२. मुसलमानों को घरेलू स्वतंत्रता-प्राप्त प्रजातंत्र कायम करने में मदद करना।

३. जबर्दस्ती सैनिक भर्ती रोकना।

४. सभी तरह के कर्जों का बिल्कुल मंसूख करना।

५. मुस्लिम संस्कृति की रक्षा करना।

६. सभी सम्प्रदायों की धार्मिक स्वतंत्रता की गारंटी करना।
७. जापानी-विरोधी मुस्लिम सेना तैयार करने में मदद देना।
८. चीन, बहिर्गत मंगोलिया, सिंकियांग और सोवियत-रूस के मुसलमानों को एक सूत्र में आबद्ध होने में मदद करना।

यह प्रोग्राम ऐसा था, जिसमें मुसलमानों के हर वर्ग और तबके को अपनी ओर खींचने के लिए काफी अपील थी। जो कट्टर मुल्ले थे उन्होंने भी इसमें अपने लिए कुछ पाया— उन्होंने समझा, पान-इस्लाम का उनका स्वप्न अब सार्थक हो सकेगा और आधुनिक दल के धर्म-विरोधी कारनामों से उन्हें नजात मिलेगी। कर-भार, कर्ज और जबर्दस्ती की भर्ती से परीशान मुसलमान जनता ने तो इसमें अपने लिए मुक्ति का सन्देश ही देखा। यही नहीं, लाल सेना के लिए आदेश निकाला गया—

१. मुसलमानों के घर में बिना उनकी राय के मत घुसो।
२. मस्जिद और मुल्ला का किसी तरह का अपमान मत करो।
३. मुसलमानों के सामने सूअर और कुत्ते का नाम मत लो और न यह पूछो कि तुम सूअर का गोश्त क्यों नहीं खाते?
४. मुसलमानी मजहब को छोटा मजहब और चीनी मजहब को बड़ा मजहब मत कहो।

मुसलमानों में काम करने के लिए खासकर पार्टी के मुसलमान सदस्यों को भेजा जाता। लाल-नाटक-मंडली में

मुसलमानों के लिए खास नाटक तैयार कराये गये, जिनमें मुसलमानों की ऐतिहासिक और सामाजिक घटनाओं के आधार पर क्रान्तिकारी नतीजों की ओर इंगित होता। गाँव-गाँव में नाटक खेले जाते। पर्चे, पोस्टर और अखबार चीनी और अरबी भाषाओं में छपवाकर लाखोंलाख की तादाद में बाँटे जाते। आम सभायें होतीं, जिनमें कुशल वक्ता सोवियत के प्रोग्राम की व्याख्या करते और धीरे-धीरे उनमें वर्ग-संघर्ष के बीज बोकर उनकी कट्टरता को धर्म के क्षेत्र से हटाकर आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में ले जाने की चेष्टा करते।

इन प्रचारों और प्रयत्नों का सुफल थोड़े ही दिनों में दिखाई पड़ने लगा। जिस समय लाल सेना ने उस अमीर के कान्सू और निंगसिया के भूभाग पर चढ़ाई की, न तो उसकी सेना ने जमकर लड़ाई ली और न किसानों ने ही कोई उपद्रव मचाया। वरन्, उसके बहुत-से सैनिक भाग कर लाल सेना में चले आये और बहुत-से किसान-नौजवानों ने लाल सेना में अपने नाम लिखाये। इन लोगों को लेकर १५ वीं लाल सेना के अन्दर एक खास मुस्लिम सेना तैयार की गई। अपने लड़ने की ताकत और सूरत-शकल के कारण इस सेना ने लाल सेना में अपना खास स्थान बना लिया। साधारण चीनी लोगों से ऊँचा कद, तगड़ा शरीर, घनी दाढ़ी, साँवली सूरत, बादामी आँखें—उनमें कई तो बहुत ही खूबसूरत भी दीखते। वे बड़ी-बड़ी तलवारें रखते, जिनके एक ही झटके में दुश्मन के सर जमीन पर लोट जायँ।

एक ही वर्ष के अन्दर इस लाल मुसलमानी सेना में काफी वर्ग-जागृति आ गई। सैनिकों को जिन्दगी में पहली बार पढ़ने-लिखने का मौका मिला। पहले तो अपनी धार्मिक पुस्तकें

पर ही टूटे, किन्तु, धीरे-धीरे "साम्यवादियों के घोषणा-पत्र" "वर्ग-संघर्ष" आदि पुस्तकें भी पढ़ने लगे। इनमें से सैकड़े पचीस तो साम्यवादी पार्टी में भी शामिल हो चुके हैं।

"हम चीनी और मुसलमान भाई-भाई हैं। हम मुसलमानों के रगों में भी तो चीनी खून है। हम सबकी जन्मभूमि तो चीन-माता ही है न? फिर, हम आपस में क्यों लड़ें? हमारे समान शत्रु तो हैं जमीन्दार, पूँजीपति और महाजन—या हमारे तानाशाह शासक और जापानी। हमारा उद्देश्य एक है—इन्कलाब!"

"लेकिन अगर इन्कलाब आपके मजहब में खलल डाले, तो?"

"क्यों खलल डालेगा? लाल सेना तो हमारी नमाज और इबादत पर कोई बंधन नहीं डालती?"

"जरा इस ढंग से सोचिये। आपके मुल्ले तो ज्यादातर धनी हैं, वे जमीन्दार हैं, महाजन हैं। इन लोगों का हित इसी में है कि सोवियत का विरोध करें। अगर इन्होंने विद्रोह का झंडा उठाया, तो आप क्या करेंगे?"

"सब मुल्ले धनी ही नहीं हैं। हमारी टुकड़ी का कमांडर तो मुल्ला ही है—वह क्यों विद्रोह करेगा?"

"मान लीजिये, कुओ-मिन्-तांग ने मुल्लों में से कुछ को मिला लिया, तब आप क्या करेंगे?"

"हम उन्हें सजा देंगे। मुल्ले बुरे भी तो हो सकते हैं। बुरों को हम क्यों नहीं सजा देंगे?"

इस तरह का वार्तालाप आप इन सैनिकों में होते हुए पायेंगे। इस सम्बन्ध में बहस-मुबाहसे भी हुआ करते हैं। 'मुस्लिम इन्कलाब' पर घनघोर बहस होती है, जमीन के

बँटवारे तक जब बहस पहुँचती, तो सवाल उठता, मुसलमान जमीन्दारों की सम्पत्ति जब्त करनी चाहिये कि नहीं। कुछ कहते, नहीं। ज्यादा लोग चिल्ला उठते, क्यों नहीं? आखिर एक मजहब के होने से ही किसी को हमारा खून चूसने का कौन-सा अधिकार हो जाता है? मुसलमानों और चीनी लोगों में एकात्मता लाने के लिए क्या-क्या करना चाहिये, इसपर भी कम गरम बहस नहीं होती।

निंगसिया में तो मुस्लिम-सोवियत-सरकार भी कायम कर ली गई है। लाल सेना की मातहत के गाँवों की सोवियत ने अपने-अपने गाँवों से २०० प्रतिनिधि चुनकर भेजे। चुने प्रतिनिधियों में कुछ मुल्ले, शिक्षक, व्यापारी और दो-तीन छोटे जमीन्दार थे—किन्तु, अधिकांश थे किसान और खेत-मजदूर। सोवियत ने अपना अध्यक्ष चुना, फिर प्रस्ताव पास किये। लाल सेना को पूर्ण सहायता देने, जापान-विरोधी मुस्लिम सेना तैयार करने, गरीब-संघों का संगठन करने आदि के प्रस्ताव पास हुए और अन्तिम प्रस्ताव द्वारा टैक्स वसूल करने वाले के पद को हटा दिया गया!

# संयुक्त मोर्चा

# संयुक्त मोर्चा—क्यों और कैसे

अपने जन्म के शुरू से ही, प्रारम्भ के एक छोटे-से अर्से को छोड़ कर, चीनी साम्यवादी पार्टी संयुक्त मोर्चे की हिमायत करती रही है। शुरू-शुरू जब साम्यवादी पार्टी कायम हुई और मजदूरों में जोरों से काम शुरू हुआ, तब राष्ट्रीय सरकार की ओर से दमन शुरू हुआ था। उस समय साम्यवादी पार्टी ने कुओ-मिन्-तांग को पूँजीवादियों की संस्था कहकर तिरस्कार किया था। किन्तु, यह गलती तुरत महसूस की गई। कुओ-मिन्-तांग से मिलकर एक संयुक्त मोर्चा बनाया गया और कुछ ही दिनों में चीन में क्या-से-क्या हो गया।

किन्तु, च्यांग-काई-शेक और उसके तानाशाह दोस्तों ने इस मोर्चे को बेरहमी से बरबाद कर दिया। इस मोर्चे के टूटने का नतीजा हुआ भीषण गृहयुद्ध। नौजवानों के रक्त और गरीब देश के धन का स्वाहा कर इस गृहयुद्ध की आग को वर्षों तक प्रज्वलित रखा गया।

इधर यह गृहयुद्ध चल रहा था उधर साम्राज्यशाहों का कुचक्र चीन को बर्बादी की ओर लिये जा रहा था। इन साम्राज्यशाहों में जापान की सबसे अधिक चाँदी थी। एक पड़ोसी देश होने की वजह से जापान को कितनी ही सहूलियतें प्राप्त थीं। इन सहूलियतों का सदुपयोग उसने चीन को अपने खूनी पंजे में लाने के लिए किया।

जिस समय च्यांग-काई-शेक ने सोवियत को नष्ट करने के लिए पहला धावा शुरू किया, जापान ने मंचूरिया पर कब्जा कर लिया। दूसरे धावे के समय जापान ने शांघाई पर चढ़ाई की। इधर तीसरा धावा हो रहा था, उधर जेहोल पर जापान अपना झंडा उड़ा रहा था। यों ही, चौथे-पाँचवें धावों के समय होपी और चहार भी चीन के हाथ से निकल कर जापान के कब्जे में चले गये। नौ वर्षों के इस गृहयुद्ध के अन्दर ही चीन की जमीन का पाँचवाँ हिस्सा जापानियों के हाथ में चला गया। इस पाँचवें हिस्से जमीन में चीन की अपार सम्पत्ति लगी या छिपी थी। सैकड़े ४० रेलवे, सैकड़े ८५ गैर-आबाद उपजाऊ जमीन, कोयले का एक बड़ा हिस्सा, सैकड़े ८० लोहे की खानें, सैकड़े ३७ सखोताम जंगल, और सैकड़े ४० बाहरी व्यापार भी इस भूभाग के साथ जापान के हाथ में चला गया। चीन के सैकड़े ७५ कच्चे लोहे और सैकड़े ५० कपड़े के कारखानों पर जापान का कब्जा हो गया। मंचूरिया के हाथ से जाने से चीन ने अपने व्यापार का एक बड़ा अच्छा बाजार खो दिया और खो दिया कच्चे मालों का एक अपूर्व भंडार।

जिस समय जापान ने, गृहयुद्ध से फायदा उठा कर, १९३२ में मंचूरिया पर पहले पहल चढ़ाई की, तभी सोवियत के सभापति माव-से-तुंग ने यह स्पष्ट घोषणा की कि चीनी सोवियत इस युद्ध से तटस्थ नहीं रह सकती और हमारी लाल सेना जापानी साम्राज्य से युद्ध करने को तैयार है। किन्तु, सोवियत या लाल सेना क्या करे? च्यांग-काई-शेक तो उसे ही घेर कर तबाह करने पर तुला हुआ था। फिर, जब १९३५ ई० अगस्त में जापानी सेना उत्तरी चीन के अन्य हिस्सों की ओर बढ़ी, तो सोवियत-सरकार और चीनी साम्य-

वादी पार्टी की केन्द्रीय समिति ने चीनी राष्ट्र के हर वर्ग और अधिवासी के नाम एक अपील निकाल कर इस बात पर जोर दिया कि इस वक्त चीनी राष्ट्र को, जिसे एक आम खतरे का सामना करना पड़ रहा है, अपने आपसी झगड़ों, श्रेणी-युद्धों और राजनीतिक मतभेदों को भुला कर सिर्फ एक नारा बुलन्द करना चाहिये और वह नारा है—भीतरी झगड़ों के रहते हुए भी मिल कर विदेशी दुश्मन से लड़ो। अपील में संयुक्त मोर्चे का एक ब्योरेवार कार्यक्रम भी था। इसी तरह १९३७ में जब जापान ने इनर मंगोलिया में साजिशें शुरू कीं, तो चीन की सोवियत-सरकार और लाल सेना की ओर से राष्ट्रपति माव-से-तुंग और सेनापति चू-तेह के दस्तखतों से एक अपील नानकिंग की सरकार, चीनी फौजी अफसरों और सैनिकों, राजनीतिक पार्टियों, जन-संस्थाओं, अखबारों, विद्यार्थियों और नौजवानों के नाम प्रकाशित की गई, जिसमें फौरन ही जापानी साम्राज्य के खिलाफ एक सम्मिलित मोर्चा बनाने को कहा गया। उसी साल लाल सेना की ओर से भी एक अपील निकली थी, जिसमें यह स्पष्ट कर दिया गया था कि जापान के खिलाफ की जाने वाली हर कार्रवाई में लाल सेना साथ देने को तैयार है।

किन्तु, च्यांग-काई-शेक पर इन अपीलों का कोई भी असर क्यों पड़ने लगा? वह जापानियों की ओर से आँख मूँद कर बार-बार लाल सेना और सोवियत पर चढ़ाई करके राष्ट्र को दुर्बल बनाता गया।

माव-से-तुंग ने एक विदेशी पत्रकार से कहा था—"इस समय चीनी जनता के निकट एक ही सवाल है—वह

है, जापानी साम्राज्यशाही के खिलाफ युद्ध करना। हमारी सोवियत की वर्त्तमान नीति तो इसीपर निर्भर है। जापान के युद्ध-देवता चीन पर कब्जा करना और चीनी जनता को अपना गुलाम बनाना चाहते हैं। उनकी चढ़ाइयों को रोकना और उनकी आर्थिक और सैनिक विजय की आकांक्षा को तहस-नहस करना सोवियत-सरकार का सर्वप्रमुख और सर्व-प्रथम कर्त्तव्य है।"

च्यांग-काई-शेक द्वारा बार-बार ठुकराये जाने पर भी, चीन के साम्यवादियों ने अपने इस कर्त्तव्य को छोड़ा नहीं। बिना किसी निराशा के वे लगे रहे इस प्रयत्न में। च्यांग-काई-शेक से निराश हो, उन्होंने चीन की साधारण जनता और सेना के साधारण सैनिकों से तरह-तरह से अपील करना शुरू किया। अपने पत्रों में, व्याख्यानों में, खासकर अपने नाटकों में वे इसी बात पर सबसे ज्यादा जोर देते। गाँव-गाँव में साम्यवादी नौजवान और नवयुवती पहुँचते और ग्रामीणों पर अपनी यह आन्तरिक अभिलाषा प्रकट करते। यही नहीं, जब कभी राष्ट्रीय सेना के सैनिकों से उनकी मुलाकात होती— या तो युद्ध-क्षेत्र में, या कैम्पों में—उनपर भी अपनी यह इच्छा निष्कपट रूप में रख देते। लाल सेना ने नियम बनाया कि कुओ-मिन-तांग की सेना के सैनिकों को गिरफ्तार करने पर उनसे दुर्व्यवहार नहीं किया जाय, उन्हें हिफाजत से रखा जाय और जापान-विरोधी संयुक्त मोर्चे की शिक्षा देकर उन्हें फिर उनकी फौज में भेज दिया जाय, जिसमें वे अपने साथियों पर ये बातें प्रकट कर सकें। किसानों, मजदूरों और दूसरे मुसीबतजदा तबकों को खूब मिलाया जाता और उन-पर अपना अभिप्राय स्पष्ट किया जाता।

सेनापति पेंग-तेह-ह्वाई ने एक बार अपनी सेना में एक व्याख्यान दिया था, जिससे इस संयुक्त मोर्चे की नीति पर काफी प्रकाश पड़ता है। उसने कहा था—

"हम इन जिलों में चार कामों से घूम रहे हैं—(१) हमें सोवियत की सीमा का विस्तार करना है (२) दूसरी और चौथी सेना के आगमन के लिए रास्ता साफ करना है (३) इस जिले के मुसलमान फौजी सरदारों की ताकत को खतम करना है और (४) उनकी सेना से सीधे मिलकर संयुक्त मोर्चा बनाना है।

"हमें संयुक्त मोर्चे के आधार को विस्तृत बनाना है। जो सुफेद सेनापति हमसे सहानुभूति रखते हैं, उन्हें अपने पक्ष में साफ-साफ ले आना है। उनमें कुछ लोगों से तो हमारा काफी सम्बन्ध कायम हो गया है। उस सम्बन्ध को हमें घनिष्ट बनाना है—खत-किताबत से, पर्चे और नोटिस से, प्रेमोपहार भेजकर, गुप्त समितियों की सहायता से।

"मुस्लिम जनता को तो हमें तुरत-से-तुरत आजाद करना है और ज्योंही वे संगठित हों, उन्हें हथियारबन्द करना और उनका अपना प्रजातंत्र कायम करना है। शीघ्र-से-शीघ्र हमें एक जापान-विरोधी मुस्लिम-सेना का संगठन कर ही लेना है।

"अपनी सेना में भी हमें सैनिकों को संयुक्त मोर्चे की नीति की शिक्षा जोरों से देना है। हमारी सेना ने इधर कितनी ही गल्तियाँ की हैं। जिन सुफेद सेनाओं को हमने शान्तिपूर्वक हटने का वचन दे दिया था, उनपर भी चढ़ाइयाँ की गईं। कई मरतबा सुफेद सैनिकों की राइफलें नहीं लौटाई गईं।

बार-बार हुक्म देने पर भी, लौटाने में आगा-पीछा किया गया। यह अनुशासन का भंग नहीं है—यह तो सेनापति की नीति के प्रति अज्ञानता और अविश्वास है। कई बार तो ऐसी आज्ञा देने के कारण सेनापति के हुक्म को क्रान्ति-विरोधी तक कह डाला गया। एक बार एक सेनापति के पास सुफेद सेना के सेनापति ने एक खत भेजा। उस खत को पढ़ा तक नहीं गया, उसे फाड़ कर यह कहते हुए फेंक डाला गया कि ये सुफेद सब एक-से हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि हमें अपने सैनिकों और सेनापतियों को और भी शिक्षित करना है। मालूम होता है, हमारा पहला व्याख्यान सब बातों को साफ नहीं कर सका है। हम उनसे आलोचना करने को कहें और उन आलोचनाओं के आधार पर हम अपनी नीति में तरमीम करें। बहस और व्याख्या को उत्साहित किया जाय। हमें उनपर यह साफ कर देना है कि हमारी संयुक्त मोर्चे की नीति सुफेद लोगों को धोखा देने के लिए नहीं है, लेकिन यह एक बुनियादी नीति है, जिसपर पार्टी की मुहर लगी हुई है।

"कियांग्सी में च्यांग-काई-शेक ने हमारे और हमारी नीति के खिलाफ गन्दी-गन्दी झूठों का प्रचार कर रखा था। और हमें इस तरह घेर रखा था कि हम बाहर की चीनी जनता को सही बातें बता भी नहीं सकते थे। अब उसके फैसिस्ट एजेन्ट यहाँ भी घिनौनी झूठी बातों का प्रचार हमलोगों की जापान-विरोधी नीति के खिलाफ कर रहे हैं। वे बतलाते हैं कि हम जापान से साधनों में कम हैं, इसलिए यह मोर्चा व्यर्थ साबित होगा। च्यांग-काई-शेक तथ्यों को दबाता है। वह यह नहीं बतलाता कि चीन का यह साम्राज्य-

चीन के संयुक्त मोर्चे का निशान
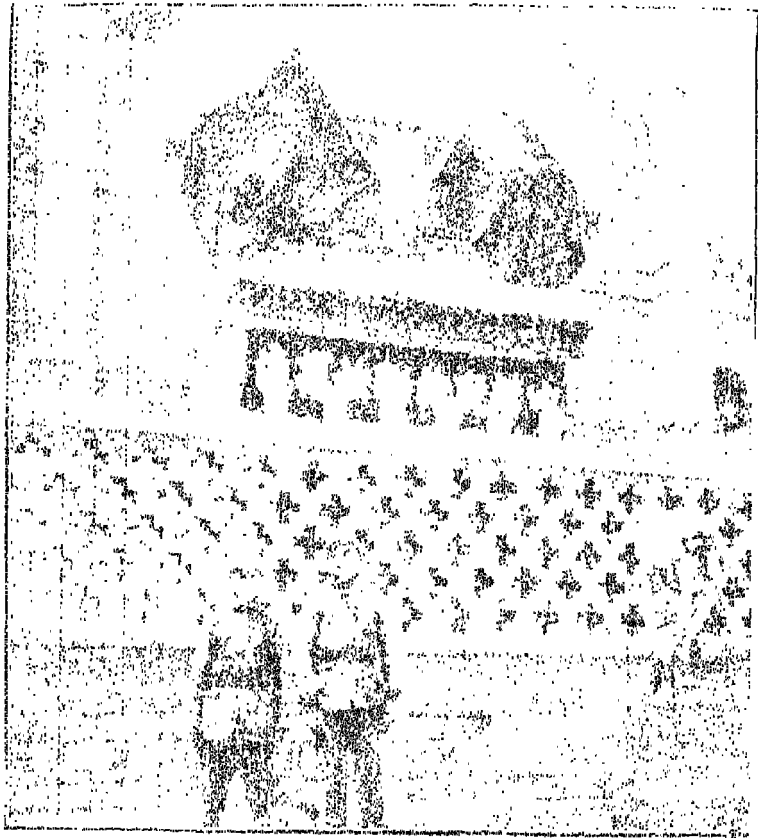
राष्ट्रीय झंडा और लाल झंडा साथ फहराया जा रहा है।

विरोधी आन्दोलन अकेला नहीं है—सोवियत रूस हमारी मदद करेगा और मदद करेगी खुद जापान की पीड़ित जनता। हमें सुफेद सेना को अपनी जापान-विरोधी नीति का आधार बना देना है।

"शान्सी के पूर्वी हमले के बाद यहाँ कान्सू और निंगसिया में आकर हमारे साथी कुछ उत्साहहीनता का अनुभव करते हैं। वहाँ उन्हें जो सहानुभूति और मदद मिली, यहाँ न पाकर वे कभी-कभी उदास हो जाते हैं। बात यों है कि यहाँ की जनता बहुत ही गरीब, फलतः मूर्ख है। इनमें राजनीतिक चेतना है नहीं। लेकिन, निराशा की कोई बात नहीं। डट कर काम करो। ये भी हमारे भाई ही हैं और हमारे सद्व्यवहारों का असर इनपर पड़ेगा ही। चाहे सुफेद सैनिक हो, या मुसलमान किसान—उन्हें अपने उद्देश्य बतलाने के एक भी मौके को हम नहीं खोवें। हमलोग जोरों से काम नहीं कर रहे हैं।

"हमें जनता से आग्रह करना चाहिये कि वह क्रान्तिकारी कार्यों में स्वयं आगे बढ़े। हम मुसलमान जमीन्दारों को न छुएँ—लेकिन हम जनता से साफ कह दें कि उनका धन छीनने का उन्हें अख्तियार है। अगर वे ऐसा करेंगे तो हम उनके संघों की रक्षा करेंगे। और, यह धन तो उनकी मेहनत की ही उपज है, अतः इसपर उनका ही अधिकार है। जनता की राजनीतिक चेतनता को हम जाग्रत करें। आज तक उन में साम्प्रदायिक विद्वेष ही रहा है—उसको हटा कर उनमें राजनीतिक चेतनता भरें। जनता के अन्दर की गुप्त-समितियों को हम कर्मशील बनावें और उनके द्वारा जापान-विरोधी मोर्चे को दृढ़ करें। हमें मौलवियों से घनिष्ठता पैदा करना

चाहिये और उनसे जापान-विरोधी युद्ध में नेतृत्व करने को आग्रह करना चाहिये। हम एक-एक मुसलमान नौजवान को इस मोर्चे के लिए संगठित करें।"

एक बार पेंग के निकट यह खबर लाई गई कि लाल सेना ने एक सुफेद सेनापति को गिरफ्तार किया और उसे कुछ घायल करके छोड़ा। पेंग ने इसपर अजीब हो-हल्ला मचाया। रेडियो से समूची सेना को आगाह किया कि यह बड़ी बुरी बात हुई। यह संयुक्त मोर्चे की नीति के बिल्कुल खिलाफ बात हुई। "एक नारा दस गोलियों के बराबर है"--उसने अपने अनुयायियों को यह बार-बार याद दिलाया।

पेंग के उपर्युक्त व्याख्यान और कार्य से चीनी साम्यवादियों के संयुक्त मोर्चे के क्या और कैसे पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है। इसकी व्याख्या और टीका की आवश्यकता नहीं।

# सफलता के पथ पर

च्यांग-काई-शेक ने भले ही इस संयुक्त मोर्चे की नीति को ठुकराया, चीनी जनता और सैनिकों पर साम्यवादियों के लगातार प्रचार ने असर डालना शुरू किया।

अजीब हालत थी। एक ओर जापानी सेना धड़ाधड़ आगे बढ़ती और प्रान्त-पर-प्रान्त कब्जे में कर रही थी। उसके हवाई जहाज चीनी सीमा पर गोले बरसाते और उसकी सेना कत्ले-आम मचाये थी। दूसरी ओर च्यांग-काई शेक बार-बार यह घोषणा करता कि पहले घरेलू झंझट को खतम करना है—जो अब खत्म ही होने पर है! लोगों को बार-बार यह बतलाया जाता कि लाल सेना अब खतम ही होने को है, बस, जरा-सी देर है; जिस देर को तुरत खतम करने के लिए वह अपनी सेना पर सेना भेजता, हवाई जहाजों से 'लोहे के अंडे' की वर्षा करता! हिन्दुस्तानी विदूषक की तरह—'ले मारा'—कह-कह कर वह चीनी जनता और सेना को नौ वर्षों तक उल्लू बनाये रहा।

लेकिन, धीरे-धीरे लोग इस गृहयुद्ध से ऊबने लगे। चारों ओर जापानियों के खिलाफ प्रतिशोध की भावना जगी। गृहयुद्ध की व्यर्थता की चर्चा होने लगी। 'राष्ट्रीय-मुक्ति-संघ' नामक एक संस्था इसी समय स्थापित हुई, जो बिल्कुल जापान-विरोधी संस्था थी और जिसमें चीन के सभी तबके के नेतागण शामिल थे। जगह-जगह जापान-विरोधी प्रदर्शन

होने लगे। विद्यार्थियों में जापान-विरोधी भावनायें चरम सीमा तक पहुँचीं। जापानी कारखानों के चीनी मजदूर हड़ताल-पर-हड़ताल करने लगे।

तमाशा यह कि च्यांग-कार्ई-शेक लोगों के इस जापान-विरोधी भावना को जानते हुए भी अब तक चुपचाप जापानी सरकार से शान्ति को सुलह किये हुए था। जब ये प्रदर्शन जंगी रूप लेने लगे और हड़तालें शुरू हुईं तो जापान ने च्यांग से यह माँग पेश की कि वह इस आन्दोलन को दबावे, नहीं तो खैरियत नहीं। कायर च्यांग-काई-शेक ने घुटने टेक दिये। राष्ट्रीय मुक्ति-संघ के सात सुप्रसिद्ध नेता गिरफ्तार किये गये जिनमें एक सुप्रसिद्ध व्यापारी, एक नामी वकील, एक प्रतिष्ठित शिक्षक और एक प्रसिद्ध लेखक थे। यही नहीं, कलम के एक झटके में ही उसने चौदह राष्ट्रीय अखबारों को बन्द कर दिया। शांघाई की जापानी मिलों में मजदूरों ने जो हड़तालें कीं उन हड़तालों को बेरहमी से कुचला गया। च्यांग की सरकार के इन कारनामों से जापान का दिमाग कुछ ऐसा चढ़ गया कि जब सिंगताव में मजदूरों ने हड़ताल की तो जापान अपना लड़ाकू जहाज लेकर शहर में पहुँचा, हड़तालियों का कत्लेआम किया, शहर पर कब्जा कर लिया और तब हटा जब नानकिंग की सरकार ने नाक रगड़ कर यह स्वीकार किया कि अब आइन्दे से जापानी मिलों में हड़ताल नहीं होगी।

किन्तु, जापान विरोधी भावनायें कितने जोर पर थीं—इसे जानने के लिए तो हमें उत्तरी चीन की ओर देखना होगा जहाँ सोवियत-सरकार अपना विस्तार कर रही थी, और उसको नेस्त-नाबूद करने के लिए जहाँ च्यांग-काई-शेक सेना-पर-सेना भेज रहा था, और जहाँ उसकी सेना में ही उसके

प्रति विद्रोह की भूमिका तैयार हो रही थी।

सोवियत का संहार करने के लिए उसने जिसे अपना प्रतिनिधि बनाया था उसका नाम था चांग-स्यूह-ल्यांग। वह चीन की सम्पूर्ण सेना का उप-सेनापति था, यानी, पद-मर्यादा में च्यांग-काई-शेक के बाद उसीका स्थान था। यही नहीं, च्यांग-काई-शेक की सरकार के प्रधान-मंत्री का पद भी उसे प्राप्त था। और, यही आदमी है, जिसके कारण चीनी साम्यवादियों की 'संयुक्त मोर्चा' की नीति च्यांग-काई-शेक को स्वीकार करनी पड़ी—यह कितने आश्चर्य की बात है!

हम पहले इस व्यक्ति को ही अच्छी तरह जान लें।

इसका पिता चांग-सो-लिन सुप्रसिद्ध लड़ाकू और मंचूरिया के तीन करोड़ अधिवासियों का एकछत्र शासक था। पिता की मृत्यु के बाद चांग-स्यूह-ल्यांग मंचूरिया का शासक हुआ। उन दिनों वह एक उदार और आधुनिक विचारशील, खेल-कूद का शौकीन और रंगीन तबीयत का शासक समझा जाता था, जब कि १९३१ में जापान ने उसके देश पर चढ़ाई की। संयोगवश, वह उस समय टाइफायड से सख्त बीमार पेकिंग के अस्पताल में पड़ा था। जब उसे अपने देश के संकट की यह खबर लगी, तो उसने अपने 'बड़े भाई' च्यांग-काई-शेक को लिखा कि मेरे देश की रक्षा कीजिये। किन्तु, च्यांग ने उसे यह कह कर धैर्य दिया कि मुकाबला क्यों किया जाय—राष्ट्र-संघ से यह मामला तय करा लिया जायगा। यों, बिना एक गोली की आवाज़ हुए, तीन करोड़ आबादी का यह प्रान्त जापान के कब्जे में चला गया और उसी समय, मानो अपनी खीस निकालने को, च्यांग ने सोवियत-सरकार पर पहली चढ़ाई कर दी!

मंचूरिया की जो फौज थी, वह तुंगपो (उत्तर-पूर्वी) सेना कहलाती थी। अपने देश से निकाले जाने पर यह सेना चीन की 'बड़ी दीवाल' के नजदीक आकर अपने इस नौजवान सेनापति के साथ इस प्रतीक्षा में बैठी कि किसी अच्छे मौके पर जापानियों को अपने देश से भगा कर ही रहेगी। किन्तु, वह मौका नहीं आया—च्यांग की नीति के कारण जापान ने बढ़ते-बढ़ते जेहोल को भी उदरस्थ कर लिया। जेहोल के इस पतन से जब चीन भर में एक अजीब उत्तेजना फैल गई, तो तमाशा यह कि च्यांग ने सब दोष इस बेचारे नौजवान चांग-स्यू-ल्यांग पर थोप दिया और वह 'परिस्थितियों का अध्ययन' करने यूरोप को रवाना हुआ।

यूरोप पहुँच कर चांग-स्यू-ल्यांग की तारीफ इसमें नहीं रही कि उसने मुसोलनी, हिटलर और रामजे मैकडोनल्ड से भेंट की और अपनी गलती के कारण रूस नहीं जा सका, जहाँ जाने की उसकी बड़ी ख्वाहिश थी। किन्तु, सबसे बड़ा काम उसने यह किया कि अफीम की लत उसने सदा के लिए छोड़ दी और अपने उन बदमाश साथियों से भी पिण्ड छुड़ाया जो उसे विलासिता की ओर घसीट कर अपना उल्लू सीधा किया करते थे। जब १९३४ में वह चीन लौटा, लोगों ने देखा, उसके गालों पर लाली है, उसके पुट्ठों पर मांस है. वह अपनी उम्र से दस वर्ष छोटा मालूम पड़ता है, उसका दिमाग पहले से ही तेज था, अब मानो छुरे पर शान चढ़ गई। आते ही उसने तुंगपी-सेना की बागडोर अपने हाथ में ली और अपने देश मंचूरिया के उद्धार के लिए छटपटाने लगा। किन्तु, उसके 'बड़े भैया' च्यांग-काई-शेक ने विश्वास दिलाया कि घबराओ नहीं, मंचूरिया को मैं वापस लेकर ही छोड़ूँगा, जरा

पहले इन लाल डाकुओं की शरारत तो बन्द करो। उसने इस बात पर यकीन कर लिया और खुशी-खुशी अपनी १,४०,००० की सेना लेकर साम्यवादियों का दमन करने चला।

जब वह साम्यवादियों से लड़ने लगा, धीरे-धीरे उसपर यह विदित होने लगा कि वह जिनसे लड़ रहा है, वे 'डाकू' नहीं हैं—वे बड़े ही योग्य और देशभक्त व्यक्ति हैं और वे इतने शक्तिशाली हैं कि जल्द उन्हें दबा देना आसान बात नहीं। पहले उसे दो-एक बार सफलता भी मिली, किन्तु, १९३५ में, उत्तर-पश्चिमी सीमा पर लड़ते समय, उसकी सेना को उन्होंने दो बार बुरी शिकश्त दी। उसकी सेना के बहुत-से सैनिक तो लाल सेना से जा मिले, कैद भी कम न हुए।

जब वे कैदी सैनिक कुछ दिनों के बाद सियान आये, जहाँ कि उसका हेडक्वार्टर था, उन्होंने इस नौजवान सेनापति से सोवियत-जिलों की सुख-समृद्धि, लाल सेना के अनुशासन और ताकत एवं साम्यवादियों के संयुक्त मोर्चे के नारे की सच्चाई के किस्से सुनाये। "चीनी से चीनी क्यों लड़ें"—"लड़ना हो तो मिल कर जापानियों से लड़ो और मंचूरिया वापस करो"—लाल सेना के हर सैनिक की जबान पर यह नारा है और किस तरह उनका यह नारा तुंगपी सैनिकों के दिलों में तुरत घर कर जाता है, जब यह खबर चांग-स्यूह-ल्यांग को लगी, तो वह गम्भीरता से सोचने को बाध्य हुआ। और, इस सोच-विचार का एक ही नतीजा था कि साम्यवादियों से मिल कर जापान की ओर मुखातिब हुआ जाय। अपनी जन्मभूमि मंचूरिया के सपने उसे सताने लगे। उधर क्यांग-काई-शेक की नीति उसे दिन-दिन बुरी मालूम होती गई। क्यांग मंचूरिया को

लौटाने की बात कहाँ तक सोचता, नई-नई भूमि जापान को सौंपे जा रहा था—होपी, चहार, करीब-करीब पूरे उत्तरी चीन पर जापान का झण्डा लहरा रहा था!

चांग-स्यूह-ल्यांग साम्यवादियों की ओर धीरे-धीरे झुकने लगा। क्रमशः यह झुकाव मित्रता में परिणत हुआ। सोवियत-सरकार और उसमें एक गुप्त सुलहनामा भी हो गया। उसके मुताबिक तुंगपी सेना और लाल सेना में लड़ाई बन्द हो गई। निश्चय हुआ कि एक सेना दूसरी सेना को खबर दिये बगैर किसी तरह न बढ़े। लाल सेना के अफसर तुंगपी सेना की वर्दी पहन कर उसके सैनिक-विद्यालयों में गये और वहाँ लाल सेना की युद्धकला और साम्राज्य-विरोधी मोर्चे की राजनीतिक भित्ति का ज्ञान दिया। मंचूरिया-सम्बन्धी आँकड़े इकट्ठा किये गये और बताया गया कि चीन को कितनी हानि इस प्रदेश के खो देने से हुई है।

उस समय नानकिंग की सेना भी वहाँ थी—जिससे लाल सेना की लड़ाइयाँ हुआ करतीं। नानकिंग के खुफिया-विभाग के अफसर भी थे। उन्हें कुछ गड़बड़ तो जरूर मालूम होती, किन्तु, ये सब काम इतनी चुपचोरी से होते कि पता तक नहीं लगता कि कौन-सी अन्तर्धारा इस समय बह रही है।

एक अमेरिकन महिला-पत्रकार ने इस समय लिखा था—

"सियान की राजधानी सियान फू में एक अजीब हालत है। नौजवान मार्शल चांग-स्यूह-ल्यांग की जो सेना यहाँ लाल सेना के दमन के लिए रखी गई है, उसमें एक नई हवा बह रही है। उसके सैनिक अपने 'देश' के लिए अधीर हो रहे हैं, गृहयुद्ध से वे ऊब उठे हैं और नानकिंग-सरकार जापान को जिस तरह बढ़ने दे रही है, उससे उन्हें घृणा हो गई है।

छोटे-छोटे अफसरों में तो बगावत के चिह्न स्पष्ट नजर आते हैं। अफवाह यहाँ तक है कि चांग-स्यूह-ल्यांग अपने पहले के व्यक्तिगत सम्बन्ध को धता बता कर च्यांग-काई-शेक से खिंच रहा है और लाल सेना से सुलह कर जापान-विरोधी संयुक्त मोर्चे को सार्थक करने के लिए छटपटा रहा है।"

यह १९३६ के अक्टूबर में लिखा गया था। इसी अक्टूबर महीने में च्यांग-काई-शेक सियान पहुँचा और अपनी "साम्यवादी-विरोधी छठे धावे" की योजना चांग-स्यूह-ल्यांग के सामने रखी। चांग-स्यूह-ल्यांग ने च्यांग से निवेदन किया कि इस समय यह गृहयुद्ध बन्द हो, जापान-विरोधी संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा कायम किया जाय और रूस से मिल कर जापान का सामना किया जाय। किन्तु, च्यांग-काई-शेक ने एक न सुनी। उसने गरज कर कहा—"मैं तब तक कोई बात नहीं सुनूँगा, जब कि लाल सेना का एक-एक सैनिक कत्ल नहीं कर दिया जाता और एक-एक साम्यवादी जेल के सींखचों के अन्दर नहीं आ जाता।"

यही नहीं, उसने अपनी तूफानी पहली सेना को कांसू पर चढ़ाई करने को रवाना किया। नवम्बर के अन्दर ही दस डिवीजन सेना शेन्सी की सीमा पर पहुँच गई। ट्रेन-पर-ट्रेन गोली और बारूद से भरी सियान पहुँचने लगी। टैंक, आर्मर्ड-कार, मशीनगन और राइफलों का ताँता लगा दिया गया। सियान और लांचाऊ में एक सौ हवाई जहाजों के लिए अड्डे बनाये गये। डाक्टरों का इन्तजाम किया गया। यह भी खबर फैली कि इस बार जहरीली गैस का भी प्रयोग किया जायगा। उसने अपनी डायरी में गर्व से लिखा—"पन्द्रह दिनों में, नहीं

तो एक महीने के अन्दर तो जरूर ही, इन लाल डाकुओं का खातमा कर दिया जायगा।"

ठीक इसी समय, जापान ने स्वीय्वान पर चढ़ाई की, किन्तु, च्यांग-काई-शेक ने कुछ भी उस ओर ध्यान नहीं दिया। इसपर चांग-स्यूह-ल्यांग ने एक पत्र बहुत ही विनय के साथ च्यांग के पास भेजा। लिखा—"हमने अपनी सेना के सैनिकों से यह प्रतिज्ञा की थी कि जब कभी मौका आवेगा, उन्हें जापानियों से लड़ने की आज्ञा दी जायगी। अब तो हमें उस प्रतिज्ञा का पालन करना होगा, नहीं तो वे हमें और आपको भी धोखेबाज और बेईमान समझेंगे। और नहीं तो, हमें आप हुक्म दें कि हम अपनी सेना के एक हिस्से को स्वीय्वान के मोर्चे पर भेजें। हमें उम्मीद है कि एक लाख की सेना हम तैयार कर सकेंगे, जो आपके नेतृत्व में जापानियों के दाँत खट्टे करके ही रहेगी।" जब इस पत्र का कोई असर नहीं हुआ, तो चांग-स्यूह-ल्यांग खुद च्यांग-काई-शेक की सेवा में पहुँचा। अपनी इस जापान-विरोधी योजना के साथ उसने एक प्रार्थना और की, कि शांघाई के राष्ट्रीय-मुक्ति-संघ के उन सात विशिष्ट राजबंदियों को छोड़ दिया जाय। इसी प्रसंग में उसके मुँह से यह भी निकल गया—"आप जिस बेरहमी से देशभक्तिपूर्ण आन्दोलन को कुचलते हैं उसे देखते आपमें और युआन-शिह-काई की फौजी तानाशाही में कोई अन्तर नहीं रह जाता।" इसपर च्यांग-काई-शेक ने बिगड़ कर कहा था—"तुम्हारी राय ऐसी ही हो! किन्तु, सरकार तो मैं हूँ। मैं जो कुछ कर रहा हूँ, वह एक क्रान्तिकारी के सर्वथा उपयुक्त है।"

नौजवान मार्शल चुप लौटा। हाँ, च्यांग-काई-शेक ने प्रतिज्ञा की कि वह शीघ्र ही सियान आवेगा और उसकी सेना

से अपनी योजना बतावेगा। किन्तु, इसी समय दो बातें ऐसी हो गईं, जिन्होंने तुंगपी सेना का रुख बिल्कुल बदल दिया।

उसमें पहली बात थी, जर्मन-जापान-साम्यवादी-विरोधी सुलहनामे की स्वीकृति, जिसपर इटली ने भी मुहर लगाई। इटली ने मंचूरिया की विजय को स्वीकार कर लिया था, जिसके बदले जापान ने उसकी अबिसीनिया विजय को स्वीकार किया था। जब इटली ने मंचुकाओ को स्वतंत्र राष्ट्र मान कर उससे सम्बन्ध स्थापित किया, तो तुंगपी की सेना के क्रोध का पारावार न रहा। 'हम चीन से फासिज्म की जड़ उखाड़ कर ही दम लेंगे"—चांग-स्यूह-ल्यांग ने खुलेआम प्रतिज्ञा की। यही नहीं, च्यांग-काई-शेक अब तक जर्मन और इटालियन विशेषज्ञों से जो सहायता ले रहा था, उसकी ओर अब सन्देह से देखा जाने लगा। क्या इसका यह मतलब नहीं कि च्यांग-काई-शेक भी इस फासिस्ट गुट में शामिल है?

दूसरी बात और भी मार्के की थी। च्यांग ने अपनी पहली तूफानी सेना को हू-संग-नान नामक एक सुप्रसिद्ध सेनापति के अधीन भेजा था। यह आदमी नानकिंग का सबसे बड़ा युद्ध-कला-वेत्ता समझा जाता था। आते ही उसने लाल सेना पर धावा बोला। लाल सेना पीछे हटी—उसका उत्साह बढ़ा। वह जोरों से बढ़ने लगा। लाल सेना भी हटने लगी। किन्तु हटते हुए भी हू की फौज में अपने संयुक्त मोर्चे की नीति का प्रचार करने से नहीं चूकती। खैर, जब हू का मन बहुत बढ़ गया, तो एक रात अचानक चढ़ाई कर दी गई। जाड़े की रात। पाला पड़ रहा था। हाथ-बम का खोल हटाना भी मुश्किल पड़ता था। तो भी, लाल सेना ने ऐसी बहादुरी की कि दो टुकड़ी पैदल सेना और एक टुकड़ी घुड़सवार

सेना को तहस-नहस कर दिया। एक टुकड़ी सेना लाल सेना से आ मिली। हजारों राइफलें और दूसरी युद्ध-सामग्रियाँ लाल सेना के हाथ लगीं। बेचारा हू बची सेना को लेकर च्यांग के हुक्मनामे की राह देखने लगा। तुंगपी-सेना सोचने लगी—ये ही लोग हैं, जो साम्यवादियों का नाश करेंगे? नहीं, ये बहाने हैं। इसी बहाने वे चीन को जापान के हाथों बेच रहे हैं।

७ दिसम्बर १९३६ को च्यांग-काई-शेक एक हवाई जहाज से सियान पहुँचा, किन्तु, उसके पहले ही तुंग-पी की सेना ने जनरल यांग-हू-चेंग की सेना से मिल कर संयुक्त मोर्चे का एक कार्यक्रम तैयार कर लिया था। यांग-चू-चेंग की सेना की संख्या ४०,००० थी। यह सिपी सेना कही जाती थी—जिसका मतलब था उत्तर-पश्चिमी सेना। यह सेना भी 'लाल डाकुओं' के दमन के लिए ही शेन्सी भेजी गई थी, किन्तु, यह भी तुंगपी की सेना की तरह ही ऊब उठी थी। चांग-स्यूह-ल्यांग की सेना की संख्या १,३०,००० थी। यों दोनों सेनायें मिल कर १,७०,००० की संख्या तक पहुँचीं। इसकी कुछ भनक च्यांग-काई-शेक को भी लगी। अतः उसने अपने भतीजे को वहाँ पहले ही भेज दिया, जो राजधानी को अपनी मुट्ठी में किये हुए था। च्यांग-काई-शेक ने पहुँचते ही दोनों सेनाओं के प्रतिनिधियों से एक साथ मिलकर बातचीत करने से अस्वीकार कर दिया। वह उन्हें अलग-अलग बुलाकर साम, दाम, दंड, भेद दिखलाता रहा। चांग-स्यूह-ल्यांग को तो उसने एक बार अच्छी खासी डाँट भी बतलाई।

१० दिसम्बर को उसने जेनरल-स्टाफ की सभा बुलाई

और किसी की कोई सलाह या चेतावनी पर ध्यान नहीं देते हुए "छठे धावे" की योजना घोषित की। आम कूच का परवाना काट दिया गया और तुंगपी, सिपी और नानकिंग की फौज को १२ तारीख तक तैयार हो जाने का हुक्म दे दिया गया। यह स्पष्ट कर दिया गया कि यदि नौजवान मार्शल चांग-स्यूह्-ल्यांग जरा भी हुक्म मानने से हिचकिचाहट दिखलायेंगे, तो उनकी फौज से हथियार छीन लिये जायँगे और वह सेनापतित्व से हटा दिये जायँगे। उनकी जगह पर एक आदमी की भर्ती भी पहले से कर ली गई थी। इतना ही नहीं, यह भी खबर मिली कि च्यांग की खुफिया पुलिस चांग-स्यूह्-ल्यांग और यांग-हू-चेंग की फोज के उन लोगों के नाम नोट कर चुकी है, जिनका झुकाव साम्यवाद की ओर है और ज्यों ही आम कूच का डंका पड़ेगा, वे लोग गिरफ्तार कर कोर्ट मार्शल कर दिये जायँगे।

ऐसी ही परिस्थिति में चांग-स्यूह्-ल्यांग ने तुंगपी और सिपी के सैनिक अफसरों की एक सभा ११ दिसम्बर को १० बजे रात में बुलाई। उसके पहले ही तुंगपी और सिपी सेना की एक एक डिवीजन को चुपके-चुपके खबर कर दी गई कि वह राजधानी के निकट आकर हुक्म की प्रतीक्षा करे। हुक्म हुआ—च्यांग-काई-शेक को गिरफ्तार करो!

## च्यांग-काई-शेक कैद में

१२ दिसम्बर १९३६ के प्रभात ने कुछ अजीब दृश्य देखा। छः बजते-बजते तुंगपी और सिपी की सेनाओं के हाथ में सियान का शासन-सूत्र था। च्यांग-काई-शेक का गवर्नर गिरफ्तार कर लिया गया था। उसकी पुलिस ने आत्मार्पण कर दिया था। जेनरल-स्टाफ पूरा-का-पूरा निशस्त्र करके कैदी बना लिया गया था। खुफिया पुलिस के नीली कमीज-वाले जवानों के हाथों में जंजीर झूल रही थीं। हवाई अड्डे पर के सौ हवाई जहाजों पर विद्रोहियों का कब्जा था। पहले से जरा भी सुराग नहीं लगने पाया था, फलतः बिना किसी झंझट या खून-खराबी के ही ये सब बातें हो गईं।

हाँ, च्यांग-काई-शेक की गिरफ्तारी में कुछ झंझट हुई और थोड़ा खून भी बहा। वह सियान से दस मील दूर लितुंग नामक स्थान में ठहरा हुआ था, जहाँ गरम जल का सुप्रसिद्ध झरना है। आधी रात को मार्शल चांग स्यूह-ल्यांग के बडीगार्ड का कप्तान सन-मिंग-च्यू लितुंग के लिए रवाना हुआ। आधी राह पर उससे २०० तुंगपी सैनिक मिले। तीन बजे उन्हें लेकर मोटरों पर वह लितुंग पहुँचा और शहर के बाहर ही ५ बजे तक बैठा रहा। पाँच बजते ही पन्द्रह सैनिक एक लौरी में बैठकर च्यांग-काई-शेक के होटल के नजदीक उतरे। उनके उतरते ही च्यांग के साथियों ने उन्हें घेरा — फिर क्या था, गोलियाँ चलने लगीं।

तुंगपी सेना के शेष सैनिक भी आ पहुँचे। च्यांग-

काई-शेक के बडीगार्ड ने थोड़ी देर तक उनसे जबर्दस्त मुँठभेड़ की। लेकिन, यह थोड़ी देर ही च्यांग-काई-शेक के लिए बहुत थी। वह वहाँ से निकल चुका था। जब कप्तान सन उसके सोने के कमरे में पहुँचा, वहाँ उसका खाली बिस्तरा पड़ा था। कप्तान ने उसके कमरे और होटल की तिल-तिल तलाशी ली। फिर, वह होटल से लगे पहाड़ की बर्फीली चोटियों पर उसे खोजने चला। थोड़ी ही दूर पर उसे च्यांग का व्यक्तिगत नौकर मिला और उससे कुछ ही आगे खुद च्यांग-काई-शेक पाया गया। रात को पहने जाने वाली कमीज पर वह एक ढीलाढाला लबादा डाले था। उसके पैर खाली थे और उसके हाथ की अँगुलियाँ चट्टानों पर कई जगह कट गई थीं, जिससे खून टपक रहा था। जाड़े के मारे वह थरथर काँप रहा था। उसके नकली दाँत भी गायब थे। एक बड़ी चट्टान के नीचे एक गुफा में वह छिपा था। इसी चट्टान के ऊपर 'बड़ी दीवार' के निर्माता की समाधि थी।

कप्तान सन ने उसे देखते ही सलामी दी। च्यांग-काई-शेक के मुँह से निकला—"अगर तुम मेरे दोस्त हो, तो मुझे गोली से मार दो, जिससे सभी झंझट खत्म हो जाय।" कप्तान ने जवाब दिया—"हम गोली मारने नहीं आये, हम तो आपसे यह माँगने आये हैं कि चलिये, जापान के खिलाफ हमारा नेतृत्व कीजिये।"

च्यांग-काई-शेक ने चट्टान पर बैठे-बैठे जवाब दिया—"मार्शल चांग-स्यूह-लयांग को बुलाओ, तो मैं नीचे आऊँगा।"

"मार्शल चांग यहाँ नहीं है। वह तो शहर में है, जहाँ सेना ने विद्रोह कर दिया है। हमलोग आपकी रक्षा करने आये हैं।"

इसपर च्यांग-काई-शेक ने इतमीनान की साँस ली और कहा—"घोड़ा लाओ, मैं चलता हूँ।" कप्तान सन ने कहा—"घोड़ा कहाँ है ? आप मेरी पीठ पर चढ़िये। मैं आपको ले चलता हूँ।" इतना कहकर वह च्यांग-काई-शेक के पैर के नीचे झुक गया। च्यांग को थोड़ी हिचकिचाहट हुई, फिर वह उसकी चौड़ी पीठ पर सवार हुआ। इस तरह थोड़ी दूर बढ़ने पर च्यांग का नौकर उसका जूता लेकर पहुँचा। तब सब पैदल चलने लगे और पहाड़ के नीचे खड़ी मोटर के निकट पहुँचे। मोटर इन्हें लेकर सियान की ओर चली।

रास्ते में कप्तान सन ने कहा—"जो गुजरा, सो गुजरा। अब चीन के लिए एक नई नीति अख्तियार की जाय। आप क्या करने जा रहे हैं ?........"चीन के लिए इस समय सबसे जरूरी सवाल है जापान के खिलाफ लड़ना। उत्तर-पूर्व के लोगों की यही एक खास माँग है। आप जापान से क्यों नहीं लड़ते ? उल्टे, हमें लाल सेना से लड़ने को क्यों कहते हैं ?"

"मैं चीन की जनता का नेता हूँ।"—च्यांग-काई-शेक ने चिल्लाकर कहा—"मैं चीनी राष्ट्र का प्रतिनिधि हूँ। मैं समझता हूँ, मेरी नीति सही और दुरुस्त है।"

इस तरह क्रोध से काँपता च्यांग-काई-शेक शहर आया यहाँ वह जनरल यांग और चांग का 'लाचार' मेहमान बना !

उसी दिन तुंगपी और सिपी सेनाओं के सभी डिवीजन कमाण्डरों के दस्तखत से एक विज्ञप्ति निकली और उसे तार द्वारा केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय नेताओं के पास भेजा गया तथा साधारण जनता के लिए भी वितरित किया। उस विज्ञप्ति में था—"सेनापति च्यांग-काई-शेक से कुछ दिनों तक सियानफू में आराम करने के लिए प्रार्थना की गई है। इसपर

कोई खतरा नहीं आवेगा।" साथ ही, राष्ट्रीय मुक्ति की ये आठ शर्तें राष्ट्र के प्रति प्रचारित की गई—

( १ ) नानकिंग की सरकार का पुनर्संगठन हो और राष्ट्रीय मुक्ति में अपनी जिम्मेवारी अदा करने के लिए सभी दलों को मौका दिया जाय।

( २ ) गृह-युद्ध का खात्मा हो और जापान के प्रति सशस्त्र प्रतिरोध की नीति बर्ती जाय।

( ३ ) शांघाई के सात देशभक्त राजबंदियों को रिहा किया जाय।

( ४ ) सभी राजबंदियों को क्षमा प्रदान की जाय।

( ५ ) जनता को सभा समिति करने-बनाने की स्वाधीनता दी जाय।

( ६ ) जनता का देशभक्तिपूर्ण संगठन और राजनीतिक स्वतंत्रता का हक स्वीकार किया जाय।

( ७ ) डाक्टर सन-यात-सेन के अन्तिम वसीयत को काम में लाया जाय।

( ८ ) शीघ्र ही राष्ट्रीय मुक्ति-सम्मेलन बुलाया जाय।

पहली दिसम्बर को चांग-स्यूह-ल्यांग और साम्यवादियों में जो शर्तनामा तय हुआ था, उसमें इन आठ बातों से भी चीन की लाल सेना, सोवियत सरकार और साम्यवादी पार्टी ने अपनी सहमति की घोषणा प्रकट की।

चांग-स्यूह-ल्यांग ने एक हवाई जहाज सोवियत-सरकार के पास भेजा और उसपर उसके तीन प्रतिनिधि आये जिनमें चाउ-एन-लाई भी था, जो सैनिक समिति के उपसभापति की हैसियत से आया था। तुंगपी, सिपी और लाल सेना के प्रतिनिधियों की एक बैठक हुई और तीनों ने मिलकर एक जापान-

विरोधी संयुक्त सेना के निर्माण की घोषणा १४ दिसम्बर को की। तुंगपी की १,२०,००० सेना, सिपी की ४०,००० सेना और लाल सेना की ६०,००० सेना कुल २,६०,००० की एक सेना तैयार हुई। इस सेना की सैनिक-समिति का अध्यक्ष च्यांग-स्यूह-ल्यांग चुना गया और उपाध्यक्ष यांग-हू-चेंग।

विद्रोह की आग सियान तक ही परिमित नहीं रही। तुंगपी सेना की एक टुकड़ी ने १२ तारीख को ही अपनी ही जिम्मेवारी पर कान्सू की राजधानी लांचाऊ की सहकारी सेना पर छापा मारा और उसे निरस्त्र बना छोड़ा। कान्सू के दूसरे हिस्सों में लाल और तुंगपी सेना ने अपना कब्जा जमा लिया और ५०,००० नानकिंग की सेना को घेरकर उसे बेकाम बना दिया। १४ के इस सम्मेलन के बाद तुंगपी, सिपी और लाल सेना, पूरब में शेन्सी-शान्सी और शेन्सी-होनान की सीमा की ओर बढ़ी, दक्खिन में एक सप्ताह के अन्दर ही पूरा उत्तरी शेन्सी पर जा चढ़ी, पेंग-तेह-हाई सानयुआन शहर पर कब्जा कर बैठा, और सू-हाइ-तुंग शेन्सी-होनान सीमाप्रदेश का सर्वेसर्वा बन गया। यों चारो ओर से मोर्चाबन्दी कर ली गई, जिसमें यदि च्यांग-काई-शेक को छुड़ाने के लिए कोई सैनिक कोशिश की जाय, तो उसका मुकाबला किया जा सके।

उपर्युक्त आठ शर्तों के तार जब नानकिंग एवं दूसरे प्रांतीय शहरों में पहुँचे, तो उन्हें दबा रखा गया। किन्तु, इस संयुक्त मोर्चा-समिति ने अपने हल्के में उन्हें काम में लाना शुरू किया। लाल सेना ने जमीन्दारों की सम्पत्ति की जब्ती की बात बन्द कर दी और इधर साम्यवादियों के खिलाफ जितने आर्डर थे, उन्हें उठा दिया गया। सियानफू में ३०० राजबन्दियों को रिहा कर दिया गया और अखबारों पर का

'सेन्सर' उठा लिया गया। हजारों विद्यार्थियों को मुक्त किया और उन्हें शहरों और देहातों में भेजा गया कि जापान-विरोधी संयुक्त मोर्चे की बात जनता को बतावें। बड़ी-बड़ी सभायें प्रतिदिन होने लगीं—एक सभा में तो एक लाख आदमी तक शामिल हुए।

इधर यह बात हो रही थी, उधर नानकिंग की ओर नये ही गुल खिल रहे थे। सियान की इस घटना को प्रकाशित होने से बिल्कुल रोक दिया गया। सरकारी अखबारों पर भी प्रतिबंध लगे कि कहीं असल बात फैले नहीं। आठ शर्तों की तो कहीं गंध भी नहीं फैलने दी गई। हाँ, खबर मिलते ही नानकिंग-सरकार की केन्द्रीय समिति जरूर बैठी और उसने चांग-स्यूह-लयांग को बागी घोषित कर उसे पदच्युत किया और च्यांग-काई-शेक की रिहाई की माँग करते हुए, देर होने पर, सियान पर चढ़ाई करने का तय किया। च्यांग की गिरफ्तारी की खबर किसी-न किसी तरह जनता पर प्रकट हुई और उसका अलग-अलग प्रभाव पड़ा। कुछ लोग तो खुश हुए, कुछ यह जान कर भयभीत कि अब गृहयुद्ध और भी भीषण रूप में होगा। जो शक्तियाँ दबी थीं, उन्होंने सर उठाना शुरू किया और अजीब असंगतियों की सृष्टि होने लगी।

तीन दिन तक कोई नहीं जान सका कि यथार्थतः च्यांग-काई-शेक पर क्या बीती। हाँ, असोसियेटेड प्रेस तार-पर-तार करता रहा कि उसे चांग-स्यूह-लयांग ने मार डाला। अजीब-अजीब अफवाहें उड़ रही थीं। सियान में लूटमार मची है, साम्यवादी औरतों का सतीत्व लूट रहे हैं, जापान का हाथ इसमें है, मास्को का हाथ भी मालूम होता है, क्या-क्या खुरा-फातें न चल रही थीं। जापानी पत्रों ने अजीब अंधेर मचा

रखा था, तो रूसी पत्र भी पीछे नहीं थे। जापानी पत्र कहते, यह सब रूस की शैतानी है; रूसी पत्र कहते,—यह साम्राज्यवादियों की लीला है।

इधर नानकिंग में अपने-अपने प्रभुत्व के लिए भी साजिशें शुरू हुईं। महत्वाकांक्षी युद्ध-सचिव हो-इंग-चिंग ने देखा, यही मौका हमारे लिए है। जापानियों और फौजी नानाशाहों ने उसकी पीठ भी ठोकी। वह बार-बार जोर देने लगा कि सियान पर चढ़ाई की जाय। यही नहीं, २० डिविजन सेना को उसने सियान की ओर बढ़ने का हुक्म भी दे दिया। हवाई जहाजों के दस्ते सियानफू की ओर भेजे गये—वे आकाश में गरजते-तरजते और जब-तब गोले भी गिराते। एक जगह उनके गोलों से बहुत-से मजदूर मरे। जब बंदी च्यांग-काई-शेक को इसकी खबर लगी, वह खूब खुश हुआ।

किन्तु, च्यांग-काई-शेक की धर्मपत्नी उससे ज्यादा चतुर और परिस्थिति को समझने वाली थी। वह पूरी परिस्थिति समझ गई और जेनरल हो को तुरत बुला कर कैफियत पूछी कि ये बातें क्यों हो रही हैं? यदि युद्ध शुरू हो जाय, तो तुम रोक सकोगे? क्या तुम मेरे पति को वैसी हालत में बचा सकोगे? या तुम उन्हें मरवा डालना चाहते हो? उसकी ये बातें सुनकर युद्ध-सचिव के होश फाख्ता हुए। श्रीमती च्यांग ने युद्ध-सचिव को डाँट-डपट कर ही दुरुस्त नहीं किया, श्रीमती सन-यात-सेन वगैरह के साथ नानकिंग और शांघाई के और भी प्रतिक्रियावादियों को रोका, जो इस मौके से व्यक्तिगत फायदा उठाना चाहते थे—भले ही च्यांग-काई-शेक मरे या चीन बर्बाद हो।

---

# असम्भव सम्भव हुआ

१२ दिसम्बर से लेकर आगे कुछ महीनों तक जो घटनायें घटीं, उनमें हम असम्भव को सम्भव हुआ देखते हैं—यानी, आखिर चीन में एक जापान-विरोधी संयुक्त मोर्चा कायम हुआ और कायम हुआ च्यांग-काई-शेक के ही नेतृत्व में!

जिस समय च्यांग गिरफ्तार हुआ, तुंगपी और सिपी सेनाओं के नौजवान अफसरों ने एक प्रस्ताव पास किया था कि 'देशद्रोही' च्यांग पर खुला मुकदमा चलाया जाय और उसे दण्ड दिया जाय। दण्ड भी क्या?—साफ कहा जाता था कि उसे तोप के मुँह में बाँध कर उड़ा दिया जाय।

किन्तु, चीन के साम्यवादी इस नीति को पसन्द नहीं करते थे। ऐसा होने से गृहयुद्ध और भी भीषण हो जाता, जिससे जापानियों को खुल खेलने का मौका मिलता। केवल च्यांग को दण्ड देने के ही वे विरोधी नहीं थे, बल्कि उनका कहना था कि च्यांग का किसी तरह अपमान भी नहीं करना चाहिये। क्योंकि, अपमानित होने से उसकी इज़्ज़त कम हो जायगी, जिस इज़्ज़त का उपयोग जापान-विरोधी मोर्चे पर करने से राष्ट्र का महान उपकार हो सकता है।

जब चाउ-इन-लाई सोवियत के प्रतिनिधि की हैसियत से सियान पहुँचा, उसी दिन उसने मार्शल चांग-स्यूह-ल्यांग के साथ च्यांग-काई-शेक से भेंट की। ज़रा उस दृश्य की कल्पना कीजिये। च्यांग ने जब अपने सामने उस विद्रोही नेता

को देखा होगा, जो कभी उसका सेक्रेटरी था और पीछे जिसके सर पर उसने ८०,००० डालर इनाम बोला था, तो उसके हृदय में कौन-कौन-सी भावनायें उठी होंगी, सोचिये। सबसे ताज्जुब तो उसे तब हुआ, जब उसने देखा कि चाउ ने बड़ी शिष्टता से उसका अभिवादन किया और उसके नीचे बैठ कर साम्यवादियों की नीति का खुलासा उससे देने लगा। पहले तो वह गुमसुम सुनता रहा, फिर उसने उत्सुकता दिखाई—क्योंकि यह पहली बार थी, जब कि उसने साम्यवादियों की विचार-धारा उनके मुँह से, इस दस वर्षों के संघर्ष में, सुनी थी। १७ दिसम्बर से २५ दिसम्बर तक च्यांग-काई-शेक को कितनी ही बार साम्यवादियों और दोनों विद्रोही नेताओं—चांग और यांग—से बातें करने का मौका मिला। पहले तो वह कुछ खिचा-खिचा-सा रहा, किन्तु, जब उसे नानकिंग में होनेवाली साजिशों का पता लगा, उसपर से उसके बुरे साथियों का असर धीरे-धीरे दूर हुआ और उसने अगले भयंकर गृहयुद्ध की कल्पना की, तो उसके होश दुरुस्त हुए और वह साम्यवादियों की बातों और अपने इन दो सेनापतियों के वादों पर धीरे-धीरे विश्वास करने लगा। जापान-विरोधी मोर्चे की ओर वह धीरे-धीरे झुकने लगा।

१४ तारीख को ही एक और काम सियान में एकत्र तुंगपी, सिपी और लाल सेना के प्रतिनिधियों ने किया। उन्होंने मि० डोनाल्ड नामक एक आस्ट्रेलियन को वहाँ बुलाया और उससे च्यांग-काई-शेक से मुलाकात कराई। मि० डोनाल्ड चांग-स्यूह-ल्यांग और च्यांग-काई-शेक दोनों के जान-पहचानी और दोस्तों में से था। उसको बुलाने का अभिप्राय यह था

कि वह संसार को यह बतला दे कि च्यांग-काई-शेक अब भी जिन्दा है, उसके साथ कोई दुर्व्यवहार नहीं हो रहा है और वह नानकिंग की सरकार से भी सुलह की बात जारी करे। जब डोनाल्ड ने यह खबर श्रीमती च्यांग-काई-शेक को दी तो वह बहुत प्रसन्न हुई। जेनरल हो से चढ़ाई करने के सब हुक्मनामों को उसने वापस कराया और सुलह की चर्चा भी शुरू कर दी। १८ को एक सेनापति के मारफत च्यांग-काई-शेक के हाथ का लिखा एक कुशल-पत्र भी नानकिंग भेजा गया। उस खत में जेनरल हो को हुक्म दिया गया था कि तुम अपनी फौज आगे मत बढ़ाओ। मार्शल चांग-स्यूह-ल्यांग का भी एक खत था, जिसमें नानकिंग से किसी जिम्मेवार आदमी को बुलाया गया था, जिससे 'सब बातें शीघ्र तय कर ली जायँ।'

२० तारीख को नानकिंग-सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से श्री टी० वी० सूंग सियान पहुँचे। श्री सूंग च्यांग-काई-शेक के साले होते हैं। अमेरिका में उन्होंने शिक्षा प्राप्त की। अर्थ-समिति के वह प्रधान हैं। यूरोपियनों से सुलह करने के पक्षपाती और जापान के विरोधी समझे जाते हैं। किन्तु, जब तक वे पहुँचे, तब तक च्यांग-काई-शेक से बहुत-सी बातें तय हो चुकी थीं। १९ को चांग-स्यूह-ल्यांग ने यह वक्तव्य प्रकाशित किया—

"अब तक हमारे प्रधान सेनापति कब न यहाँ से चल दिये होते। क्योंकि, ज्योंही मि० डोनाल्ड गत सोमवार को पहुँचे और प्रधान सेनापति अपने तथाकथित अपमान को भुलाने में समर्थ हुए, उन्होंने हमलोगों से बड़ी शान्ति से बातें शुरू कीं और उसके दूसरे ही दिन

एक राष्ट्रीय नीति तय कर ली गई और उसके अनुसार शासन में परिवर्तन करने का भी निश्चय हो चुका। हमने इसके बाद ही नानकिंग तार भेजा, और वहाँ से यदि कोई आ गये होते, तो वह कब न यहाँ से रवाना हो गये होते।"

किन्तु, एक तरफ यह बातचीत हो रही थी, दूसरी तरफ तुंगपी सेना में अजीब सनसनी और उत्तेजना थी। सैनिक लोग और अफसर खुले आम माँग करने लगे कि च्यांग-काई-शेक को उसके कुकर्मों के लिए सजा दी जाय! एक दिन च्यांग-काई-शेक ने अपनी कोठरी से पहरे के लोगों को बातचीत करते सुना। वे कह रहे थे—"फैसला करने का हक तो जनता को है, कुछ अफसर मेल-मिलाप कर लें, इससे क्या होता है? इसपर च्यांक-काई-शेक ने अपनी डायरी में लिखा—"मैं समझ गया कि ये मेरी जान लेना चाहते हैं, जनता का नाम तो बहाना है।" जब साम्यवादी प्रतिनिधि इन सैनिकों और अफसरों को समझाने की कोशिश करते, वे अधीर हो उठते। कुछ लोग तो रोने लगते और कहते—"तब तो आप-लोगों ने भी हमें धोखा दिया।" रात-रात भर जाग कर ये प्रतिनिधि लोगों को समझाते-बुझाते।

सूंग के पहुँचने के बाद बातचीत शुरू हुई—प्रत्यक्षतः तो कहा गया कि ये आठो शर्तें नामंजूर की गईं, किन्तु, भीतर-ही-भीतर इन शर्तों को मंजूर किया गया जिनका व्यावहारिक रूप ऐसा हुआ—

(१) गृहयुद्ध बन्द कर दिया जाय और कुओ-मिन्-तांग और साम्यवादी पार्टी पारस्परिक सहयोग से काम करें।

(२) जापानियों के खिलाफ साफ-साफ नीति बनाई जाय और उनका सामना किया जाय।

( ३ ) नानकिंग के ऐसे पदाधिकारी हटा दिये जायँ, जो जापानियों के पक्षपाती हैं और इङ्गलैंड, अमेरिका एवं सोवियत रूस से सम्बन्ध स्थापित किया जाय।

( ४ ) नानकिंग की सेना के समान ही दर्जा तुंगपी और सिपी सेना का समझा जाय।

( ५ ) जनता को राजनीतिक स्वतंत्रता मिले।

( ६ ) नानकिंग-सरकार का प्रजातांत्रिक ढंग पर नया संगठन किया जाय।

इन शर्तों के कबूल कराने में श्रीमती च्यांग-काई-शेक का बहुत बड़ा हाथ था, जो २२ को वहाँ पहुँच चुकी थीं। उन्होंने अपने पति को ही सूली पर से नहीं उतारा, अपने देश की भी रक्षा की। २५ तारीख को च्यांग-काई-शेक नानकिंग के लिए रवाना हुआ और रवाना हुआ—उसके साथ ही चांग-स्यूह-ल्यांग !

इसके बाद जो घटनायें हुईं उनके दो रूप हैं—एक प्रत्यक्ष, दूसरा गुप्त। गुप्त में तो संयुक्त मोर्चा कायम हुआ, उसका कार्यक्रम बना, उस कार्यक्रम पर सबने स्वीकृति दी—किन्तु, च्यांग-काई-शेक की प्रतिष्ठा रखने के लिए प्रत्यक्ष में कुछ नाटकीय काम किये गये।

नानकिंग में पहुँचते ही चांग स्यूह-ल्यांग ने सबके सामने कहा—"मैं लाज से गड़ा जा रहा हूँ, मुझसे अपराध हो गया। मैं साथ आया हूँ, मुझे सजा दीजिये। मेरे पाप का यही प्रायश्चित्त है।" च्यांग-काई-शेक ने उदारतापूर्वक जवाब दिया—"नहीं, यह कसूर मेरा था कि मैं अपने अधीन लोगों को अच्छी तरह शिक्षा नहीं दे सका और वे विद्रोह करने को

उतारू हुए। खैर, तुमने अपराध कबूल किया है, इसलिए, मैं केन्द्रीय अफसरों से कहूँगा, तुम्हें क्षमा करें।"

इसके बाद उसने एक वक्तव्य देकर अपना इस्तीफा पेश किया—तीन-तीन बार उसे दुहराया। फिर, चांग-स्यूह-ल्यांग पर मुकदमा चलाया गया, उसे दस वर्ष की सजा दी गई, किन्तु, दूसरे ही दिन उसे माफी मिली। शेन्सी में जो नानकिंग की सेना थी, उसे लौटाया गया और चान चुन नामक जापान के पक्षपाती अफसर को निकाल कर एक जापान-द्रोही व्यक्ति का वहाँ भर्ती किया गया। इस्तीफे की स्वीकृति-अस्वीकृति की प्रतीक्षा न कर, उसने 'बीमारी की छुट्टी' ली और चांग-स्यूह ल्यांग के साथ अपने देहाती घर पर जाकर दो महीने विश्राम किया। किन्तु, यथार्थतः यह छुट्टी नहीं थी–इसके अन्दर वह तुंगपी, लिपो और लाल सेना के प्रतिनिधियों से सुलह-सलाह की बातें करता रहा।

१५ फरवरी को कुओ-मिन्-तांग की बैठक बुलाई गई। इसके पहले ही १० फरवरी को चीनी साम्यवादी पार्टी ने एक प्रस्ताव उसके पास भेजा जिसमें चार निवेदन थे—गृहयुद्ध बन्द हो; व्याख्यान, अखबार और सभा-संगठन की स्वतंत्रता हो और राजनीतिक कैदी छोड़े जायँ; जापान के विरोध के लिए एक राष्ट्रीय संयुक्त योजना बनाई जाय; और, डाक्टर सन-यात-सेन की वसीयत के 'तीन सिद्धान्त' काम में लाये जायँ। निवेदन में यह भी उल्लेख था कि यदि ये बातें मंजूर कर ली जायँ तो साम्यवादी पार्टी यह करने को तैयार है—(१) लाल सेना का नाम बदल कर राष्ट्रीय क्रान्तिकारी सेना रख दी जायगी और उसे सैनिक-समिति को सुपुर्द कर दिया जायगा। (२) सोवियत-सरकार का नाम बदल कर

'चीन के प्रजातंत्र का विशेष क्षेत्र' रख दिया जायगा। (३) सोवियत जिलों में पूर्ण लोकतंत्र सरकार कायम की जायगी और (४ जमीन की ज़ब्ती रोक दी जायगी और पूरी ताकत राष्ट्रीय मुक्ति यानी जापान-विरोध में ही लगाई जायगी। किन्तु, तमाशा यह कि कुओ-मिन्-तांग के इस जल्से ने पहले इस प्रस्ताव को बिल्कुल ठुकरा दिया। हाँ, उसने शान से प्रस्ताव किया कि वह साम्यवादियों से बातचीत तब जारी कर सकती है जब वे इन बातों पर विचार करने को तैयार हों—(१) लाल सेना तोड़ दी जाय और वह राष्ट्रीय सेना में मिला दी जाय (२) सोवियत प्रजातंत्र का खात्मा किया जाय (३) सन-यात-सेन के 'तीन सिद्धान्त' के खिलाफ कुछ प्रचार नहीं किया जाय और (४) वर्ग-युद्ध की नीति छोड़ दी जाय। इस प्रस्ताव और उस प्रस्ताव में अन्तर कुछ नहीं, किन्तु, दुनिया को यह दिखाने की कोशिश की गई कि कुओ-मिन्-तांग दबी नहीं, दबी तो साम्यवादी पार्टी।

खैर, १५ मार्च १९३७ को साम्यवादी पार्टी, सोवियत-सरकार और लाल सेना ने एक वक्तव्य निकाल कर नानकिंग-सरकार से सुलह की प्रार्थना की और जून तक करीब-करीब सब बातों का फैसला हो गया। स्वयं च्यांग-काई-शेक इसके लिए कम उत्सुक नहीं था। उसने अपने वायुयान भेज कर जून में साम्यवादियों के प्रतिनिधि चाउ-एन-लाई को अपनी ग्रीष्म-राजधानी कुलिंग में बुलाया और लगातार कई दिनों तक बात करके आखिरी निश्चय किया। साम्यवादी पार्टी ने जो प्रस्ताव पहले भेजा था, करीब-करीब उसी पर सुलह हुई।

किन्तु, इस सुलहनामे के पहले ही, अप्रिल से ही, दोनों

तरफ काफी सद्भाव पैदा हो गया था। साम्यवादियों के दमन के लिए जो सेनायें भेजी गई थीं, वे तो शुरू में ही लौटा ली गई थीं, इधर वह डिपार्टमेंट भी तोड़ दिया गया, जो इन 'लाल डाकुओं' को मटियामेट करने के लिए दस वर्षों से काम कर रहा था। सोवियत-भूमि में आने-जाने की जो रुकावटें थीं, जो व्यापारी घेरा डाल कर माल लाना और ले जाना रोक दिया गया था, वे सब-के-सब उठा लिये गये। दस वर्षों के बाद कहीं सोवियत को बाहरी दुनिया देखने का मौका मिला।

सोवियत जिलों ने शीघ्र ही बाहर से व्यापार का रिश्ता जोड़ा। सड़कें और तार के इन्तजाम किये गये। लौरियों के दस्ते एक शहर से दूसरे शहर तक आने-जाने लगे। उद्योग-धंधों के औजार-पर-औजार मँगाये जाने लगे। सबसे बढ़ कर तो वहाँ किताबों की भूख थी। शीघ्र ही एक अच्छी लाइब्रेरी कायम की गई। चीन के भिन्न-भिन्न भागों में जो साम्यवादी अब तक छिपे पड़े थे, वे इस उत्तरी-पूर्वी सोवियत-भूमि की नई राजधानी येनान की ओर मानो दौड़ पड़े। लाल सैनिक विद्यालय (जिसका नाम अब 'जापान-विरोधी विश्वविद्यालय' था) में भर्ती होने के लिए हजारों हजार दरखास्तें आने लगीं। बहुत-से विद्यार्थी तो सैकड़ों मील पैदल चल कर पहुँचे। साम्यवादी पार्टी कहने को तो अब भी गैरकानूनी संस्था थी, किन्तु, अब साम्यवादियों पर कोई जुल्म नहीं होता था—हाँ, उनके बदले में जापान के कितने ही 'प्रेमियों' को फाँसी तक पर लटकाया जा चुका था।

इन बातों से प्रभावित होकर मई महीने में सोवियत-जिलों ने अपना नाम बदल कर "खास हल्के की सरकार"

रख लिया। योंही जब साम्यवादियों ने अपनी पार्टी कान्फ्रेंस की, तो उसमें लेनिन, मार्क्स, माव-से-तुंग, चू तेह आदि की तस्वीरों के साथ डा० सन-यात-सेन और च्यांग-काई-शेक की तस्वीरें भी लटकाई गईं।

डा० सन-यात-सेन के "तीन सिद्धान्त" ऐसे थे, जिनकी व्याख्या साम्यवादी ढङ्ग से भी की जा सकती थी—प्रजातंत्र, राष्ट्रीयता और आजीविका के बारे में जो कुछ उस महान् व्यक्ति ने कहा था, उसे लेकर साम्यवादी बहुत दूर तक लोगों को ले जा सकते थे।

सोवियत-सरकार ने जमींदारों की सम्पत्ति जप्त करना छोड़ दिया। इससे उनकी आमदनी में बहुत कमी हो गई। किन्तु, इसकी पूर्ति के लिए च्यांग-काई-शेक ने लाल सेना को—जो अब 'राष्ट्रीय मुक्ति-सेना' के नाम से मशहूर हुई—सहायता के रूप में पचास लाख डालर पहली ही किश्त में भेज दिया।

अब सोवियत-जिलों की सीमाओं पर लाल झंडा और राष्ट्रीय झंडा साथ-साथ फहराये जाते। सोवियत के दफ्तरों पर भी दोनों ही झंडे लहराते।

ये सब बातें कुछ ऐसी तेजी से हुईं कि बाहर के लोग भौंचक होकर देखते और कहते—आखिर यह क्या हो रहा है? ये लाल सुफेद हो गये या सुफेद ही लाल बन गये। किन्तु, क्या ऐसी कोई बात थी?

मानो, इस बात को ही स्पष्ट करने के लिए, माव-से-तुंग ने एक बार यह स्पष्ट किया—

"इस पारस्परिक समझौते की भी सीमा है। सोवियत जिलों और लाल सेना का नेतृत्व साम्यवादी पार्टी ने

अपने हाथ में रखा है और कुओ-मिन् तांग से सम्बन्ध रखते हुए भी अपने अस्तित्व को अलग कायम रखने तथा एक सीमा तक उसकी समालोचना करने का भी हक उसे हासिल है। इन बातों में तो जरा भी रियायत नहीं की जा सकती थी। साम्यवादी पार्टी अपने साम्यवाद की स्थापना का ध्येय किस तरह छोड़ सकती है—हाँ, इसके लिए जरूरी है कि पहले लोकतंत्रात्मक क्रान्ति हो जिसके लिए उसने यह नई नीति मंजूर की है। साम्यवादी पार्टी अपने कार्यक्रम और नीति को छोड़ नहीं सकती!"

# आठवीं रूट आर्मी

संयुक्त मोर्चे की स्थापना के बाद समूची लाल सेना जापानियों से लड़ने के लिए मोर्चों पर आ डटी। चूँकि संयुक्त मोर्चा कायम हो गया था, अतः अब इस सेना को लाल सेना के नाम से ही पुकारना उचित नहीं समझा गया। वह चीन की संयुक्त राष्ट्रीय सेना का ही एक अंग हो गई और उसका नाम आठवीं रूट आर्मी पड़ा। कुछ ही दिनों में इस सेना ने अपने लिए विश्व-विश्रुत ख्याति प्राप्त कर ली। आठवीं रूट आर्मी का नाम ही जापानी सेना को भयभीत करने के लिए काफी हो गया।

आठवीं रूट आर्मी ने जापानियों के विरुद्ध भी वही युद्ध-कौशल जारी रखा है, जिसका प्रयोग कर वह दस वर्षों तक च्यांग-काई-शेक को तंगोलरीज करती रही थी। उसकी गोरिल्ला-युद्ध-प्रणाली—जिसका आधार जनता की क्रियात्मक सहायता है—आज संसार में मोर्चाबन्दी के लिए खास स्थान रखती है।

१९३७ की जुलाई में जापान का वर्त्तमान नया आक्रमण शुरू हुआ। मालूम हुआ, जैसे किसी तूफानी दस्ते ने धावा बोल दिया है। एक-एक कर बड़े-बड़े शहर जापानियों के कब्जे में आने लगे। ऐसा लगा, बात की बात में समूचे चीन पर जापानियों का उगते हुए सूर्य वाला रक्तरंजित झंडा फहरा कर रहेगा।

किन्तु, यह नहीं हुआ। माना, आज भी चीन के बड़े-बड़े शहर जापानियों के कब्जे में हैं, किन्तु जापान की विजय में वह प्रगति नहीं रह गई है। कई जगह तो जापानियों को बुरी तरह हार खानी पड़ी है।

अभी-अभी फरवरी १९३९ के आखिरी सप्ताह में खबर आई है, चहार प्रान्त जापानियों के हाथ से छीन लिया गया है। यही नहीं, उत्तर-पूर्व कोने पर जापानियों की हार-पर-हार हुई है। इसकी चर्चा करते हुए सुप्रसिद्ध साम्राज्यवादी गोरा अखबार 'स्टेट्समैन' ने १७ फरवरी १९३९ को अपने अग्रलेख में जो लिखा, उसका सारांश यों है—

"पूर्वी चीन में जो घटनायें घट रही हैं, उसकी खबर संसार को बहुत कम मिलती है—जो खबरें आती भी हैं, तो जापान के ही द्वारा। किन्तु, उन खबरों को नक्शे के आधार पर पढ़ने से कई बातें स्पष्ट हो ही जाती हैं। यह स्पष्ट है कि चीन की गोरिल्ला सेना ने जापान को नाकोदम कर रखा है। जिन प्रदेशों में जापानी कब्जा है, वहाँ भी उनके ऊधम जारी हैं। हांकाऊ और कान्तन के पतन के बाद लोगों को यह विश्वास हो गया था कि अब चीन का ऐश्वर्य और धन-धान्यपूर्ण पूर्वी भाग सदा के लिए गया। किन्तु, जाड़े के प्रारम्भ होते ही उत्तरी चीन, जहाँ १९३७ में ही जापानी कब्जा हो गया था, फिर चीन के हाथ में चला गया। १९३७ में ही जापान ने जिसे जीता था, उस पूर्वी होपी प्रान्त में चीनी सेना फिर ऊधम मचाने लगी और शान्सी और दक्षिणी होपी से भी जापान को अपनी सेना हटा लेनी पड़ी, फकत दो बड़े शहर उसके हाथ में रह गये। इधर जापानियों ने कई छोटी-छोटी विजयों को काफी महत्त्वपूर्ण बनाने की कोशिश

की है—किन्तु, नक्शे का आधार और पिछली घटनाओं का ज्ञान उसका महत्व खतम कर देता है। इन गोरिल्लों ने उसके नाक में दम कर रखा है। शहरों और रेलवे लाइनों के बीच में उनकी खुराफात से जापानी बेचैन हैं। यों तो जापानी भी चीन को विजय करना अब आसान नहीं समझते, उन्होंने खुद चार वर्ष की अवधि संसार पर प्रकट की है, किन्तु, इनके इस सुदृढ़ मुकाबले को देखते और जापान की आर्थिक कमजोरियों पर ध्यान रखते हुए यह कोई असम्भव बात नहीं मालूम पड़ती कि चीन एक-न-एक दिन अवश्य ही विजयी होगा।"

चहार या उपर्युक्त स्थानों में प्रमुखतः आठवीं रूट आर्मी ही अपना गोरिल्ला-कौशल दिखा रही है। माव-से-तुंग, सेनापति चू-तेह, पेंग-तेह-हाई, हो-लंग, लिन-पिआव, चाउ-एन-लाई आदि की दृढ़ता, धीरता, चतुरता देखकर आज दुनिया मुग्ध हो रही है।

साम्यवादियों और लाल सेना का अड्डा शेन्सी-कांसू प्रान्त था यह कहा जा चुका है। जापान द्वारा छीने गये चीन के प्रदेश उसके निकट पड़ते थे। अतः, जुलाई में लड़ाई शुरू होते ही, जापानियों के धावे का एक प्रधान लक्ष्य शेन्सी और मंचूरिया के बीच की विस्तृत भूमि भी रहा। आठवीं रूट आर्मी ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर इसी मोर्चे पर जापानियों के दाँत खट्टे करने का निश्चय किया।

छः महीने के अन्दर-अन्दर, १९३७ के अन्त तक, आठवीं रूट आर्मी ने जापानियों के कब्जे में आये शान्सी, चहार और होपी प्रान्तों में तहलका मचाना शुरू किया। जापानियों ने रेलवे लाइनों और बड़े-बड़े शहरों पर ही कब्जा

किया था। उन लाइनों या शहरों पर जमकर मुकाबला करने की अपेक्षा उसने उन लाइनों के बीच के हल्कों और देहातों में ही जाकर काम करना और डटना शुरू किया। गाँव-गाँव में जाकर जापानियों के विरुद्ध देशभक्ति की भावना उभाड़ी जाती, सेनाभर्ती के लिए कमीटियाँ कायम की जातीं और जन-रक्षा-सेवक-दल कायम किया जाता। स्त्रियों को संगठित कर जापान-विरोधी-महिला-संघ बनाये जाते और बच्चों को बालसेना में भर्ती किया जाता। बहुत-से ऐसे अस्थायी स्कूल खोले गये, जिनमें लोगों को गोरिल्ला-पद्धति से लड़ने, दुश्मन की गति-विधि का पता लगाने आदि की शिक्षा दी जाती। जनता की निरक्षरता दूर करने का प्रयत्न भी किया जाता। राजनीतिक ज्ञान देने की तो खास चेष्टा की जाती।

काम की सहूलियत के लिए जापान द्वारा अधिकृत इन प्रांतों को पाँच हल्कों में बाँट दिया गया और इसके सूत्र-संचालन के लिए "शान्शी-होपी-चहार की सरहदी सरकार" की स्थापना की गई, जिसका अध्यक्ष च्यांग-काई-शेक की सरकार की ही अनुमति से, एक साम्यवादी नीह-जंग-चैन बनाया गया।

इन प्रदेशों में काम शुरू करने के छः महीने बाद ही आठवीं रूट आर्मी ने पाँच लाख नौजवानों को जन-रक्षा-सेवक-दल में भर्ती कर लिया, जिनमें एक चौथाई के पास तो हथियार भी थे। यही नहीं, करीब दस लाख लोग जापान-विरोधी काम के लिए अपना पूरा समय देने लगे। इस सरहदी सरकार के अन्दर के दूसरे हल्के में १७ जिले थे। आठवीं रूट आर्मी के तत्वाविधान में, इस हल्के में २००० गावों में डाक का

पूरा प्रबन्ध था, दस रेडियो के स्टेशन बन चुके थे, ३००० मील तक टेलिफोन का इन्तजाम हो चुका था, १७ दैनिक अखबार निकलते थे, और १४ अस्पताल काम कर रहे थे। गाँवों और किसानों की आर्थिक दशा सुधारने की भी कोशिश की गई। जमीन का फिर से बँटवारा तो नहीं किया गया, (संयुक्त मोर्चे के बाद ऐसा करना बन्द कर दिया गया था) किन्तु, मालगुजारी कम की गई, कर्ज की वसूली स्थगित की गई, उपज बढ़ाने और उससे ज्यादा फायदा उठाने के प्रयत्न भी किये गये। सरहदी सरकार ने अपना बैंक भी कायम किया। ये सब काम दुश्मन के जबड़े में घुसकर किये गये—यदि हम इसका ध्यान रखें तो इसका महत्व सौ गुना बढ़ जाय, जैसा कि है।

एक ओर जनता को इस तरह अपने पक्ष और जापान के विपक्ष में तैयार करना और दूसरी ओर अपनी गोरिल्ला-युद्ध-पद्धति से दुश्मन के छक्के छुड़ाना। आठवीं रूट आर्मी का युद्ध-संचालन (फिल्ड-कमांड) इस समय पेंग-तेह-हाई के हाथ में है। अपनी इस युद्ध-पद्धति का विवरण उसने एक पत्र-प्रतिनिधि से यों दिया है—

"हमारी इस युद्ध-प्रणाली की मौलिक बात यह है कि हम एक ऐसी लड़ाई लड़ें जिसमें लुकछिप कर दुश्मन का सत्यानाश किया जाय। दुश्मन के छोटे-छोटे दस्तों को हम जड़मूल से खतम करें। हम खुद भी आगे बढ़ें, तो अपनी सेना को टुकड़े टुकड़े में बाँट कर ही। साधारणतः हम आमने-सामने जमकर लड़ने से बचें, गोकि ऐसे मौके आये हैं, जब हमें यह करने को भी बाध्य होना पड़ा है। बड़े-बड़े शहरों की रक्षा में तो हम जमकर लड़ते ही हैं, किन्तु, उस हालत में भी रक्षा

की योजना 'लाइन' में न होकर 'प्वाइंट' में होनी चाहिये। पंक्तिबद्ध होकर लड़ने की अपेक्षा टुकड़ों-टुकड़ों में लड़ने से हम छोटी सेना से भी बड़ी सेना का मुकाबला कर सकते हैं, दुश्मनों को इस तरह तंग कर सकते हैं कि वह बड़ी फौज लेकर हमें घेरने की कोशिश करे और यों दूसरी जगह वह अपनी रफ्तार ढीली करे। इस तरह हम दुश्मन को अपनी सेना का अच्छा उपयोग करने से वंचित कर देते हैं।"

आठवीं रूट आर्मी की इस युद्ध-प्रणाली का अनुकरण च्यांग-काई-शेक की दूसरी सेनाओं ने भी किया है। इस काम की शिक्षा देने के लिए आठवीं रूट आर्मी के अफसर दूसरी सेनाओं में भेजे जाते हैं।

एक अमेरिकन-पत्रप्रतिनिधि ने आठवीं रूट आर्मी की इस गोरिल्ला-पद्धति के प्रयोग का वर्णन यों दिया है—

"मैं उस समय पहुँचा, जब कि उस शहर पर चीन के किसानों की गोरिल्ला सेना चढ़ाई कर रही थी। शहर को चारों ओर से घेर लिया गया था और उसकी ऐतिहासिक दीवाल पर जब तब गोलाबारी भी होती थी। एक रात तो ये चीनी गोरिल्ले शहर के फाटक के नीचे सेंध खोदकर जापानी सेना के अन्दर पहुँच गये और कितने ही सोये हुए संतरियों को मार कर चलते बने।

दिन-रात जापानी सेना शहर से मशीनगनों और तोपों से आग बरसाती रहती थी, लेकिन, गेहूँ के खेत में छिपे इन चीनी गोरिल्लों का इससे कोई नुकसान नहीं होता था। जापानी वायुयान भी आकाश में मँडराते रहते, किन्तु, किस ओर कहाँ पर बम बरसायें? शहर तक आनेवाली रेल की पटरी उखाड़ दी गई थी और एक सैनिक ट्रेन उलट भी चुकी थी।

जापान के सभी आधुनिक अस्त्र इनके सामने बेकार साबित हो रहे थे।

इन गोरिल्लों की तायदाद इतनी नहीं थी कि शहर पर कब्जा कर लें; किन्तु ये जापानियों को तबाह-तबाह करके अन्त में उनका सफाया करने को घात लगाये हुए थे। टेलिफोन और रेडियो द्वारा ये गोरिल्ले अपने हेडक्वार्टर से सम्बन्ध बनाये हुए थे। खाने-पीने की इन्हें कमी नहीं थी। देहात के कारखानों से इन्हें देशी तलवार, बम और बारूद प्राप्त होते थे।

ये गोरिल्ले सैनिक जापानी ट्रेनों को उलटने में उसी पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं, जिस पद्धति से सुप्रसिद्ध कर्नल लौरेंस ने अरब में सफलता पाई थी। लौरेंस की "ज्ञान के सात स्तम्भ" नामक पुस्तक का चीनी भाषा में अनुवाद हो गया है। वह पत्रकार लिखता है—

"एक गाँव में मुझे दो प्रोफेसरों से भेंट हुई, जो क्लास रूम की लेक्चरबाजी को छोड़ कर चीनी युवकों को ट्रेन उलटने की कला सिखला रहे हैं। वे अभी-अभी एक जापानी सैनिक-ट्रेन को उलट कर आये थे!

"डिनामाइट के अभाव में इन प्रोफेसरों ने रेल-लाइन के भीतरी कीलों और मेखों को निकालने की कला अपने लोगों को सिखा रखी है। ज्यों ही उस पर गाड़ी जाती, लाइन फैल जाती, ट्रेन उलट पड़ती। जापानियों ने इससे बचने के लिए हर ट्रेन के पहले लाइन पर खाली इन्जिन चला कर जाँच करने का तरीका अख्तियार किया है, तोभी तीन महीने के अन्दर ३० ट्रेनें उस हल्के में ही उलट चुकी थीं। ऐसे "चोरों की पार्टी" भी बनाई गई है, जो चुपचाप रेलवे लाइन उखाड़

कर दूर-दूर जगहों में छुपा दे और टेलिफोन के तार काट उसके खम्भे को भी गायब कर दे।

"इससे बचने के लिए जापानियों ने चीनी किसानों की टोलियाँ रेल-लाइन पर दिन-रात गश्त दिलाने के लिए तैयार की हैं और उन्हें चेतावनी दी है कि यदि ठीक से पता नहीं देंगे, तो गोलियों से उड़ा दिये जायँगे। ये किसान ठीक से पता देते जरूर हैं, किन्तु, रेल हटाने में भी पूरी सहायता देकर और अपराधी के साफ निकल जाने पर।"

ये गोरिल्ले एक और अनूठी तरह से काम करते हैं, उसका वर्णन सुनिये—

"ये चीनी सैनिक जापानियों को छकाने के लिए एक और तरीका काम में लाते हैं। जापानी अफसरों की पोशाक पहन कर उनकी सेना में घुस जाते और उनका भेद लाते या अचानक धावा मारते हैं। ऐसे चीनी सैनिक जापानी भाषा बोलने में भी दक्ष होते हैं। किन्तु, यह कम खतरे का काम नहीं। जेनरल लिन-पिआव एक बार इसी तरह ६०० सैनिकों को जापानी पोशाक में लेकर जापानी लाइन में घुस गये, किन्तु, भेद खुल गया और उन्हें जीवन में पहली बार घायल होना पड़ा।

"प्रायः ही ये जापानी भाषा बोलनेवाले और उनकी पोशाक में रहनेवाले चीनी सैनिक जापानी टेलिफोन का इस्तेमाल करते और जापानी हेडक्वार्टर को झूठी खबर देते कि अमुक स्थान पर फौज की जरूरत है, भेजिये। ज्यों ही वहाँ फौज पहुँचती, चीनी सेना, जो पहले से ही घात में रहती, उनपर टूट पड़ती और खतम कर देती।"

दक्खिणी शान्सी में एक शहर को किस तरह वापस लिया गया—

"जापानियों ने उस शहर पर कब्जा किया। शहर की आबादी १५००० की थी और उसमें २०००० सेना रख दी गई। खाने-पीने की सामग्री की भी कमी नहीं थी। किन्तु, गोरिल्ला सैनिकों ने उस शहर को चारो ओर से घेर लिया और जापानी सैनिकों या माल-असबाबों को वहाँ जाने से बिल्कुल रोक दिया। कई सप्ताहों तक जापानी सेना ने देहातों में घुस कर लोगों की शक्ति खतम करना चाहा, किन्तु, जो सेना देहात में जाती, वह बहुतों को खोकर लौटती और अन्त में उसे दो महीने के बाद पूरी सेना की आधी संख्या खोकर वहाँ से भाग जाने को बाध्य होना ही पड़ा।"

किन्तु, आठवीं रूट आर्मी की नीति केवल जापानी सैनिकों को तंग-तंग करना या सत्यानाश में मिलाना ही नहीं है। उस की एक विशिष्ट नीति यह है कि जापानी सैनिकों में जापानी तानाशाही के प्रति घृणा पैदा करना और चीन की इस लड़ाई का औचित्य बताना। जब कोई जापानी सैनिक गिरफ्तार होता या घायल पकड़ा जाता है, तो उसकी बड़ी खातिर की जाती, अच्छी तरह दवा-दारू दिया जाता और अच्छा होने पर उसे फिर वापस जाने की स्वाधीनता दी जाती है। यही नहीं, नोटिसें छपवा कर जापानी सेना में पहुँचायी जाती हैं। चू-तेह और पंग-तेह-हाई के दस्तख़त से एक नोटिस इस आशय की बँटी थी—

"जापानी सैनिकों से—

"आपने शायद चीन की लाल सेना का नाम सुन रखा है। हमारी आठवीं रूट आर्मी वही लाल सेना है। और जैसा कि

जापानी रिपोर्ट बतलाते हैं, यही साम्यवादी सेना भी है।

"आज हम युद्धभूमि में आपके ऊपर बन्दूकें तानते और छोड़ते हैं। यह हमारे लिए दुर्भाग्य की बात है। आप और हम दोनों किसान और मजदूर हैं। आपके फौजी अफसरों ने आपको सेना में भर्ती होने और घर-द्वार, बाल-बच्चे छोड़ने को लाचार किया है। इधर हमें अपने देश और जनता की रक्षा करनी है। हमें जापानी जनता या वहाँ के मजदूर-किसान से कोई दुश्मनी नहीं। हम तो जापानी किसान-मजदूर से सदा हाथ मिलाने को तैयार हैं। जापानी सैनिको, जरा इसपर सोचो।

"आप जापानी किसानों और मजदूरों को चीन में कत्ल होने को भेजा जाता है। बताइये, इस कत्लेआम से आपको क्या मिलेगा? आपको अंगूठे दिखा दिये जायँगे। मरें, कत्ल हों, घायल हों जापान के बेचारे किसान, मजदूर और फायदा उठावें जापान के पूँजीपति, जमीन्दार और बैंकर। हम चीनी मजदूरों और किसानों को लूटकर आपके शासक मोटे बनेंगे, मजबूत बनेंगे। और अगर कहीं हमने उन्हें हरा दिया तो फिर आप लोग उन्हें एक धक्के में ही खत्म कर सकेंगे। आप विद्रोह करके उन्हें उड़ा फेंकेंगे। जापानी जनता तब स्वतंत्र होगी और आपको अपने बाल-बच्चों के बीच रहने का मौका मिलेगा।

"जापानी सैनिको, अपनी बन्दूकें अपने तानाशाह अफसरों की ओर घुमाओ और हमसे मिल जाओ। लड़ना ही है तो अपनी जनता की स्वतंत्रता के लिए लड़ो, चीनी जनता के लिए लड़ो। आओ, हम सब एक हो जायँ। हम युद्धभूमि में

क्यों एक दूसरे का गला काटें। यह खूंरेजी बन्द हो। हम एकता से एक हों।

"जापानी सैनिको, उनका शिकार होना बेवकूफी है। आपके देश के किसान और मजदूर हमारे देश के किसान-मजदूर को कत्ल करना नहीं चाहते। संसार के किसान और मजदूर भी यह नहीं चाहते। अगर आप चीन के किसान और मजदूर से लड़ते हैं तो आप संसार के किसान और मजदूर को अपना दुश्मन बनाते हैं। इसपर गौर से सोचिये।

"चीन की सेना तो अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा करने और जापानी फासिजम के प्रवाह को रोकने के लिए लड़ रही है। यदि हम खेत भी रहे, तो संसार हमपर फूलों की वर्षा करेगा और जापानी किसानों और मजदूरों का घृणा की दृष्टि से देखेगा।

"जापानी सैनिको, आइये, हमसे मिलिये। हम आपके भाई हैं। हम आपपर हाथ नहीं उठावेंगे। हम आपका स्वागत करेंगे। हम सब भाई-भाई हैं। हम मिलकर जापानी साम्राज्यवाद का मुकाबला करें। अगर आप घर वापस जाना चाहें, हम उसका प्रबन्ध कर देंगे। हम आपपर गोली नहीं चलावेंगे, अपने ही भाई को क्यों घायल किया जाय? जरा सोचिये।

"जापानी सैनिको, जरा हमारे नारे लगाइये—

"जापानी तानाशाही के लिए जान मत दो।

"इस अनुपयोगी वर्ग के लिए अपने अमूल्य शरीर को बर्बाद मत करो। घर जाओ, अपने देश के किसान-मजदूर से मिलो और विद्रोह करो।

"जापान और चीन के सैनिको, एक हो जाओ और इस लड़ाई को खत्म करो।

"जापानी सैनिको, चीन की जनता के इस राष्ट्रीय संग्राम

का समर्थन करो।

"अपने भाइयों की हत्या मत करो।

"जापानी साम्राज्यवाद का नाश हो।

जापान के किसान-मजदूरों की स्वतंत्रता की जय हो।"

इन नोटिसों का काफी प्रभाव जापानी सेना पर पड़ा है। एक ओर भाई-चारे का यह फैलाया गया हाथ दूसरी ओर मौत का खूनी पंजा—इन दोनों के बीच उन्हें एक चुनना होता है!

आठवीं रूट आर्मी के साथ जो जापानी सेना लड़ने को भेजी जाती है; उसके क्या अनुभव होते हैं, हम उसे भी देखें। आठवीं रूट आर्मी के एक विभाग का नाम है—'शत्रु-विभाग'। इस विभाग का एक काम है मरे या घायल जापानी सैनिकों या अफसरों की डायरी पढ़ना और उनसे उनकी मनोवृत्ति और मोर्चेबन्दी को समझना। उसके द्वारा प्राप्त कुछ डायरियों को देखिये—

एक जापानी ब्रिगेड कमाण्डर अपनी डायरी में लिखता है—

"लाल सेना का नाम सुनते ही मुझे सिरदर्द हो आता है। हम जापानी दिन में ही लड़ने के आदी हैं—किन्तु, ये तो दिन-रात आठ पहर कमर कसे रहते हैं। यहाँ साम्यवादियों का बहुत जोर है। करीब डेढ़ सौ मोटर ट्रकों को इन्होंने बर्बाद कर डाला और ५० सैनिकों को कत्ल कर दिया। हमें आज्ञा दी गई है, यहाँ जिसे पाओ, मार डालो।"

एक दूसरे जापानी अफसर ने यों डायरी लिखी है—

"हम सेनापतियों के लिए सेना का संचालन मुश्किल हो रहा है। कुछ सैनिक घोड़ों पर दुनिया-भर की वाहियात चीजें लाद लेते हैं। कुछ खाई खोदने से अस्वीकार कर देते हैं। हमें पानी की जगह कीचड़ पीना पड़ता है। खाना तो और मुश्किल।

मोर्चे पर दियासलाई और मोमबत्ती तक नहीं मिलती। फिर ये चीनी सैनिक अजीब हैं। घायल हो जाने पर भी ये कुछ कारतूस बचा रखते हैं और ज्योंही कोई उनके निकट पहुँचता है, उसे गोली से उड़ा देते हैं। एक-आध कारतूस आत्महत्या के लिए अलग रख लेते हैं। ये हमारे दुश्मन हैं, लेकिन हैं महान पुरुष !"

एक की डायरी बताती है—

"कल मेरी कम्पनी एक गाँव से जा रही थी। चीनी कुलियों पर हमने अपने सामान लाद रक्खे थे। पहले तो वे सीधे चलते रहे ! किन्तु, गाँव में पहुँचते ही उन्होंने विद्रोह कर दिया। उनके पास कोई हथियार नहीं था, लेकिन, उन्होंने हममें से कई की राइफलें छीन लीं और चूँकि राइफल चलाना वे नहीं जानते, उनके कुन्दों से ही हमारे तीन आदमियों का वारा-न्यारा कर दिया।

कभी-कभी हम वृक्षों, पत्थरों या दीवारों पर कुछ खास किस्म के चिह्न देखते हैं, उनका मतलब होता है, कहीं निकट ही चीन की तोपें खड़ी हमें मौत के घाट उतारने की तैयारी में हैं।"

किन्तु, सबसे विचित्रता तो यह है कि इस आठवीं रूट आर्मी को किस गरीबी और लाचारी में युद्ध करना पड़ता है। केवल उत्कट देशभक्ति और घोर सिद्धान्त-परता ही इस स्थिति में सैनिकों के हृदय को स्थिर और दृढ़ रख सकती है। सुप्रसिद्ध अमेरिकन लेखिका श्रीमती एग्नेस स्मडले इस आठवीं रूट आर्मी के साथ बहुत दिनों तक थीं। उन्होंने अपने एक मित्र को एक खत भेजा था—

"आप अनुभव नहीं कर सकते कि किस परिस्थिति में

हमारी सेना को काम करना पड़ रहा है। जापानियों के पास ट्रक हैं, लॉरियाँ हैं, वायुयान हैं और दूसरे शीघ्र पहुँचानेवाली सवारियाँ हैं। किन्तु, हमारे पास? केवल गधे, घोड़े और थोड़े खच्चर। करीब-करीब हमारी पूरी सेना पैदल ही चलती है। मोटरवाली टुकड़ी हमारे पास कहाँ?

"मेरे पास करीब सौ चाँदी के डालर हैं; किन्तु, हमारे साथियों के पास फूटी कौड़ी नहीं। मैं इस सेना में सब से धनी व्यक्ति हूँ। मेरे पास एक वर्दी, एक जाड़े का कोट और एक सेट अन्डरवेयर है। दो जोड़े जूते भी हैं। किन्तु, मेरे साथियों को तो एक ही जोड़े जूते पर गुजर करना पड़ रहा है, जो अब खतम होने को है। हमारी सेना के अधिकांश सैनिकों को मोजे तो हैं ही नहीं।

"यहाँ कागज मिलना भी मुश्किल है। तेल और घी का नाम मत लीजिये, जब कि नमक पर भी आफत है। आग जलाने के लिए लकड़ियाँ भी मुश्किल से मिलती हैं। जाड़े की आधी रात को मैं लिख रही हूँ, किन्तु, गरमी पहुँचाने को एक अँगीठी भी नसीब नहीं। पूरे भोजन के बिना पेट भी कुलबुल कर रहा है। इस जाड़े के मौसिम में भी चावल और मकई पर गुजर करनी होती है—एक तरकारी मिल गई, तो गनीमत। आज शलगम, कल शलगम। प्रायः यह भी नहीं। चीनी तो सपने की चीज हो गई है।

"किन्तु, इसका मतलब यह नहीं कि मैं आपको अपना दुखड़ा रो रही हूँ। ये तो मेरी जिन्दगी के सबसे खुशी और काम के दिन हैं। मैं तो एक कटोरे-भर भात पर गुजर करनेवाली इस जिन्दगी पर सभ्यता द्वारा दिये गये सब सुखों को बलिहार करती हूँ। पीठ की टूटी हुई रीढ़ लेकर भी मैं इन्ह

के साथ घूमना, दौड़ना और काम करना पसंद करती हूँ। डर है तो यही कि कहीं दर्द ऐसा न बढ़े कि काम में नुकसान हो।"

धन्य वह आठवीं रूट आर्मी जिसके कर्तृत्वों पर एक विदेशी रमणी इस तरह बलिहार जाती है।

हिन्दुस्तान से, कांग्रेस की ओर से, घायल चीनी सैनिकों की मदद के लिए जो डाक्टरी जत्था गया है, वह भी आज-कल आठवीं रूट आर्मी के ही साथ काम कर रहा है।

उस जत्थे के एक डाक्टर ने २७ १०-३८ को इस तरह लिखा था—

"हमलोग आठवीं रूट आर्मी के साथ काम करने जा रहे हैं। वह सेना एक दिन में १५० ली दौड़ जाती है—अतः, हमें उससे मिलने के लिए काफी दौड़-धूप करनी पड़ेगी—लेकिन, इस सेना के साथ काम करना कम सौभाग्य की बात नहीं। इस सेना के युद्ध-कौशल की कितनी ही कहानियाँ हैं। रात में उत्तर दक्षिण विरोधी दिशाओं में आग जला दी जायगी, स्काउट बिगुल बजा ने लगेंगे और अजीब-अजीब इशारे करने लगेंगे। जापानी सेना समझ न सकेगी कि दुश्मन का मुख्य अड्डा किधर है। इधर उसके भौंचक से फायदा उठा एक छोटी टुकड़ी वेग से चढ़ दौड़ेगी और जापानी सेना के एक हिस्से का संहार कर, जब तक वह सजग हो, निकल भागेगी। पहाड़ों पर खाइयाँ और खोह बनाये गये हैं। आठवीं रूट आर्मी के पास राजमिस्त्रियों और खाई खोदने-वालों का एक जबर्दस्त दल है, जो लड़ाई से दूर रह केवल निर्माण का काम किया करता है। सचमुच, इस सेना को "चीन की रक्षक सेना" कहा जा सकता है। चीन की यह सबसे अच्छी, संगठित, तत्पर, लड़ाकू और अनुशासित सेना है।

# चीन-जापान-युद्ध :: साम्यवादी विश्लेषण

इस समय जापान ने चीन के प्रायः सभी प्रमुख तटीय नगरों पर कब्जा कर लिया है, और वह प्रायः बढ़ता-सा भी नजर आता है। बहुत-से लोग हैं, जो इसपर खयाल करते हुए चीन की ओर से निराश हो जाते हैं। उनके लिए माओ-से-तुंग की निम्नलिखित बातचीत बड़े काम की होगी जो उसने आज से करीब ढाई वर्ष पहले जुलाई १९३६ में एक पत्रकार से की थी—जिस समय संयुक्त मोर्चा तक कायम नहीं हुआ था—

"कुछ लोग समझते हैं कि ज्योंही जापान ने तटीय नगरों पर कब्जा कर लिया और बाहर से युद्ध-सामग्री के आने का रास्ता रोक दिया, त्योंही चीन के लिए लड़ते रहना असम्भव हो जायगा और जापान जीत जायगा। यह बिल्कुल बेवकूफी की बात है! ऐसे लोगों का ध्यान हम सिर्फ लाल सेना के इतिहास की ओर खींचना चाहते हैं। ऐसे मौके आये, जब कुओ-मिन्-तांग की सेना हमारी सेना से दस गुनी थी और उसके पास युद्ध-सामग्री भी हमसे बहुत अधिक थी। आर्थिक दृष्टि से उसकी साधन-सम्पन्नता का क्या कहना? उसे बाहर से भरपूर सहायता भी मिलती थी। किन्तु, इन सब बातों के होते हुए भी क्यों लाल सेना विजय-पर-विजय प्राप्त करती रही और क्यों वह आज सिर्फ जिन्दा ही नहीं है, उसकी ताकत कहीं अधिक बढ़ गई है?

"इसका कारण स्पष्ट है। लाल सेना और सोवियत-सरकार ने अपनी सेना के अन्दर की जनता को सुदृढ़ एकता के सूत्र में आबद्ध कर लिया था। वह चट्टान की तरह मजबूत और ठोस बन गई थी। उसका हरएक आदमी समझता था कि यह लड़ाई उसकी 'अपनी' लड़ाई है—अपने घरबार की लड़ाई, अपने स्वार्थ की लड़ाई, अपने अधिकार की लड़ाई। दूसरी बात यह थी कि लाल सेना का जो संचालन करते थे वे योग्य व्यक्ति थे, उनमें ताकत और बलिदान-भावना थी, वे युद्ध-कला के जानकार थे और अपनी राजनीतिक, आर्थिक और सैनिक स्थिति को भली भाँति समझते थे। लाल सेना की जिन्दगी चन्द राइफलों से शुरू हुई, किन्तु, शुरू से ही वह सुफेद सेना को हराती रही। क्यों? क्योंकि, वह जनता की चीज थी, सुफेद सेना में भी उसके हिमायती थे और सरकारी अफसर भी उसकी निस्वार्थ नीति से प्रभावित थे। हमारे दुश्मनों की सैनिक शक्ति असीम थी, किन्तु, राजनीतिक दृष्टि से वे विशृंखल थे।

"जापान-विरोधी युद्ध छिड़ने पर चीन की संयुक्त सेना को लाल सेना से भी अधिक सहूलियतें होंगी। चीन एक देश नहीं, महादेश है और जब तक उसकी इंच-इंच भूमि को जीत नहीं लिया जाय, तब तक चीन को जीता हुआ नहीं कहा जा सकता। अगर जापान ने चीन के एक बड़े हिस्से को भी जीत लिया—मान लीजिये, उसने १० करोड़ या २० करोड़ की आबादी पर भी अपना राज्य जमा लिया, तो भी उसकी विजय पूरी नहीं कही जायगी। उस समय भी हमारे पास काफी बड़ी ताकत होगी और हमारे दुश्मनों को बहुत बड़े और फैले हुए मोर्चों पर हमसे लगातार लड़ते ही रहना पड़ेगा।

"सवाल उठाया जा सकता है, हमारे पास युद्ध-सामग्री कहाँ से आवेगी ? सो, जापान हमारे उन कारखानों और शस्त्रागारों पर कब्जा कर नहीं सकता, जो देश के बहुत भीतर, बिल्कुल सुरक्षित स्थानों में स्थापित हैं। उनसे ही इतने अस्त्र-शस्त्र हम तैयार कर सकेंगे कि हम वर्षों तक लड़ते रहें। फिर, जापान हमें उसके हाथों से ही अस्त्र-शस्त्र छीनने से कैसे रोक सकेगा ? हमारी लाल सेना तो नौ वर्षों तक कुओ-मिन्-तांग से छीने गये अस्त्र-शस्त्रों पर ही मुख्यतः निर्भर रही—हमारे दुश्मन ही हमारे 'शस्त्र-वाहक' साबित हुए ! जिस समय समूचा चीन जापान के खिलाफ एक होकर खड़ा होगा, उस समय इसकी सम्भावना कितनी अधिक हो जायगी, जरा कल्पना कीजिये।

"यह ठीक है कि आर्थिक दृष्टि से अभी चीन में एक-सूत्रता नहीं है। किन्तु चीन की अविकसित आर्थिक स्थिति भी जापान-विरोधी युद्ध के लिए एक वरदान ही सिद्ध होगी। क्योंकि, शांघाई को चीन से छीन लेने पर भी चीन की वह दयनीय स्थिति नहीं हो जायगी, जो न्यूयार्क के छीन लेने से अमेरिका की हो जा सकती है। फिर, जापान कितना बड़ा घेरा डालेगा ? वह हमारे उत्तर-पश्चिम, दक्षिण-पश्चिम और पश्चिम में तो कुछ कर ही नहीं सकेगा। आखिर, जापान की श्रेष्ठता तो समुद्र में ही है !

"एक बात और भी ध्यान में रखना है। जापान की जनता ऐसी इतनी बड़ी लड़ाई का बोझ अधिक दिनों तक बर्दाश्त नहीं करेगी। ज्योंही चीन ने दो-तीन अच्छी 'पटक' जापान को दी, उसे जरा गहरे हराया, कि जापान की शोषित जनता अवश्य कुलबुला कर खड़ी होगी और तब जापान हमसे लड़ेगा कि
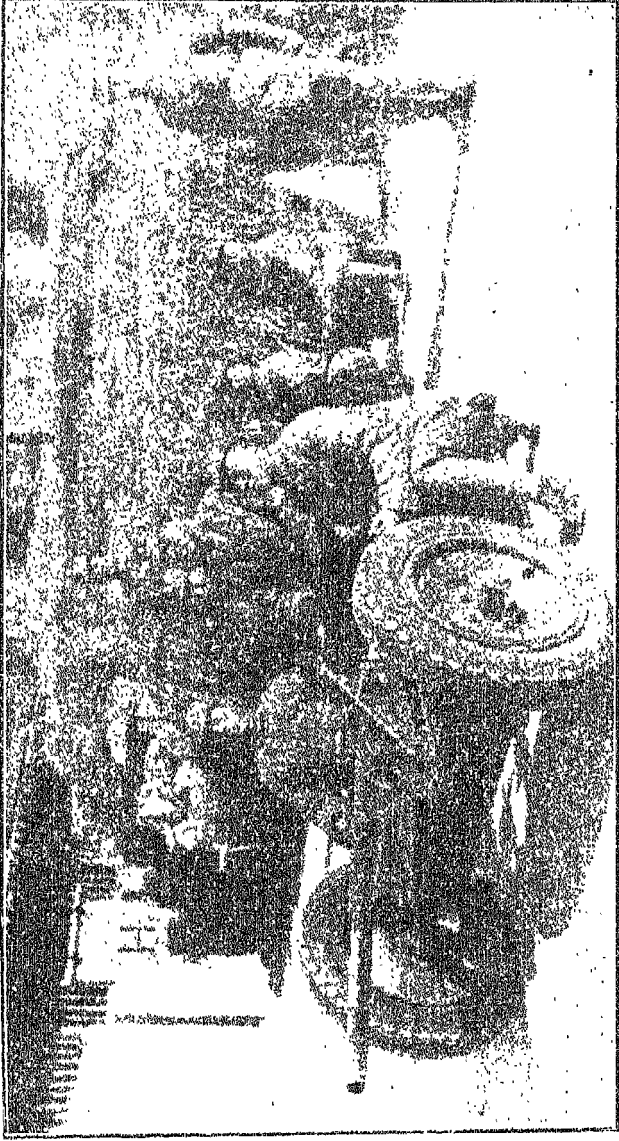
आठवीं रूट आर्मी ( लाल सेना ) के अफसर जापानियों से मशीनगन छीनकर उसे लिये जा रहे हैं।

घर सम्हालेगा ? जापान में क्रान्ति होना अनिवार्य है ! फिर, आउटर मंगोलिया और रूस—हमारे ये दो पड़ोसी राष्ट्र अलग खड़ा कब तक तमाशा देखते रहेंगे ? रूस अपने को ज्यादा दिनों तक अलग नहीं रख सकेगा। क्योंकि, चीन पर कब्जा होने से तो जापान को एक ऐसी भूमि मिल जायगी जिसपर पैर जमा कर वह रूस के छक्के छुड़ा दे। रूस ऐसी गलती कभी नहीं होने देगा। इंगलैण्ड और अमेरिका भी चीन के अपने स्वार्थों को जापान के हाथ में सौंप अपने पैर में कुल्हाड़ी नहीं मारेंगे।

"इस लड़ाई में हमारी युद्ध-कला क्या होगी—यह भी विचारणीय है। हम उसी नीति का अवलम्बन करेंगे, जिस-का लाल सेना करती रही है। एक विस्तृत, परिवर्तनशील, और असीम मोर्चे पर लुक-छिप कर लड़ना—कभी पीछे हटना, कभी आगे बढ़ना ; कभी निकल भागना, कभी जबर्दस्त धावे करना—यही नीति हम अख्तियार करेंगे। एक जगह जम कर बड़े पैमाने पर लड़ना—खाइयाँ खोदना, घेरे बनाना, मजबूत किले बनाना, यह गलती हम नहीं करेंगे। किन्तु, इसका मतलब यह भी नहीं होगा कि हम मोर्चे की महत्वपूर्ण जगहों को यों ही हाथ से निकल जाने देंगे। ऐसी जगहों पर हम जम कर लड़ेंगे भी—किन्तु, ऐसा लड़ना हमारी तात्का-लिक युद्ध-कला होगी, स्थायी युद्ध-कला तो हमारी वही लुक-छिप की लड़ाई होगी।

"भौगोलिक दृष्टि से युद्ध का रंग-मंच कुछ इतना विस्तृत होगा कि हम इस पद्धति से बहुत बड़े फायदे में रहेंगे। जब कि जापानी सेना सोच-समझ कर, रुक-रुक कर, भारी युद्ध-

सामग्रियों के साथ धीरे-धीरे आगे बढ़ेगी, हम इधर-उधर दौड़ते-से उसे तबाह और बर्बाद करेंगे। जम कर लड़ना, या किसी प्रमुख स्थान की रक्षा में अपनी ताकत बिल्कुल बर-बाद करना, तो उस सहूलियत को ठुकराना है जो हमारे देश की भौगोलिक स्थिति हमें देना चाहेगी। अबिसीनिया में जो गलती की गई, हमें उसे दुहराना नहीं है। किसी निर्णयात्मक महान युद्ध की भूलभुलैया में हम लड़ाई के प्रारम्भ में नहीं पड़ेंगे। हमारा काम होगा धीरे-धीरे दुश्मन को थकाना, उसकी युद्ध-भावना को तोड़ना, उसकी लड़ाई की योग्यताओं को खतम करना।

"बेचारे अबिसीनिया वाले दो गलतियों के शिकार हुए। एक तो उनमें राजनीतिक कमजोरियाँ रहीं, दूसरे वे एक जगह मोर्चा बाँध कर डट गये और यों अपने हत्यारे दुश्मनों को बम गिराने, जहरीले गैस छोड़ने और दूसरे उत्कृष्ट युद्ध-साधनों का प्रयोग करने का मौका दे दिया। वे कहीं के नहीं रहे।

"फिर, हम बजाप्ता सेना पर ही निर्भर नहीं रहेंगे। हम अपने किसानों के अन्दर से स्वयं-सेना बनायेंगे, गोरिल्ला-सैनिकों की सृष्टि करेंगे। हम उन्हें शिक्षित करेंगे, राजनीतिक और सैनिक दोनों शिक्षा देंगे। वे हमारे तत्वावधान में कमाल दिखलायेंगे। किसानों की स्वयंसेना कैसा कमाल कर सकती है, इसका सुबूत इस गृह-युद्ध में ही नहीं मिला है, मंचूरिया में जापानियों को भी उसकी एक झलक मिल चुकी है। हमारी यह स्वयंसेना दुश्मनों को चौबीसों घंटे तंग करती रहेगी—उन्हें उलझा कर मार डालेगी।

"यह याद रखना है कि यह लड़ाई चीन में होगी, इसका मतलब यह कि दुश्मनों को चौबीसो घंटे हमारे घेरे के अन्दर रहना पड़ेगा—उनके चारो ओर एक ऐसी जमात रहेगी जो मौका आते ही उन्हें निगल जाना चाहेगी। उन्हें एक जगह से दूसरी जगह बहुत ही सावधानी से जाना पड़ेगा। अपने कैम्प, अपनी रसद, अपने रास्ते, सबकी रक्षा में दिन-रात चौकस रहना पड़ेगा। इन सबके साथ ही मंचूरिया और जापान में भी उन्हें अपने आधारों की रक्षा करनी पड़ेगी।

"ज्यों-ज्यों लड़ाई के दिन कटते जायँगे, हम उनसे अस्त्र-शस्त्र छीन कर अपने को ज्यादा-से-ज्यादा सशस्त्र करते जायँगे। एक समय ऐसा भी आवेगा कि हम उनसे जम कर लड़ाई ले सकें, हम खाइयाँ खोदें, किले बनावें। लड़ाई करते-करते हमारी फौज भी युद्धकला में निपुण होती जायगी। विदेशी मदद को भी हम बन्द नहीं कर सकते। ज्यादा दिन तक लड़ाई चलने पर, जापान के लिए उसका खर्च बर्दाश्त करना मुश्किल पड़ जायगा—उसकी अर्थनीति ताश के घर की तरह ढह पड़ेगी। लड़ते-लड़ते उसकी फौज भी ऊब उठेगी—जिस लड़ाई की कोई हद तक नहीं हो, उसमें कहाँ तक कोई जान खपाता रहेगा? किन्तु, चीन की जन-संख्या इतनी अधिक है, कि हमें नये-नये लड़ाके सदा मिलते जायँगे। जो जापानी सैनिकों को हम पकड़ेंगे, उनके साथ हमारा अच्छा सलूक होगा। हम उन्हें बतावेंगे, कि भाइयो, आप भी गरीब के ही लड़के हो। इन फासिस्टों के फेर में क्यों पड़े हो? आओ, मिल कर हम एक मुट्ठी तानाशाहों का सामना करें।

"ये और दूसरी हालतें वह सूरत पैदा करेंगी, जब कि हम जापान के किले और मोर्चों पर आखिरी धावा करें और जापान को अपने देश से भगा कर ही दम लें। जापानी जहाज चीन की चट्टान पर आकर टूटेगा ही—यह निश्चय है ! निश्चय है ! निश्चय है !"

एवमस्तु,—हम भारतीयों को भी यही आकांक्षा है !

---

## युद्ध-गीत

लाल रंगमंच के अभिनेता निम्नलिखित युद्ध-गीत अभिनय के साथ गाते और चीनी जनता और सैनिकों को जापान से लड़ने के लिए उत्तेजित करते हैं—

( *जनता का झुण्ड गा रहा है* )

भाइयो, आधा ग्रीष्म बीत चुका, घड़ियों में अब गरमी है,
और उत्तर में खेत की कटनी चल रही है।
आह री! हमारी वह जिन्दगी : सूर्य-रश्मियों में चमकते
वे अन्न के दाने,
गाँव के कुत्ते दूर पर झगड़ते और भूँकते।
किन्तु, कुत्ते अब चुप हैं—युद्ध के अवशिष्टों की अँतड़ियाँ
खा अघाकर।

( *कुदाल चलाते हुए किसान* )

ग्रीष्म की इस चमचमाती दुपहरी में भी गाँव में सन्नाटा है।
काले-काले खलिहानों में फसल इकट्ठी की गई है—
राख की फसल;
मृत्यु के फल असीम सड़कों पर बिखरे पड़े हैं।

( *शरणार्थी* )

हम गृह-हीन हैं, जापान मंचूरिया के सीने पर खड़ा है।
आदमी के मुँह बन्द हैं, सिर्फ बन्दूकें बोलती हैं,
जहाँ कुछ आवाज उठी, हजारों किसान मौत के
मुँह में।
चीख और आँसुओं से हम दुश्मन के गुण गाते हैं;
ये जापानी—मुँह आदमी का, काम राक्षस का!

*( नहर के उस पार आग धधक रही है )*

भाइयो, जब हम भागे, धुएँ से हवा जहरीली हो रही थी,
परिवार छिन्नभिन्न, बच्चों का कोई पुछैया नहीं,
गृहहीन जनता सूखी पत्तियों-सी इधर-उधर फिर रही,
परिवार छिन्नभिन्न, बच्चों का कोई पुछैया नहीं,
गृहहीन जनता सूखी पत्तियों-सी इधर-उधर फिर रही,
और बच्चे सिनकेन्ले बर्फीले झरनों पर बह रहे।

*( कारखानों में लड़कियाँ )*

हमने सुना, बहुत-से लोग जापानी कारखानों में कैद हैं।
कहाँ हो, ओ री हमारी छोटी बहनो, कहाँ हो ?

*( गंजे सिर के बच्चे। रिक्शा की आखिरी झोर। लड़के कुन्दों को खींच रहे। प्रार्थना के सुर में )*

पूरे परिवार दासता की जंजीरों में जकड़े।
भूख का चाबुक उन्हें आगे बढ़ा रहा—भूख जिसने
उनकी हड्डियाँ निकाल रखी हैं।
भाइयो, तनकर खड़े हो, क्या सिर झुकाये हो ?
तुम झुकते हो, इसीलिए जापानी तुम्हारी पीठ पर चढ़
बैठते हैं।

खड़ा हो, देखो, आसमान में सिंह गरज रहा है ;
गरज रहा है, मँड़ला रहा है।
ऊपर देखो, मैं अब हथियार-बन्द हूँ।
मेरे हाथ राइफलों से दोस्ती कर रहे हैं।
ऊपर देखो, भाइयो, बहनो,
मैं वायुयानों पर चढ़कर तुम्हारी रक्षा को आ रहा हूँ।

इसके बाद ?

बेनीपुरी-लिखित

# खूनी जापान